रामदयाल क्यों आया ? वह रामदयाल जो राजा नायकसिंह की वासनाओं की तृप्ति के लिये खुल्लमखुल्ला साधन जुटाया करता था, वही जो देवीसिंह का शत्रु है और साथ ही बिराटा के सब लोगो का—और अवश्य ही बिराटा निवासिनी कुमुद का भी।

कही कुमुद की गुफा के पास कोई जाल तो नही रचा जा रहा है ? रामदयाल वही ठहरा है। क्यो वहां ठहरने दिया गया ? वह यहां आया ही क्यों ? इस स्थान को रामदयाल से किसी प्रकार निस्तार मिले ?

वह कुञ्जर की शक्ति के बाहर की बात थी। 'परन्तु' उसने सोचा—'मैं इसके कुचक्रो का निवारण कर सकता हूँ। करूँगा।' फिर अपनी तोपो की ओर ध्यान गया। जिस प्रयोजन से वे वहां स्थित थी और वह स्वयं उस स्थान पर जिस धारणा को लेकर गड़ा-सा था, उस ओर भी ध्यान गया।

उस समय प्रतिकूल पक्ष की तोपे बिराटा की दिशा में विरक्त-सी थी।

कुञ्जरसिंह दबे पांव गुफा की ओर गया।

गुफा में निविड़ अन्धकार था। पत्थर से सटकर कुञ्जर ने कान लगाया। उस तमोराशि में केवल कुछ सांसो का शब्द सुनाई पड़ता था।

निद्रा ने षड्यन्त्रो पर भी अपना अधिकार कर लिया था।

इसी गुफा में वह देवी थी। कल्याण और रूप, स्निग्धता और लावण्य, वरदान और प्रेरणा की वह निधि उस कठोर गुफा के भीतर।

कुञ्जर और अधिक नही ठहरा। उसका कर्तव्य इस निधि की रक्षा के साथ सम्बन्ध था। लौट आया। मन में कहा—'क्या देवी को किसी का कोई स्वप्न भी कभी आता होगा ?'

[८०]

दलीपनगर और भाण्डेर की सेनाये एक दूसरे पर बिना बडा जन-संहार किये हुये तोपे और बन्दूके दागती रहती थी। इक्के-दुक्के सैनिक लड़ भिड़ जाते थे, कभी कभी छोटी छोटी टोलियो की मुठभेड़ भी हो जाती थी। परन्तु सौ-पचास हाथ भूमि इधर या उधर, इससे अधिक जय या पराजय किसी पक्ष को भी प्राप्त न हो पाती थी।

इधर-उधर के बडे-बडे नाले दोनो दलो की स्वाभाविक सीमा से बन गये थे, जब तब भरको मे मार-काट हो जाती थी। बीच के मैदानों से गोले और गोलियाँ भनभनाती निकल जाती थी।

इस प्रकार के युद्ध से लोचनसिंह का जी ऊबने लगा। खुले मैदान में युद्ध ठानने का उसने कई बार मन्तव्य प्रकट किया, परन्तु राजा देवीसिंह की दूरदर्शिता के प्रतिवाद ने लोचनसिंह की न चलने दी।

आज अकस्मात् राजा, जनार्दन शर्मा, लोचनसिंह इत्यादि मुसावली के निकटवर्ती नाले में इकट्ठे हो गये।

आगे क्या करना चाहिये इस पर सलाह होने लगी।

लोचनसिंह ने कहा—'यही गडे-गडे मरना तो अब बिलकुल अच्छा नही लगता। हथियार बिना चलाये ही कदाचित् किसी दिन टें हो जाना पड़े।'

'तब क्या किया जाय ?' जनार्दन ने धीरे से पूछा।

'अलीमर्दान की सेना पर तीर की तरह टूट पडना चाहिये।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया।

'और तीर की तरह छूट निकलकर कमान को खाली कर देना चाहिये।' राजा देवीसिंह ने व्यङ्ग किया।

'जैसी मर्जी हो।' लोचनसिंह ने कुढ़कर कहा—'लड़ाई के बहाने भड़भड़ करते रहिये; जब अलीमर्दान की सेना दुगुनी-चौगुनी हो जाय, तब घर चले चलिये।'

देवीसिंह का थका हुआ चेहरा लाल हो गया। सोचने लगा।

एक पल बाद बोला—'आज रात तक रामनगर पर अपनी झण्डा फहरा सकोगे ?'

लोचनसिंह उत्तर देने में ज़रा-सा हिचका।

देवीसिंह—'मौत के बदले रामनगर मिलेगा, लोचनसिंह ?'

'मैं तैयार हूँ।' लोचनसिंह ने दृढ़ता के साथ कहा।

जनार्दन ज़रा कसे स्वर में बोला—'और आपके सरदार ?'

इस थपेड़ की परवा किये बिना ही लोचनसिंह ने कहा—'मेरे साथी सरदार कुछ करने या मरने के लिये बहुत उतावले हो रहे हैं परन्तु—'

जनार्दन—'परन्तु आज ही आपके मुँह से सुना।'

जनार्दन पर आँखें तानकर लोचनसिंह बोला—'आप रामनगर विजय करिये, महाराज से रामनगर की जागीर आपको मैं बरबस दिलवा दूँगा।'

जनार्दन भी उत्तेजित होकर कुछ कहना ही चाहता था कि देवीसिंह ने कहा—'मेरा एक मन्तव्य है।'

जनार्दन—'महाराज।'

लोचनसिंह—'क्या मर्ज़ी है ?'

देवीसिंह—'रामनगर पर शीघ्र अधिकार कर लेने के लिये बढ़ना यमराज को न्योतने के बराबर है, परन्तु अलीमर्दान पर धावा बोलने की अपेक्षा यह भी कहीं ज्यादा अच्छा है। रामनगर का गढ और तोपें हाथ में कर लेने के उपरांत अलीमर्दान से खुली मुठभेड़ करना सरल हो जायगा।'

एक क्षण सोचकर राजा ने कहा—'लोचनसिंह, तुम्हें अन्त्येष्टि क्रिया की पवित्र आवश्यकता में बहुत विश्वास है ?'

लोचनसिंह नहीं समझा। देवीसिंह बोला—'मरने जाओगे, तो कफन भी साथ लेते जाओगे या नहीं ?'

लोचनसिंह मुस्कराया। उसके झुर्रीदार चेहरे पर सौन्दर्य की रेखाएँ छा गईं। बोला—'महाराज ने बहुत सूझ की बात कही। हम लोग जितने आदमी रामनगर की ओर आज बढ़ेंगे, सब अपने-अपने सिर पर कफ़न बाधेंगे। वाह! क्या वेश रहेगा! कोई देखे, तो कहेगा कि मौत से लड़ने के लिये यमदूत जा रहे हैं।'

राजा ने कहा—'जो आज रात को रामनगर विजय करेगा, वह उसे जागीर में पायेगा।'

इसके बाद इन लोगो ने अपनी योजना तैयार की।

[८१]

दूसरे दिन सन्ध्या के पूर्व नित्य-जैसी लडाई होती रही। लोचनसिंह जितने मनुष्यो को रामनगर पर आक्रमण करने के लिये चाहता था, उतने उसे मिल गये। उनके चेहरे पर उत्साह था या नही, यह अँधेरे में नही दिखलाई पड रहा था, परन्तु मन के रोकने पर भी कुछ बात कहने के लिये वे उतावले-से जान पडते थे—परस्पर कोई करारी दिल्लगी करने के लिये सन्नद्ध-से। बिलकुल पास से देखने वाला जान सकता था कि वे लोचनसिंह के साथ होने पर भी फुसफुसाहट में ठठोली कर रहे थे और मुस्कराते भी थे।

नदी के किनारे-किनारे बिना पहचान जाना असम्भव था। इसलिये अपने भरके की सीध से कभी तैरकर और कभी भूमि पर रामनगर तक चुपचाप जाना लोचनसिंह ने तय किया। रामनगर के नीचे पहुंचकर फिर आक्रमण करना था या मौत के मुँह में धँसना।

लोचनसिंह ने नदी में उतरने के लिये कपड़े कसे। पैर डालने नही पाया था कि समीप खडे हुये एक सिपाही ने स्वर दबाकर कहा—'दाऊजू और कपड़े चाहे भीग जायें, परन्तु सिर से बँधा हुआ कफन न भीगने पावें।'

लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'भीगे हुये कफ़न से मुक्ति और भी जल्दी मिलेगी। पर अब फुसफुसाहट मत करो।'

लोचनसिंह पानी में जाने से पहले कुछ सोचने लगा। उसी स्वर में वह सैनिक बोला—'दाऊजू, देखते क्या हो, कूद पड़ो।'

लोचनसिंह ने कहा—'जो कुछ देखना है, वह रामनगर में देखूँगा। यहाँ देखने को रक्खा ही क्या है। नदी का तैरना शूरता का काम नही, केवल बल का काम है।'

सिपाही कुछ और कहना चाहता था, परन्तु लोचनसिंह पानी में सरक गया और सिपाही भी पीछे हो गये।

नदी के बहाव के अँधेरी रात को तैरना वीरता का भी काम था और खास तौर से उस समय, जब किनारो पर शत्रु बन्दूकें भरे धाँय-धाँय कर रहे थे।

घोर परिश्रम के पश्चात् रामनगर से कुछ दूरी पर सब-के-सब पहुँच गये। वहा पानी चट्टानो मे होकर आया है। धार तेज़ बहती है। विजय-प्राप्ति के लिये सुरक्षित स्थान में इकट्ठा होना आवश्यक था। परन्तु इस स्थान पर प्रकृति को पराजित करना सहज न था। यह टुकड़ी तितर-बितर होकर, इधर-उधर चट्टानो पर बैठकर दम लेने लगी।

थोड़े समय पश्चात्, किसी पूर्व-निर्णय के अनुसार दलीपनगर की सेना की ओर से रामनगर के ऊपर असाधारण रीति से गोला-बारी शुरू हो गई। लोचनसिंह को अपने निकट एक ऊँची चट्टान दिखलाई दी, जो चढाव खाती हुई रामनगर के किले की दीवार के नीचे तक चली गई थी। परन्तु बीच में तेज़ धार वाला पानी पडता था और साथी इधर-उधर बिखरे हुए थे।

लोचनसिंह ने आवाज़ दबाकर कहा—'पीछे-पीछे आओ।'

इस बात को किसी ने न सुन पाया।

तब और ज़ोर से बोला—'इस ओर आओ।'

इस पुकार को उसके साथियो ने सुन लिया और पास ही एक चट्टान से अटकी हुई डोगी में चुपचाप पडे हुए किसी व्यक्ति ने भी।

'धाँये-धाँये' की आवाजे आगे-पीछे जल्दी-जल्दी हुईं। तेज़ बहती हुइ धार पर गोलियाँ छर्र हो गईं। लोचनसिंह पानी में कूद पड़ा, परन्तु नाव के पास पहुचने में धार बार-बार विघ्न उपस्थित करने लगी। डोगी के भीतर से बन्दूको के पुन. भरे जाने का शब्द आने लगा। लोचनसिंह को आभास हुआ कि अबकी बार बचना असभव होगा। वह धार के खिलाफ बहुत बल लगाने लगा और धार भी उसे ज़ोर से झटके देने लगी। हाफता हुआ लोचनसिंह जोर से चिल्लाया—'क्या सब मर गये?'

भीतर घमासान होने लगा। बन्दूक-तमचे कड़कने और तलवारें खनकने लगी। रामनगर वालो को अन्धेरे में यह न जान पड़ा कि दूसरी ओर के कितने सैनिक धँस आये हैं। फाटक खुल गया और रामनगर की सेना में भगदड़ मच गई। छोटी रानी लड़ती हुई फाटक से निकल गई।

दलीपनगर की सेना ने जोर के साथ जय-जयकार किया।

रामनगर में बहुत कम लडाके भागने से बचे। जो नही भागे थे, उन्होने हथियार डाल दिये। लोचर्नसिह की सेना के भी कई आदमी मारे गये और अधिकांश घायल हो गये, परन्तु अपने अदम्य उत्साह और विजय हर्ष में घावो की पीड़ा बहुत कम को जान पड़ी। उक्त बातूनी सिपाही ने लोचर्नसिह से कहा—'दाऊजू, फाटक बन्द कर लीजिये, अपनी सेना को जय-जयकार सुनाकर बुलाइये, नही तो यह विजय अकारथ जायगी।'

लोचर्नसिह बिना रोष के बोला—'तुम्हारा नाम ?'

उत्तर मिला—'कफ़र्नसिह बुन्देला।'

लोचर्नसिह ने कोई प्रत्युत्तर नही दिया। फाटक बन्द करवा कर देवीसिह का जय-जयकार करता रहा। दलीपनगर की सेना का घेरा रामनगर की बाहर वाली सेना और अलीमर्दान वाले दस्ते ने छोड़ दिया और दोनो टुकड़ियां दूर हट गईं। दलीपनगर की सेना ने रामनगर के गढ पर अधिकार कर लिया। उस अँधेरी रात में यह किसी को न मालूम होने पाया कि देवीसिंह ने कब और कहां से गढ़ मे प्रवेश किया।

देवीसिंह के आ जाने पर गढ की ढूंढ खोज की गई। छोटी रानी तो निकल गई थी, पर बड़ी रानी मिल गईं। उन्हे कैद कर लिया गया।

[८२]

रामनगर के पतन के बाद पतराखन ने राजा देवीसिंह का अधिकार स्वीकृत कर लिया, परन्तु राजा ने उसे रामनगर में ससैन्य रहने का अवसर नही दिया। बेतवा के पूर्वीय किनारे पर ही पूर्ववत रहने को कहा, जिसमें आवश्यकता पडने पर उसकी सेना का उपयोग किया जा सके।

बड़ी रानी को अपनी मूर्खता पर बड़ा पछतावा था, परन्तु उनके पछतावे की मात्रा का कोई लिहाज़ किये बिना ही राजा ने क्षमा दे दी। दृष्टि जरूर उन पर काफी रक्खी। रानी ने इस नजरबन्दी को ही बहुत गनीमत समझा।

विजय की रात्रि के बाद ही जो सवेरे रामनगर में राजा के सरदारो की बैठक हुई, उसमें सभी लोग राजा की इस उदारता पर मन मे रुष्ट थे। छोटी रानी का जिक्र आने पर लोचनसिंह ने कहा—'महाराज यदि अपराधियो को दण्ड न देंगे, तो विजय पर विजय बेकार होती चली जायगी।'

जनार्दन अवसर पाकर मुस्कराया। बोला—'दाऊजू यह प्रश्न सेनापति के लिये नही है, इसे तो राजनीतिज्ञ ही सुलझा सकते हैं।'

लोचनसिंह को किसी बहस का स्मरण हो आया। बराबरी के घाव मारने और खाने वाले सिपाही ने रामनगर विजय के उल्लास में इस बात का बुरा न माना।

ज़रा-सा मुस्कराकर उसने कहा—'यह चोट! अच्छा, खैर, कभी देखा जायगा।'

फिर राजा से बोला—'रामनगर की जागीर कब और किसे दी जायगी? अब इस प्रश्न पर भी विचार कर लिया जाय।'

जनार्दन तुरन्त बोला—'चामुडराय लोचनसिंह के सिवा उसे और कौन पायेगा? महाराज ने उसी समय तय कर दिया था। कुछ और निर्णय उसके विषय में नही करना है। मुझे तो चिन्ता छोटी रानी की है। उन्हे तुरन्त कैद करने की आवश्यकता है। उनके स्वतन्त्र रहने से बहुत-से सरदार चल-विचल हो जाते हैं और अलीमर्दान को उनकी ओट में अपना

[८२]

रामनगर के पतन के बाद पतराखन ने राजा देवीसिंह का अधिकार स्वीकृत कर लिया, परन्तु राजा ने उसे रामनगर में ससैन्य रहने का अवसर नहीं दिया। बेतवा के पूर्वीय किनारे पर ही पूर्ववत रहने को कहा, जिसमे आवश्यकता पड़ने पर उसकी सेना का उपयोग किया जा सके।

बड़ी रानी को अपनी मूर्खता पर बडा पछतावा था, परन्तु उनके पछतावे की मात्रा का कोई लिहाज़ किये विना ही राजा ने क्षमा दे दी। दृष्टि जरूर उन पर काफी रक्खी। रानी ने इस नजरबन्दा को ही बहुत गनीमत समझा।

विजय की रात्रि के बाद ही जो सवेरे रामनगर में राजा के सरदारों की बैठक हुई, उसमें सभी लोग राजा की इस उदारता पर मन में रुष्ट थे। छोटी रानी का जिक्र आने पर लोचनसिंह ने कहा—'महाराज यदि अपराधियो को दण्ड न देंगे, तो विजय पर विजय बेकार होती चली जायगी।'

जनार्दन अवसर पाकर मुस्कराया। बोला—'दाऊजू यह प्रश्न सेनापति के लिये नहीं है, इसे तो राजनीतिज्ञ ही सुलझा सकते हैं।'

लोचनसिंह को किसी बहस का स्मरण हो आया। बराबरी के घाव मारने और खाने वाले सिपाही ने रामनगर विजय के उल्लास में इस बात का बुरा न माना।

ज़रा-सा मुस्कराकर उसने कहा—'यह चोट! अच्छा, खैर, कभी देखा जायगा।'

फिर राजा से बोला—'रामनगर की जागीर कब और किसे दी जायगी? अब इस प्रश्न पर भी विचार कर लिया जाय।'

जनार्दन तुरन्त बोला—'चामुडराय लोचनसिंह के सिवा उसे और कौन पायेगा? महाराज ने उसी समय तय कर दिया था। कुछ और निर्णय उसके विषय में नहीं करना है। मुझे तो चिन्ता छोटी रानी की है। उन्हे तुरन्त कैद करने की आवश्यकता है। उनके स्वतन्त्र रहने से बहुत-से सरदार चल-विचल हो जाते हैं और अलीमर्दान को उनकी ओट में अपना

भीतर घमासान होने लगा। बन्दूक-तमंचे कड़कने और तलवारें खनकने लगी। रामनगर वालो को अन्धेरे में यह न जान पड़ा कि दूसरी ओर के कितने सैनिक धँस आये हैं। फाटक खुल गया और रामनगर की सेना में भगदड़ मच गई। छोटी रानी लड़ती हुई फाटक से निकल गई।

दलीपनगर की सेना ने ज़ोर के साथ जय-जयकार किया।

रामनगर में बहुत कम लड़ाके भागने से बचे। जो नहीं भागे थे, उन्होंने हथियार डाल दिये। लोचनसिंह की सेना के भी कई आदमी मारे गये और अधिकाँश घायल हो गये, परन्तु अपने अदम्य उत्साह और विजय हर्ष में घावो की पीड़ा बहुत कम को जान पड़ी। उक्त बातूनी सिपाही ने लोचनसिंह से कहा—'दाऊजू, फाटक बन्द कर लीजिये, अपनी सेना को जय-जयकार सुनाकर बुलाइये, नही तो यह विजय अकारथ जायगी।'

लोचनसिंह बिना रोष के बोला—'तुम्हारा नाम ?'

उत्तर मिला—'कफनसिंह बुन्देला।'

लोचनसिंह ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। फाटक बन्द करवा कर देवीसिंह का जय-जयकार करता रहा। दलीपनगर की सेना का घेरा रामनगर की बाहर वाली सेना और अलीमर्दान वाले दस्ते ने छोड़ दिया और दोनो टुकड़ियां दूर हट गईं। दलीपनगर की सेना ने रामनगर के गढ़ पर अधिकार कर लिया। उस अँधेरी रात में यह किसी को न मालूम होने पाया कि, देवीसिंह ने कब और कहां से गढ़ में प्रवेश किया।

देवीसिंह के आ जाने पर गढ़ की ढूँढ़ खोज की गई। छोटी रानी तो निकल गई थी, पर बड़ी रानी मिल गईं। उन्हे कैद कर लिया गया।

काम बनाने का सुभीता रहता है।' फिर राजा के मुख की ओर निश्चयात्मक दृष्टि से देखने लगा।

राजा ने कहा—'छोटी रानी को जो कोई क़ैद कर लावेगा, उसे दो सहस्त्र मुहर इनाम दी जायँगी। यह घोषणा विस्तार के साथ कर दी जाय।'

जनार्दन खुशी के मारे उछल पड़ा। बोला—'सौ मुहरें महाराज के दीन ब्राह्मण जनार्दन की ओर से भी दी जायँगी।'

उस सूचना के साथ-साथ लोचनसिंह ने मुस्कराते हुये कड़ुवेपन के साथ पूछा—'यह भी ज़ाहिर किया जायगा या नहीं कि रानी चुपचाप गिरफ़्तार हो जायँ, क्योंकि पकड़ने के बाद उन्हें छोड़ दिया जायगा?'

राजा हँस पड़ा।

एक क्षण बाद बोला—'रामनगर की जागीर का सिरोपाव चामुंडराय लोचनसिंह को इसी समय दे दिया जाय शर्माजी।'

लोचनसिंह ने बारीक आह लेकर कहा—'यदि मुझे मिल सकती होती, तो पहले ही कह चुका हूं कि मैं महाराज को लौटा देता, परन्तु वह मुझे नहीं मिलना चाहिये।'

'क्यों?' राजा ने ज़रा विस्मय के साथ पूछा।

उत्तर मिला—'इसलिये कि मैंने रामनगर नहीं जीता।'

'तब किसने जीता?' जनार्दन ने प्रश्न किया।

राजा से लोचनसिंह ने कहा—'उसका सम्पूर्ण श्रेय मेरे एक सैनिक को है। खेद है, रात के कारण उसका नाम नहीं पूछ पाया। वह जीवित अवश्य है, परन्तु अँधेरे में-नमालूम कहाँ चला गया। उसकी खोज करवाई जानी चाहिये, मर गया हो, तो उसके घर में जो कोई हो, उसे यह जागीर दे दी जाय।'

राजा ने सहज रीति से सम्मति प्रकट की—'यदि सबकी सम्मति हो, तो मैं यह चाहता हूँ कि रामनगर का कुछ भाग पतराखन के पास रहने दिया जाय। अब वह शरणागत हुआ है, इसलिये बिलकुल बेदखल न किया जाय।'

लोचनसिंह ने ज़रा निरपेक्ष भाव से कहा—'हमारे उस सैनिक का पता महाराज पहले लगवायें, तब रामनगर का कोई एक टुकड़ा पतराखन को या और किसी को दें।'

राजा बिना उत्तेजना के बोला—'लोचनसिंह, तुम्हे उस सिपाही ने कुछ तो अपना नाम बतलाया होगा ?'

'बतलाया था महाराज।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'परन्तु वह नाम बनावटी जान पड़ता है। कहता था, मेरा नाम कफनसिंह बुंदेला है ?'

'विचित्र नाम है।' राजा ने मुस्कराकर ज़रा आश्चर्य के साथ कहा—'तुम्हारी सेना में क्या सब योद्धा इसी तरह के बेतुके नाम रखते हैं।'

लोचनसिंह गंभीर होकर बोला—'यदि मेरी सेना में सब सैनिक उस कफनसिंह सरीखे हो, तो आपको घर-घर चामुंडाराई की उपाधि न बाँटनी पड़े।'

राजा ने पूछा—'क्या तुम उसका स्वर पहचान सकते हो ?'

लोचनसिंह ने जरा लज्जित होकर उत्तर दिया—'शायद न पहचान पाऊँगा। ऐसी जल्दी में सब काम हुआ और बातचीत हुई कि याद रखना कठिन है।'

'वाह रे सेनापति !' राजा ने हँसकर चुटकी ली।

लोचनसिंह का मस्तक लाल हो गया। बोला—'सेनापति को सैनिको के स्वर याद रखने की आवश्यकता नही ?'

राजा ने तुरन्त स्वर बदलकर कहा—'कफनसिंह बुंदेला।'

लोचनसिंह का क्रोध घोर विस्मय में परिवर्तित हो गया।

क्षीर स्वर में बोला—'यही स्वर सुना था।'

'महाराज का !' जनार्दन ने आश्चर्य के साथ कहा।

देवीसिंह खूब हँसकर बोला—'महाराज का नही, कफ़नसिंह बुंदेला का।'

लोचनसिंह सँभल गया। गम्भीर होकर बोला—'तब आप जागीर चाहे जिसे दे सकते हैं।'

'तीन चौथाई लोचनसिंह को और एक चौथाई पतराखन को यदि वह स्वामिभक्त बना रहा तो।'

[८२]

अपनी सेना के प्रधान भाग से राजा देवीसिंह का सम्बन्ध रामनगर में स्थापित हो गया था, परन्तु विराटा की इससे मुक्ति नहीं हुई। अली-मर्दान की सेना की कमान रामनगर के पास से खिचकर विराटा की ओर और अधिक सिमट आई। अपनी ओर अलीमर्दान की सेना को और अधिक सिमटा हुआ देखकर राजा सबदलसिंह ने समझा, दलीपनगर की सेना पीछे हट गई है। सेना छोटी थी। मुट्ठी-भर दांगी इतनी बड़ी फौज का सामना कर रहे थे—अपनी वान पर न्योछावर होने के लिये। तोपें थोड़ी थी, साहस बहुत।

कुञ्जरसिंह तोप के काम में बहुत कुशल था। यद्यपि सबदलसिंह ने राजा देवीसिंह के भय के कारण कुंजरसिंह को छोटा-सा ही पद दे रक्खा था, तथापि अपनी दिलेरी और चतुरता के कारण बहुत थोड़े समय में उसे तोपची से सभी तोपो के नायक का पद मिल गया। तोपों के नायक को उसके बाद ही सेना की विश्वासपात्रता सहज ही प्राप्त हो गई। वह बिराटा के कागजो मे सेनापति नही था, परन्तु वास्तव में था और सैनिको के हृदय में उसके शौर्य ने स्थान कर लिया था।

रामनगर-विजय के दूसरे दिन सध्या समय राजा देवीसिंह ने नाव द्वारा बिराटा जाने का निश्चय किया। अलीमर्दान से आँख बचाने के लिये एक छोटी-सी नाव में थोड़े से आदमी ले लिये और लोचनसिंह, जनार्दन इत्यादि से जाते समय कह गये कि आधी रात के पहले लौट आयेगे।

बेतवा का पूर्वीय तट पतराखन के शरणागत हो जाने के कारण निस्संकट हो गया था, इसलिये उसी ओर से अन्धेरे में देवीसिंह अपना नाव बिराटा ले गया और जहाँ मन्दिर के पीछे पश्चिम से पूर्व की ओर पठारी धीरे-धीरे ढालू होते-होते जल में समा गई है, वही नाव लगा ली।

अपने सिपाहियों में से दो को साथ लेकर देवीसिह अनुमान से मन्दिर की ओर बढ़ा।

वही एक तोप लगी हुई थी। कुन्जरसिंह पास खड़ा था, परन्तु राजा असाधारण मार्ग से होकर आया था। इसलिये जब तक बिलकुल पास न आ गया, कुन्जरसिंह को मालूम न हुआ।

जब देवीसिंह पास आ गया, कुन्जर ने ललकारा, और तलवार खींचकर दौड़ा।

देवीसिंह ने शान्त, परन्तु गम्भीर स्वर में कहा—'मै हूँ दलीपनगर का राजा देवीसिंह।'

कुन्जरसिंह ने वार नही किया, परन्तु पास के सैनिको को सावधान करके देवीसिंह के पास आगे बढ गया।

कम्पित स्वर में बोला—'इस अंधेरे में आपके यहाँ आने की क्या ज़रूरत थी ?'

अबकी बार देवीसिंह के अकचकाने की बारी आई। बोला—'तुम कौन ?'

'मैं हूँ कुन्जरसिंह। महाराज नायकसिंह का कुमार।'

'आप .। तुम यहाँ कैसे ?'

इस सम्बोधन की अवज्ञा कुन्जरसिंह के हृदय मे चुभ गई। देवीसिंह से कहा—'क्षत्रिय अपनी तलवार की नोक से अपने लिये ससार में कही भी ठौर बना लेता है।'

'आपको बिराटा का शत्रु समझा जाय या मित्र ?'

'जैसी आपकी इच्छा हो।'

'सबदलसिंह कहा हैं ?'

'गढी की रक्षा कर रहे हैं।'

'मैं उनसे मिलना चाहता हूँ ?'

'किसलिये ?'

'रामनगर हमारे हाथ में आ गया है। विराटा के उद्धार के लिये सुभीता होते ही हम शीघ्र आते हैं, तब तक अलीमर्दान का निरोध दृढ़ता के साथ करते रहे, इस बात को बतलाने के लिये।'

'यह सन्देशा उनके पास यथावत् पहुँचा दिया जायगा।'

देवीसिंह ने क्षुब्ध होकर कहा—'आप यदि इस गढ़ी में मित्र के रूप में न होते, तो आप जिस पद के वास्तव में अधिकारी हैं, वह आपको तुरन्त दे दिया जाता।'

कुञ्जरसिंह ने अपनी तोप और सुलगाते हुये पहले घोड़े की ओर, फिर रामनगर की ओर देखा। एक बार मन में आया कि सैनिकों को आज्ञा देकर आगन्तुक को कैद कर लूँ और तोपों के मुँह से रामनगर पर गोले उगलवा दूँ, परन्तु कुछ सोचकर रह गया।

बोला—'इसका ठीक उत्तर देना मेरे लिये असम्भव हो रहा है, परन्तु कभी उत्तर दूँगा अवश्य।'

देवीसिंह ने कहा—'मुझे इस समय इस व्यर्थ विवाद के लिये अवकाश नही, यदि आप सबदलसिंह को स्वयं बुला सकते हों, तो बुला लाइए, नहीं तो इन सैनिको में से कोई उनके पास चला जाय और कह दे कि दलीपनगर के महाराज बड़ी देर से खड़े बाट जोह रहे हैं।'

कुञ्जरसिंह ने दाँत पीसे, परन्तु बड़े संयम के साथ अपने सैनिकों से कहा—'एक आदमी राजा के पास जाओ। जो कुछ इन्होंने कहा है, उन्हे सुना देना। इनसे मुलाक़ात मन्दिर में होगी। चार आदमी इन्हें लेकर मन्दिर में बिठलाओ।'

'इस पर एक सैनिक सबदलसिंह के पास गया और चार देवीसिंह और उनके साथियो को मन्दिर में ले गये। उस समय कुञ्जरसिंह ने बड़े क्षोभ और क्रोध की दृष्टि से उन लोगों की ओर देखा।

मन में बोला—'इस भुक्खड़ भिखारी के दिमाग में इतना घमण्ड! दलीपनगर के महाहाज! महाराज नायकसिंह के दलीपनगर का अधिकारी यह चोर! चाहे जो हो, यदि इसके टुकड़े-टुकड़े न किये, तो मनुष्य नही।'

एक सैनिक ने कुञ्जरसिंह से अपनी अपार सावधानी जताने के लिये कहा—'यह शायद देवीसिंह न हो। नवाब के आदमी हों, वेश वदलकर आये हों।'

बिना मुँह खोले हुये कुञ्जरसिंह बोला—'हूं।'

सिपाही कहता गया—'मन्दिर को कहीं ये लोग अपवित्र न कर दें। देवी, देवी की पुजारिन—'

कुञ्जरसिंह ने जाग्रत-सा होकर कहा—'तुमने कैसे अनुमान किया?'

'मैं खूब जानता हूं।' वह बोला—'ये लोग मूर्तियां तोड़ डालते हैं, स्त्रियो को जबरदस्ती पकड़ ले जाते हैं। उसके साथ दो आदमी भी हैं। नाव में बैठकर आये होगे। पठारी के नीचे नाव लगी होगी। उसमें और आदमी भी होगे।'

तमककर कुञ्जरसिंह ने कहा—'और हमारे सिपाही क्या उन लोगो गुलाम हैं, जो उन्हें उत्पात करने देंगे?'

वह सैनिक ज़रा सहम गया। परन्तु ढिठाई के साथ बोला—'हम लोग तो अपने प्राणो की होड़ लगा ही रहे हैं, परन्तु कोई अनहोनी न हो जाय, इसीलिये कहा। शायद उसके पास और आदमी किसी दूसरी ओर से भी आ जायँ।'

कुंजरसिंह ने सोचा—'कहीं देवीसिंह नरपतिसिंह इत्यादि को रामनगर न लिवा ले जाय। शायद गोमती को लिवाने आया हो और उसके साथ उन लोगों से भी चलने के लिये कहे।

कुञ्जरसिंह ने और अधिक नहीं सोचा। सैनिक से कहा—'तुम तोप पर डटे खड़े रहो। मैं देखता हूँ, वहाँ क्या होता है। राजा सबदलसिंह मन्दिर में थोड़ी देर में आते होगे। वहाँ मेरी उपस्थिति आवश्यक होगी।'

फिर मन में बोला—'देवीसिंह ने रामनगर को विजय कर लिया! मेरी तोपो के भाग्य में यह पराक्रम न लिखा था। अब देवीसिंह और अधिक शक्तिशाली हो गया। जनार्दन को प्रपंच रचने के लिये और भी

अधिक साधन सुलभ हो जायँगे और मुझे किसी और भी अधिक सघन जंगल की राय लेनी पड़ेगी। कुमुद का क्या होगा? संसार की विपत्तियों से उसे कौन बचायेगा? नरपतिसिंह के बाहुओं में इतना बल नहीं है। सबदलसिंह का एक तरह आश्रित होकर रहेगा।' फिर निश्चय के साथ होठों को दबाकर उसने व्यक्त रूप से कहा—'देखूँगा।'

थोड़ी देर में वह मन्दिर के द्वार पर पहुंच गया। वहां पहरे पर सिपाही थे। जो आदमी कुञ्जरसिंह ने देवीसिंह के साथ किये थे, वे भी पहरेवाले सिपाहियों के साथ रह गये।

भीतर कुछ बातचीत हो रही थी। कुञ्जरसिंह ने सोचा वहीं चलकर सुनूँ। पहरे वाले सिपाही से पूछा, सबदलसिंह आ गये या नहीं। मालूम हुआ अभी नहीं आये हैं। कुंजरसिंह और आगे बढ़ा। अभी कुमुद इत्यादि मन्दिर को छोड़कर अपनी खोह में गई थीं, परन्तु आंगन में अन्धकार छाया हुआ था। केवल मूर्ति के पास घी का एक छोटा-सा दीपक टिमटिमा रहा था। उसी जगह बातचीत हो रही थी।

कुंजरसिंह पहले तो ठिठका, फिर सोचा, सबदलसिंह के आने तक बातचीत सुनने के लिये आगे न बढ़ूँ। परन्तु उसने यह विचार शीघ्र बदल दिया। मन में कहा—'देवीसिंह सरीखा आदमी इन लोगों से क्या बातचीत करता है, उसे छिपकर सुनने में कोई दोष नहीं।'

उसके क्रूर हृदय ने इस तरह के दरिद्र प्रयत्न के करने से उसे एक-आध बार रोका भी, परन्तु अन्त में उसका पहला निश्चय ही ऊपर रहा।

ज़रा आगे बढ़कर एक कोने में छिपे-छिपे कुँजरसिंह वहाँ की बातचीत सुनने लगा।

[८४]

देवीसिंह अपने साथ भेजे गये चारो सिपाहियो को पहरे वालों के पास छोडकर अपने दोनो सैनिको को लिये हुये, मन्दिर में चला गया। मूर्ति के पास दीपक टिमटिमाता हुआ देखकर आगे बढा। तब निकट पहुँच गया, सबसे पहले नरपतिसिह मिला।

उसने अकचकाकर पूछा— आप लोग कौन हैं ?'

देवीसिह ने उत्तर दिया—'तुम लोगो के मित्र।'

देवीसिह बैठने के लिये उपयुक्त स्थान देखने लगा।

नरपति एक क्षण चुप रहकर जरा जोर से बोला—'आपका नाम ?'

'थोडी देर में अपने आप प्रकट हो जायगा।' देवीसिह ने जरा बेतकल्लुफी के साथ कहा।

इतने में रामदयाल आ गया।

पहले उसे सदेह हुआ, फिर सोचा, असभव है। विश्वास को दृढ करने के लिये जरा और आगे बढा।

पहचानने में विलम्ब नही हुआ।

तुरन्त पीछे हटने की ठानी, परन्तु देवसिह ने पहिचान लिया। बोले—'रामदयाल ?'

'महाराज !' अनायास रामदयाल के मुँह से निकल पड़ा।

उन्होने कहा—'बड़ा आश्चर्य है। तू यहा कैसे आया ? और कौन तेरे साथ है ?'

राजा ने बहुत संयत भाव से प्रश्न किया था, परन्तु आत्म गौरव से प्रेरित प्रश्न का स्वर काफी ऊँचा होकर रहा।

कुमुद रामदयाल के पीछे आकर खडी हो गई।

देवीसिंह ने देख लिया, परन्तु पहिचाना नही। तो भी रामदयाल के पीछे एक स्त्री की उपस्थिति कई कारणो से असह्य-सी हुई। जरा प्रखर स्वर में पूछा—'जानता है रामदयाल यह मन्दिर है और मैं—'

'महाराज, [illegible] पराध हू। मैंने क्या किया है ?'

लथडा रहे थे, मानो विजय पताकायें हों, सूर्य की किरणो ने उनके पीले वस्त्र खंडों की ओर झाका और उनकी दमकती तलवारो को चमका दिया, मानो रश्मियो ने उन्हे अर्घ दिया हो।' उनका अन्तिम वलिदान, 'अपनी आन पर अटल थे यह, अपनी वान पर निश्चलता के साथ मरे यह।' सयत भाषा मे इससे बढकर प्रभाव पूर्ण आख्यान शायद ही मिले।

अब हमे उपन्यास के मूल चमत्कार पर आना चाहिए। बिराटा की पद्मिनी मे वर्मा जी ने अपने साहित्यिक जीवन की सवसे वडी सफलता प्राप्त की है। एक अलौकिक वातावरण सारे उपन्यास पर व्याप्त है। कुमुद के रूप की यही अलौकिकता ही उसका चमत्कार है। वह एक सुन्दरता है जो अपनी शान से हृदय पर एक अलौकिकता का आतंक जमा देती है। कुमुद के चरित्र मे आरम्भ ही से लौकिकता और अलौकिकता का द्वन्द होता है। इस द्वन्द को व्यक्त करने मे पात्रो से काम लिया गया है। कुमुद के अपरूप रूप की अनाघ्रात पुष्प के समान पवित्रवास हृदय पर एक संभ्रम छा देती है किन्तु वही, लोचनसिंह तथा रामदयाल की वह एक साधारण स्त्री से अधिक नही मालूम देती। उसकी उपस्थिति उपन्यास मे एक अलक्षित देवत्व की उपस्थिति के समान व्याप्त है। उस तलवार और बन्दूको की खटखटाहट रक्तपात तथा उत्पात के युग में, स्त्रियां तक युद्ध और हत्या को शक्ति की उपासना से पृथक नही मानती थी। कुमुद का उज्जवल व्यक्तित्व इस अन्धकार मय युग को अलौकित करता है। उसके आने पर तनी हुई तलवारे थम जाती हैं किन्तु केवल एक ही क्षण के लिए, वह पवित्र आत्मा उस युग के लिए नही थी वह तो स्वर्ग की एक ज्योति थी, नन्दन कानन की एक कुसुम बालिका थी जो उस भयानक जग से उड़ गई, किन्तु उसकी वास वही रह गई।

अलौकिकता का निर्माण करने मे लेखक के सम्मुख सबसे बड़ा खतरा रहता है, उसको अद्भुत या अविश्वसनीय बना देना। किन्तु वर्मा जी ने कुमुद के चित्रण मे अत्यत सावधानी से काम लिया है।

कुमुद की अलौकिकता उस अंधविश्वास पर आश्रित नही है जो विकट से विकट सशयालु पर भी अपना रोब जमा लेती है, बल्कि उस प्रभाव पर हैं जो उसके अलौकिक रूप और व्यक्तित्व का एक स्वाभाविक गुण है।

उसके रूप वर्णन में—यदि धृष्टता क्षमा की जाय तो मैं यही कहूगा कि—वर्मा जी ने उसी कौशल को अपनाया है जो गोस्वामी जी ने जग जननी सीता के वर्णन मे प्रदर्शित किया है। उस रूप वर्णन मे शृङ्गार की कामोद्दीपकता की गंध भी नही आती। आरम्भ मे ही वर्मा जी इस प्रकार चलते है—'वह कन्या रूप राशि है, उस पर देवत्व के आरोप होने मे विलम्ब न हुआ, अविश्वास का स्थान न था। दांगी की लडकी मे इतना रूप कभी न देखा गया, गांव में दुर्गा की एक मूर्ति थी, शिल्पी की कल्पना उसे वह रूप रेखा न दे पाई थी जो इस बालिका में सहज ही भासित होती थी। ज्यों ज्यो उसने वय प्राप्त किया त्यों त्यो अङ्ग सुडौल होते गये, सौन्दर्य की विभूति बढती निरखती गई और गाव वाले उस कन्या को एक निर्भ्रान्त सिद्धात की भाँति स्वीकार करते गये।'

इस रूप वर्णन मे सौन्दर्य का देवत्व के साथ सम्मेलन कर दिया गया, रूप वर्णन में मामूली रोज के चलते हुए उपमानो का आश्रय नही लिया गया है, वर्णन अपनी सजीवता से सजीव हो उठा है।

दूसरा—'कुमुद चट्टान की टेक पर खडी हो गई, ऐसा मालूम होता था कि मानो कमलो का समूह उपस्थित हो गया हो। जैसे प्रकाश पुन्ज खडा कर दिया गया है। पैरो की पैंजनों पर सूर्य की स्वर्ण रेखा फिसल रही थी। पीली धोती मद पवन के झकोरे से दुर्गा की पताका की भांति धीरे धीरे फहरा रही थी, बडे बडे काले नेत्रों की बरौनियां भौहो के पास पहुच गई थी। आंखों से झरती हुई प्रभा ललाट पर से चढ़ती हुई उस निर्जन स्थान को अलौकित सा करने लगी। वे चट्टान और पठारियां, वह दुर्ग और नीली धार वाली बेतवा, वह शांत भयावना

सुनसान, वह हृदय को चञ्चल कर देने वाली एकातता और चट्टान टेक कर खडी हुई अतुल सौन्दर्य की वह मूर्ति ।

इस चित्रण मे ध्यान देने की बात प्राकृतिक पृष्ठ भूमि और उपमानो का चुनाव है । दुर्गा की पताका से पीली साडी की उपमा ।

यही चित्रण विलास के उपकारणो से सयुक्त होने पर काम का साधन बन सकता था । इस रूप का प्रभाव भी जो उसके प्रेमी पर पडता है वह उसे इस दिव्य सौन्दर्य की मूर्ति के सम्मुख नत कर देता है, उसमे आत्म समर्पण की भावना है, भोग की नही ।

रूप के अतिरिक्त चरित्र भी इस देव कन्या का यही प्रभाव रखता है । सरलता निष्कपटता तथा भक्ति के योग से उसका चरित्र साधारण से दिव्य कोटि मे पहुचा दिया गया है । देवत्व की भावना ने उस बेचारी बालिका को बचपन से ही ससार से निर्वासन दे दिया है । उसके प्राणों मे भी निजत्व की अभिलाषा है, उसने वरदान दिये थे पीठ पर हाथ फेरा था किन्तु इसका उसके जीवन मे अवसर ही न आया था कि वह एक स्त्री से स्त्री की भाति बात करे । वह गोमती को अपनी बहन बनाना चाहती है, किन्तु वह इस बहनापे के भार का बहन करने मे असमर्थ है । वह तो उस कृपा को अपने पति के कल्याण के लिये देवता के वरदान की भाति ग्रहणकर उसके नजदीक नही आ पाती । एक ही व्यक्ति उसके निकट आता है । वह है कुंजरसिह उसके सम्मुख भी वह पवित्रता की मूर्ति देवी की उपासिका पहले है, प्रेमिका बाद में । यही पर उपन्यास कार ने अपनी सूझ से कुमुद के चरित्र मे जान डाल दी है । वह अपने को साधारण स्त्री किन्तु देवी की उपासिका, दुर्गा और ससार के बीच मे एक मध्यस्थ-सी मानती है, यही उसका दिव्यता का दावा है, किन्तु कुंजर के प्रेम को वह स्वीकार करती है प्रलय की बेला मे, जब तोपे बिराटा गढी पर आग उगल रही थी । तब प्रेम लीला का न तो समय था न औचित्य जब स्वीकृति मे वासना की गध नही आ सकती थी तभी, उसके पहले नही, उसने कुन्जर के कधे पर सिर रखा उसके आलिगन को स्वीकार

किया। यहां लौकिकता विजय प्राप्त करती दिखाई देती है। किन्तु दूसरे ही क्षण मे अन्तिम दृश्य उपस्थित है। युद्ध का अवसान है, दागी अपने को होमकर चुके है कुमुद गीत गाती हुई बेतवा के दह मे लीन होने जा रही है, यह वह दृश्य है जिसे देखकर राक्षसवृत्ति के अलीमर्दान के मुह से भी 'कमाल है' निकल गया। देवी लीन हो गयी, चट्टान की छोटी सी खोल पर पद चिन्ह अकित रह गये। प्रकृति की गोद ने दिव्य विभूति को, मानव की हिंसा और लिप्सा से छिपा लिया।

बुन्देलखण्ड के वीरतापूर्ण इतिहास के ककाल मे जीवन सचार तो वर्मा जी का काम है ही किन्तु वह बाहर के ही नही भीतर के भी दर्शक हैं। उनकी अन्तर्दृष्टि युग की आत्मा का दर्शन करती है और समाज के अन्तर मे छिपे हुये रोग कीट को भी खोज लेती है। मैं उनके सामाजिक उपन्यासो के विषय में अभी कुछ नही कहता किन्तु उनके ऐतिहासिक रचनाओ मे भी वही धारा प्रवाहित होती है। समाज की विषमता, उच्च जातियो द्वारा इतर वर्ग का तिरस्कार, जाति के सामने मनुष्यता की अवहेलना। मानव प्रवृत्ति जातीयता की अपेक्षा नही रखती यही वर्मा जी का सिद्धान्त है।

गढकुण्डार मे यह अधिक व्यक्त हो उठा है, वहां बुन्देलखण्ड की खगार जाति अपने विरुद्ध एक अवहेलना से युद्ध कर रही है। खगार कुमार का दोष यही था कि उसने खगार होकर एक बुन्देल बाला से प्रेम की धृष्टता की। कुँजरसिह का यही दोष था कि वह दासी पुत्र था। साहस शौर्य शालीनता सब जाति के आसरे हैं। जाति विद्वेष और अभिमान का शिकार होकर किस प्रकार एक होनहार भविष्य धूल मे मिल जाता है, इस दुर्घटना का वर्मा जी ने बडी मार्मिकता के साथ चित्रण किया है। गढकुण्डार मे कथानक पात्र सभी पुकार पुकार कर कह रहे है। बिराटा की पद्मिनी मे यह अलक्षित है क्योकि यहाँ उपन्यासकार सुधारक प्रवृत्ति से प्रबल है। फिर भी गोमती के शब्दो मे उन्ही की आत्मा बोल रही है। "मुझे तो यहा कोई क्षत्रिय नही दिखाई देता। मैं

तो देख रही हूं कि क्षत्रियत्व की डींग मारने वाले अपने अहंकार की झनकार को बढ़ाने और परपीड़न के सिवा कुछ नहीं करते।"

वर्मा जी अतीत के प्रेमी हैं अन्धे उपासक नहीं। वे अतीत को उसकी अच्छाई और बुराई दोनो के साथ अंकित करते हैं। ऐतिहासिक उपन्यास निरुद्देश्य रोमांस नहीं। उनमें सामाजिक उपयोगिता है, जो प्रबुद्ध राष्ट्र के काम आ सकती है।

११, साउथ एवेन्यू
नई दिल्ली

अशोक जी

परिचय

सुरतान पुरा (परगना मोठ, जिला झांसी)—निवासी श्रीनन्दू पुरोहित के यहां मै प्राय: जाया करता था। उन्हे किंबदतियां और कहानियां बहुत आती थी। वह कहते-कहते कभी नही थकते थे, चाहे सुनने वालों को सुनते-सुनते नीद भले ही आ जाय।

एक रात में उनके यहां गया। नीद नही आ रही थी, इसलिये एक कहानी कहने के लिये प्रार्थना की। जरा हँसकर बोले—'तुम भाई, सो जाते हो। कहानी की समाप्ति पर 'ओफ्फो!' कौन कहेगा?'

मैंने उनसे कहा—'काका, आज नही सोऊँगा, चाहे होड लगा लो।'

'अच्छा', वह बोले—'भैया, मैं आज ऐसी कहानी सुनाऊँगा, जिस पर तुम कविता बनाकर छपवा देना।'

वह पढ़े-लिखे न थे, इसलिये हिंदी की छपी हुई पुस्तको को प्राय: कविता की पोथियाँ कहा करते थे।

'बिराटा की पद्मिनी' की कहानी उन्होने सुनाई थी। यह कहानी सुनकर मुझे उस समय तो क्या, सुनने के बाद भी बडी देर तक, नीद नही आई। परतु खेद है, उसके प्रस्तुत रूप में समाप्त होने के पहले ही उन्होने स्वर्गलोक की यात्रा कर दी, और मै उन्हे परिवर्तित और सवर्द्धित रूप में यह कहानी न बना पाया!

पद्मिनी की कथा जहाँ-जहाँ दाँगी हैं, झांसी-जिले के बाहर भी, प्रसिद्ध होगी। उपन्यास लिखने के प्रयोजन से मैंने नंदू काका की सुनाई हुई कहानी के विख्यात अंशो की परीक्षा करने के लिये और कई जगह उसे सुना। बिराटा के एक वयोवृद्ध दागी से भी हठ-पूर्वक सुना। उस वयोवृद्ध ने मुझसे कहा था—'अब का धरो इन बातन में? अपनो काम देखो जू। अब तो ऐसे-ऐसे मनुष होने लगे कै फूंक मार दो, तो उड जायँ।' इसके पश्चात् मैंने बिराटा, रामनगर और मुसावली की दस्तूर-देहिया सरकारी दफ्तर में पढी। उनमें भी पद्मिनी के बलिदान का सूक्ष्म वर्णन पाया।

मुसावली की दस्तूरदेही में लिखा है कि मुसावली—पाठे के नीचे

के दो कुश्रो को एक बार दतिया के महाराज ने खुदवाया था। ये कुएँ पक्के थे, परन्तु अब अस्त-व्यस्त हैं।

देवीसिंह, लोचनसिंह, जनार्दन शर्मा, अलीमर्दान इत्यादि नाम काल्पनिक हैं, परतु उनका इतिहास सत्य-मूलक है। देवीसिंह का वास्तविक नाम इस समय नही बतलाया जा सकता। अनेक कालो की सच्ची घटनाओ का एक ही समय में समावेश कर देने के कारण मै इस पुरुष के सम्बन्ध की घटनाओ को दूसरी घटनाओं से अलग करके बतलाने में असमर्थ हूं। जनार्दन शर्मा का वास्तविक व्यक्तित्व एक दु.खांत घटना है। जिस तरह जनार्दन ने जाल रचकर देवीसिह को राज्य दिलाया था, उसी तरह वह इतिहास और किंबदंतियो में भी प्रसिद्ध है, परंतु वास्तविक जनार्दन का अन्त बड़ा भयानक हुआ था।

कहा जाता है, राजा नायकसिंह के वास्तविक नामधारी राजा के मर जाने के बाद उनकी रानी ने प्रण किया था कि जब तक जनार्दन (वास्तविक व्यक्ति) का सिर काटकर मेरे सामने नहीं लाया जायगा, तब तक मैं अन्न ग्रहण न करूँगी। रानी का एक सेवक जब उस बेचारे का सिर काट लाया, तब उन्होने अन्न ग्रहण किया। यह घटना झांसी के निकट के एक ग्राम गोरामछिया की है।

लोचनसिंह के वास्तबिक रूप का इस संसार में विलीन हुए लगभग बीस वर्ष से अधिक नही हुए। वह बहुत ही उद्दंड और लडाकू प्रकृति के पुरुष थे। मेरे मित्र श्रीयुत् मैथिलीशरण जी गुप्त ने उनके एक उद्दड कृत्य पर 'सरस्वती' में 'दास्ताने' शीर्षक से एक कविता भी लिखी थी।

परंतु जैसा मैं पहले कह चुका हूं, उपन्यास-कथित घटनाएँ सत्य-मूलक होने पर भी अपने अनेक कालों से उठाकर एक ही समय की लडी में गूँथ दी गई हैं, इसलिये कोई महाशय उपन्यास के किसी चरित्र को उसके वास्तविक रूप का संपूर्ण प्रतिबिंब न समझें, और यदि कोई बात ऐसे चरित्र की उन्हे खटके तो बुरा न मानें। इसी कारण मैं उपन्यास-वर्णित मुख्य चरित्रो का विस्तृत परिचय इस समय न दे सका।

लेखक

विराटा की पद्मिनी

[१]

मकर-सक्रांति के स्नान के लिये दलीपनगर के राजा नायकसिंह पहूज में स्नान करने के लिये विक्रमपुर आये। विक्रमपुर पहूज-नदी के बाएँ किनारे पर बसा हुआ था। नगर छोटा-सा था, परन्तु राजा और राजसी ठाट-बाट के इकट्ठे हो जाने से चहल-पहल और रौनक बहुत हो गई थी।

दूसरे दिन दोपहर के समय स्नान का मुहूर्त था। बिना किसी काम के ही राजा के कुछ दरबारी सन्ध्या के उपरांत राजभवन में मुजरा के बहाने गपशप के लिये आ गये। जनार्दन शर्मा यद्यपि मन्त्री न था, तथापि राजा उसे मानते बहुत थे। वह भी आया।

बातचीत के सिलसिले मे राजा ने जनार्दन से कहा—'पहूज में तो पानी बहुत कम है। डुबकी लगाने के लिये पीठ के बल लेटना पडेगा।'

'हाँ महाराज !' जनार्दन ने सकारा—'पानी मुश्किल से घुटनो तक होगा। थोड़ी दूर पर एक कुण्ड है, उसमे स्नान हों, तो वैसी मर्जी हो।'

अधेड़ अवस्था का दरबारी लोचनसिंह, जो अपने सनकी स्वभाव के लिये विख्यात था, बोला—'दो हाथ के लम्बे-चौड़े उस कुण्ड मे डुबकी लगाकर कीचड़ उछालना होली के हुल्लड़ से कम थोडे ही होगा।'

जिस समय लोचनसिंह राजा के सामने बातचीत करने के लिये मुँह खोलता था, अन्य दरबारियो का सिर घूमने लगता था। उमर के साथ-साथ राजा के मिजाज़ मे गरमी बढ गई थी। बहुधा आपस मे अकेले

में, लोग कहा करते थे, पागल हो गये हैं। लोचनसिंह की बात पर राजा ने गरम होकर कहा—'तब तुम सबो को कल कोस-भर नदी खोदकर गहरी करनी पड़ेगी।'

लोचनसिंह बोला—'मैं अपनी तलवार की नोक से कोस-भर पहूज-नदी तो क्या, बेतवा को भी खोद सकता हूँ। हुक्म-भर हो जाय।'

राजा को कोप तो न हुआ, परन्तु खीज कुछ बढ गई। कुछ कहने के लिये राजा एक क्षण ठहरे। सैयद आगा हैदर राजवैद्य एक सावधान दरबारी था। मौका देखकर तुरन्त बोला—'महाराज की तबीयत कुछ दिनों से खराब है। धार्मिक कार्य थोड़े जल से भी पूरा किया जा सकता है। अगर मुनासिब न समझा जाय, तो गहरे, ठडे पानी में देर तक डुबकी न ली जाय।'

लोचनसिंह तुरन्त बोला—'ऐसी हालत मे मैं महाराज को पानी में अधिक समय तक रहने ही न दूँगा। जितना पानी इस समय पहूज मे है, वह बीमारी को सौ-गुना कर देने के लिये काफी है।'

राजा ने दृढ़तापूर्वक कहा—'यही तो देखना है लोचनसिंह। बीमारी बढ़ जाय, तो हकीमजी के हुनर की परख हो जाय तो यह भी मालूम हो जाय कि तुम मुझे पानी में एक हज़ार डुबकियाँ लगाने से कैसे रोक सकते हो?'

लोचनसिंह बोला—हकीमजी का कहना न मानकर जब महाराज को डुबकी लगाने पर उतारू देखूँगा, तब अपना गला काटकर उसी जगह डाल दूँगा, फिर देखा जायगा, कैसा हौसला होता है।'

लोचनसिंह की सनक से राजा की भड़क का ज्वार बढ़ा। बोले—'शर्माजी पहूज में स्नान न होगा। उसमें पानी नही है। पहले तुमने नही बतलाया, नही तो इस कम्बख्त नदी की तरफ सवारी न आती।'

'महाराज, महाराज!' जनार्दन ने सकपकाकर कहा—'मुझे स्वयं पहले से मालूम न था।'

राजा बोले—'बको मत। तुम्हारे षड्यन्त्रों को खूब समझता हूँ। कुञ्जरसिंह को बुलाओ।'

कुञ्जरसिंह राजा का दासी का पुत्र था। वह राज्य का उत्तराधिकारी न था, तो भी राजा उसे बहुत चाहते थे। राजा के दो रानियाँ थी। बड़ी रानी उसे चाहती थी, इसलिये छोटी का उस पर प्यार न था। राजा बहुत वृद्ध न हुये थे। इधर-उधर के कई रोगो के होते हुये भी राजवैद्य ने आशा दिला रक्खी थी कि उत्तराधिकारी उत्पन्न होगा। इसीलिये राजा ने दूसरा विवाह भी कर लिया था और दासियो के बढाने की प्रवृत्ति मे भी चाहे पागलपन से प्रेरित होकर, चाहे किसी प्रेरणा-वश, बहुत अधिक कमी नही हुई थी। यह देखकर राजसभा के लोगों को विश्वास था कि किसी-न-किसी दिन पुत्र उत्पन्न होगा।

कुञ्जरसिंह आया। २०-२१ वर्ष का सौदर्यमय बलशाली युवा था। राजा ने उसे अपने पास बिठलाकर कहा—'कल पहूज में स्नान न होगा।'

'क्यों काकाजू ?' कुञ्जरसिंह ने सकोच के साथ पूछा।

'इसलिये कि उसमें पानी नही है।' राजा ने उत्तर दिया—'हमको व्यर्थ ही यहाँ लिवा लाये।'

कुञ्जरसिंह राजा के विक्षिप्त स्वभाव से परिचित था। जनार्दन और लोचनसिंह का मुँह ताकने लगा।

लोचनसिंह ने कहा—'हकीमजी कहते हैं, नहाने से बीमारी बढ जायगी।'

कुञ्जरसिंह ने धीरे से कहा—'दलीपनगर में ही मालूम हो जाता तो यहाँ तक आने का कष्ट महाराज को क्यो होता ?'

आत्मरक्षा मे हकीम को कहना पडा—'थोडी देर के स्नान से कुछ नुकसान न होगा।'

राजा बोले—'तब पालर की झील में डुबकी लगाई जायगी, बड़े सवेरे डेरा पालर पहुच जाय।'

पालर ग्राम विक्रमपुर से चार कोस की दूरी पर था। चारो ओर पहाड़ो से घिरी हुई पालर की झील मे गहराई बहुत थी। उसमें डुबकियाँ लगाने के परिणाम का अनुमान करके आगा हैदर काँप गया। बोला—'ऐसी मर्जी न हो। झील बहुत गहरी है और उसका पानी बहुत ठंडा है।'

'और तुम्हारी दवा घूरे पर फेकने लायक।' राजा ने हँसकर और फिर तुरन्त गम्भीर होकर कहा—'तुम्हारे कुश्तो में कुछ गुण होगा और तुम्हारी शेखी मे कुछ सचाई, तो झील में नहाने से कुछ न बिगड़ेगा। नही तो रोज-रोज़ के मरने से तो एक ही दिन मर जाना कही अच्छा।'

जनार्दन विषयांतर के प्रयोजन से बोला—'अन्नदाता, सुना जाता है, पालर मे एक दाँगी के घर दुर्गाजी ने अवतार लिया है। सिद्धि के लिये उनकी बड़ी महिमा है।'

'तुमने आज तक नही बतलाया?' राजा ने कड़कर पूछा और तकिए पर अपना सिर रख लिया।

लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'सुनी हुई खबर है। गलत निकलती, तो कहने वाले को यों ही अपने सिर की कुशल के लिये चिन्ता करनी पड़ती।'

'चुप-चुप।' राजा ने तमककर कहा—'बहुत बड़बड़ मत करना, नही तो पीछे पछताओगे।'

'मूड ही कटवा लेगे आप?' लोचनसिंह अदम्य भाव से बोला—'सो उसका मुझे कुछ डर नही है।'

राजा प्रतिहत-से हो गये।

उपस्थित उलझाव का एक ही सुलझाव सोचकर कुञ्जरसिंह ने कहा—'काकाजू, पालर चलकर संक्रांति का स्नान हो जाय और उस अवतार-कथा की भी मीमासा कर ली जाय।'

किसी दरबारी को विरोध करने का साहस नही हुआ। लोचनसिंह कोई नवीन उत्तेजनापूर्ण बात कहने को ही था कि राजा ने जनार्दन से प्रश्न किया—'इस अवतार को हुये कितने दिन हो गये?'

'सुनता हूँ अन्नदाता कि वह लडकी अब १६-१७ वर्ष की है।' जनार्दन ने राजा को प्रसन्न करने के लिये उत्तर दिया—'पालर मे तो उसके दर्शनो के लिये दूर-दूर से लोग आते हैं।'

राजा ने कहा—'कल देखूँगा।'

जनार्दन जी कडा करके वोला—'परन्तु महाराज।'

'हर वात मे परन्तु।' राजा ने टोककर कहा—'क्या परन्तु ?'

'पालर वड़नगर वालो के राज्य मे है।' जनार्दन ने उत्तर दिया—'बिना पूर्व-सूचना के पराये राज्य मे जाने का न-मालूम क्या अर्थ-अनर्थ लगाया जाय। सब तरफ गोलमाल छाया हुआ है। दिल्ली मे तो गड़बड़ ही मची हुई है।'

राजा ने वात काटकर कहा—'तुम दलीपनगर को गडबड में डाल दो। देखो शर्मा, एक वात है, हम पालर में डाका डालने तो जा नही रहे हैं, जो पहले से वडनगर वालो को सूचना दे। वे हमारे भाई-बध हैं। कोई भय की वात नही है। तैयारी कर दो।'

आगा हैदर को भी राजा की हाँ-मे-हाँ मिलानी पडी—'कोई डर नही शर्माजी, किसी साँड़नी-सवार के जरिये सूचना भिजवा दी जाय। बडनगर यहाँ से बहुत दूर भी नही है। यदि दूरी का मामला होता, तो और वात थी।'

[२]

दूसरे दिन राजा ने पालर की विशाल झील में, जो आजकल गढमऊ की झील के नाम से विख्यात है, खूब स्नान किया। बीमारी बढ़ी या नही, यह तो उस समय किसी ने नही जाना, परन्तु राजा के दिमाग को कुछ ठण्डक ज़रूर मिली और वह उस दिन उतने उतावले नही दिखाई पड़े। अवतार की बात वह भूल गये और किसी ने उन्हे उस समय स्मरण भी नही दिलाया।

स्नान करने के बाद कुञ्जरसिह को उक्त अवतार के दर्शन की लालसा हुई।

१६-१७ वर्ष पहले नरपतसिह दांगी के घर लड़की उत्पन्न हुई थी। जब वह गर्भ मे थी, उसकी माँ विचित्र स्वप्न देखा करती थी। लड़की के उत्पन्न होने पर पिता को ऐसा जान पड़ा, मानो प्रकाशपुञ्ज ने घर में जन्म लिया हो। उसकी माँ लड़की को जन्म देने के कुछ मास उपरांत मर गई।

नरपति दुर्गा का भक्त था और जागते हुये भी स्वप्न-से देखा करता था। गाव वाले उसे श्रद्धा और भय की दृष्टि से देखते थे।

वह कन्या रूप-राशि थी। उस पर देवत्व के आरोप होने में विलम्ब न हुआ। अविश्वास करने के लिये कोई स्थान न था। बालिका, दाँगी की लड़की में इतना रूप, इतना सौन्दर्य कभी न देखा गया था। गाँव के मन्दिर मे दुर्गा की जो मूर्ति थी, शिल्प की कला ने उसे वह रूप-रेखा नही दे पाई थी, जो इस बालिका मे सहज ही भासित होती है। ज्यों-ज्यों उसने वय प्राप्त किया, त्यो-त्यों अङ्ग सुडौल होते गये, सौन्दर्य की विभूति बढती, निखरती गई और गांव वाले नरपतिसिंह की उस कन्या को किसी निर्भ्रान्त सिद्धान्त की तरह स्वीकार करते गये। कभी विश्वास से फल हुआ और कभी नहीं भी। पहले बालिका की पूजार्चा बहुधा नरपतिसिंह के ही घर पर होती रही, पीछे बालिका द्वारा मन्दिर मे स्थापित मूर्ति की पूजा कराई जाने लगी। जैसे आरम्भ में लोग नव-निर्मित मन्दिर में

बहुधा पूजन के लिये जाया करते हैं और कुछ समय बाद अपने घर मे ही बैठे-बैठे मन्दिर स्थापित मूर्ति की वन्दना करने लगते हैं, उसी तरह नरपतिसिंह की कन्या के प्रति कई वर्ष गुजर जाने पर भी अविश्वास या अश्रद्धा तो किसी ने भी प्रकट नही की, परन्तु पूजा का रूप पलट गया। अटक-भीर पड़ने पर कभी-कभी कोई-कोई प्रत्यक्ष पूजा भी कर लेता था। परन्तु देवी के नाम पर शुरू-शुरू में जो बडे-बड़े मेले लगे थे, उनमें क्षीणता आ गई। लोगो के आश्चर्य मे ओज न रहा। उस कन्या को देवी का अवतार मानते हुये न केवल गाँव के लोग ठठके-ठठ जमा होकर उसके घर पर या मन्दिर मे जाते थे, बल्कि बाहर के दूर-दूर के लोग भी अब मानता मान-मानकर आते थे।

कुञ्जरसिंह के मन में देवी के दर्शन की इच्छा तो हुई, परंतु लज्जाशील होने के कारण अकेले जाने की हिम्मत नही पड़ी। कोई शायद पूछ बैठे—'क्यो आये ? देवी अवश्य है, युवती भी है।' संयोग से लोचनसिंह मिल गया। साथ के लिये सुपात्र-कुपात्र की अपेक्षा न करके लोचनसिंह ने कहा—'दाऊजू, देवी-दर्शन के लिये चलते हो ?'

उसने उत्तर दिया—'किन बातो मे पडे हो राजा ? दाँगी की लड़की दुर्गा नही होती। देहात के भूतो ने प्रपञ्च बना रक्खा होगा।'

कुञ्जरसिंह की इच्छा ने ज़रा हठ का रूप धारण किया। बोला—'अवतार के लिये कोई विशेष जाति नियुक्त नही है। देख न लो ?'

लोचनसिंह ने विरोध नही किया। आगे-आगे लोचनसिंह और पीछे-पीछे कुञ्जरसिंह नरपतिसिंह के मकान का पता लगाकर चले। वह घर पर मिल गया।

लोचनसिंह ने बिना किसी भूमिका के प्रस्ताव किया—'तुम्हारी लड़की देवी है ? दर्शन करेंगे।'

नरपति की बड़ी-बड़ी लाल आँखो में आश्चर्य छिटक गया। बोला—'कहाँ के हो ?'

'दलीपनगर के राजकुमार।' उत्तर देते हुये लोचनसिंह ने कुंजर की ओर इशारा किया।

'इस तरह दर्शन करने के लिये तो यहाँ देवता भी नही आते।' सदेह के स्वर मे नरपति ने कहा।

'तब किस तरह देख पायेंगे ?'

'मन्दिर में जाओ।'

कुञ्जरसिंह की हिम्मत टूट गई। लौट पडने की इच्छा हुई, परन्तु पैर वही अड-से गये। धीरे से लोचनसिंह ने कहा—'तो चलो दाऊजू।' और नरपति के खुले हुये घर की ओर मुँह फेर लिया। पौर के धुधले प्रकाश मे उसे एक मुख दिखलाई पडा, जैसे अन्धेरी रात मे बिजली चमक गई हो। आँखो मे चकाचौध-सी लग गई।

लोचनसिंह ने कुञ्जर के प्रस्ताव को एक कन्धा ज़रा-सा हिलाकर, अस्वीकृत कर दिया। नरपति से बोला—'मन्दिर में पाषाण-मूर्ति के दर्शन होगे। हम लोग यहाँ तुम्हारी लडकी को, जो देवी का अवतार कही जाती है, देखने आये हैं।'

प्रस्ताव की इस स्पष्ट भाषा के कारण कुञ्जरसिंह को पसीना-सा आ गया।

नरपतिसिंह ने ज़रा सोचकर कहा—'हमारी बेटी देवी है, इसमें जरा भी सन्देह जो करता है, उसका सर्वनाश तीन दिन के भीतर ही हो जाता है। तुम लोगो को यदि दर्शन करना हो, तो मन्दिर मे चलो। यहाँ दर्शन न होगे। कोई मेला या तमाशा नही है। नारियल, मिठाई, पुष्प, गंध इत्यादि लेकर चलो, मैं वहाँ लिवाकर आता हू।'

नरपति की आँखों में विश्वास के बल को और हवा मे लम्बे-लम्बे केशो की एक लट को उड़ते हुये देखकर लोचनसिंह की अदम्यता नही डिगी।

पूछा—'इत्यादि और क्या ?'

दृढ़ता-पूर्ण उत्तर मिला—'सोना-चाँदी और क्या ?'

लोचनसिंह के उत्तर देने के पूर्व ही कुञ्जरसिंह ने नम्रता के साथ कहा—'बहुत अच्छा ।'

नरपति तुरन्त घर के भीतर अदृश्य हो गया और किवाड बन्द कर लिये ।

लोचनसिंह ने कुञ्जर से कहा—'मन तो ऐसा होता है कि तलवार के एक झटके से लम्बे केश वाले इस सिर को धूल चटा दूँ, परन्तु हाथ कुण्ठित हैं ।'

'चुप चुप ।' कुञ्जर आदेश के उच्चारण मे बोला—'बाजार से सामग्री मँगवा लो ।'

लोचन बाजार की ओर, जिसमें केवल दो दुकाने थी, चला गया और कुञ्जर नरपति के चबूतरे के एक कोने को झाडकर छिपने की-सी चेष्टा करता हुआ वही बैठ गया ।

इतने ही मे दो आदमी और आये । बेष-भूषा से मुसलमान सैनिक जान पड़ते थे । उनमे से एक ने कुञ्जर से पूछा—'क्यो जी, नरपति दाँगी का यही मकान है ?'

'हाँ, क्यो ?'

'देवी के दर्शनो को आये हैं । कहा है ?'

कुञ्जर को यह अच्छा न मालूम हुआ । बोला—'होगा कही, क्या मालूम ।' तीव्र उत्तर न दे सकने के कारण उसे अपने ऊपर ग्लानि हुई । वह कहने और कुछ करने के लिये आतुर हुआ ।

वे दोनों उसी चबूतरे पर बैठ गये । कुछ क्षण उपरात लोचनसिंह एक पोटली में पूजन की सामग्री बाँधे हुये आ गया । कहने लगा—'बनिया हमको धोखा देना चाहता था । दो धौल दिये, तब अभागे ने ठीक भाव पर सामग्री दी ।'

लोचनसिंह ने उन दो नवागतुको की ओर कोई ध्यान नही दिया ।

घर की कुन्डी खटखटाकर पुकारा—'पूजा की सामग्री ले आये हैं । लिवाकर आ जाओ ।'

भीतर से कर्कश स्वर मे उत्तर मिला—'मन्दिर चलो ।'

लोचर्सिह कुञ्जर को लेकर मन्दिर की ओर चला, जिसकी उड़ती हुई पताका नरपति के मकान से ही दिखलाई पड़ रही थी ।

लोचन और कुञ्जर के मन्दिर पहुंचने के आधी ही घडी पीछे नरपति अपनी लडकी को लेकर आ गया । वे दोनों मुसलमान सैनिक भी पीछे-पीछे आकर मन्दिर के वाहर वैठ गये । कुञ्जरसिह ने देखा ! मन खीझ गया । परन्तु नरपति के ऊपर उन दोनो सैनिको की उपस्थिति का कोई प्रभाव नही पड़ा ।

कुञ्जरसिंह ने रूप, लावण्य और पवित्रता के उस अवतार को देखा । एक बार देखकर फिर आख नही उठाई गई । दुर्गा की पाषाण-मूर्ति की ओर स्थिर दृष्टि से देखने लगा ।

'पूजा करो ।' नरपति ने आदेश किया ।

'किसकी पूजा करूँ ?' कुञ्जर ने सोचा और एक वार रूप-राशि की ओर देखकर फिर पाषाण-मूर्ति पर अपनी दृष्टि लगा दी ।

लोचनसिंह ने बिना संकोच के लड़की को ऊपर से नीचे तक ध्यान से देखा । उसने आँखे नीची कर ली । लोचनसिंह बोला—'किसकी पूजा पहले होगी ?'

नरपति ने मूर्ति की ओर सकेत किया ।

कुञ्जर ने भक्ति के साथ मूर्ति का पूजन किया । सोचा—'अब सदेह, सजीव देवी की पूजा होगी ।'

'इनका क्या नाम है ?' लोचन ने पूछा ।

'दुर्गा, दुर्गा का अवतार ।' उत्तर मिला ।

कुञ्जर प्रश्न और उत्तर से सिकुड़-सा गया, परन्तु नाम जानने की की उठी हुई उत्सुकता ठडी नही पड़ी । लड़की के मुख पर इस बेधड़क प्रश्न से हलकी ललिमा दौड़ आई । लोचन ने फिर शिष्टता के साथ पूछा—'यह नाम नही, यह तो गुण है । घर मे इस बेटी को क्या कहते हो ?'

'कुमुद—पर तुम्हे इससे क्या ? पूजा हो गई। अब चढ़ावा चढ़ाकर यहाँ से जाओ। दूसरो को आने दो।' नरपति ने कहा। लोचन के दाँत से दाँत सट गये, परन्तु बोला कुछ नही।

कुञ्जर ने अपने गले से सोने की माला और उँगली से हीरे की अँगूठी उतार कर मूर्ति के चरणो मे चढा दी। नरपति ने प्रसन्न होकर माला हाथ मे ले ली और अँगूठी लडकी को पहना दी, जिसका नाम उसके मुंह से 'कुमुद' निकल पड़ा था। कुमुद ने पहले हाथ थोड़ा पीछे हटाया। परतु पिता की व्यग्रता ने उसकी उँगली को अँगूठी मे पिरो दिया।

नरपति ने कुन्जर से पूछा—'आप कौन हैं ?'

कुञ्जर के मुँह से नम्रता-पूर्वक निकला—'राजकुमार।'

लोचन ने गर्व के साथ कहा—'यह हैं दलीपनगर के महाराजाधिराज के कुमार राजा कुञ्जरसिंह।'

कुमुद ने धीरे से गर्दन उठाकर कुञ्जरसिह की ओर पैनी निगाह से देखा। लालिमा मुख पर नही दौड़ी और न आँखे नीची पड़ी। फिर सरल, स्थिर दृष्टि से मन्दिर के एक कोने की ओर देखने लगी।

नरपतिसिंह ने कुमुद से कहा—'देवी, पूजक को प्रसाद दो।'

कुमुद मिठाई के दोने से एक लड्डू उठाकर कुन्जर को देने लगी।

नरपति ने रोककर कहा—'यह नही' और गेदे का एक फूल भस्म के दो-चार कणो से लपेटकर कुमुद के हाथ में दिया और कहा—'यह दो। राजकुमार के लिये प्रसाद उपयुक्त है।'

कुमुद ने अँगूठी वाले हाथ में गेदे का फूल लिया। हाथ, सोने, हीरे और गेदे के फूल के रङ्गो मे आधे क्षण के लिये स्पर्द्धा-सी हो उठी। श्रद्धा-पूर्वक कुञ्जर ने वह फूल अपनी अंजलि में ले लिया और कुमुद की बड़ी-बडी, सरल, सुन्दर आँखो में अपने सकोच-चचल नेत्र मिलाकर पुष्प को पगड़ी मे सयत्न खोस लिया। फिर कुमुद से आँख मिलाने का साहस नही हुआ।

परन्तु कुमुद की आंखों में संकोच या लज्जा का लक्षण नही था।

[३]

लोचनसिंह और कुञ्जरसिंह मन्दिर से बाहर निकल आये। कुमुद भीतर ही बैठी रही। नरपति दरवाजे के पास खडा होकर मुसलमान सैनिको से बोला—'पूजा करना हो, तो कर लो, नही तो हम घर जाते हैं। ज्यादा देर नही बैठेगे।'

'जाइये।' उनमे से एक बोला—'हम लोगो ने तो यही से दीदार कर लिया।'

'तब क्यो बैठे हो?' कुञ्जर ने स्पष्ट स्वर मे पूछा।

उसने लापरवाही के साथ उत्तर दिया—'चले जायँगे, बैठे हैं, किसी का कुछ लिये तो हैं नही।'

कुञ्जर की भृकुटि टेढी हो गई। 'जाओ, अभी जाओ।' आपे से बाहर होकर बोला—'यह देवी का मन्दिर है, दिल्लगी की जगह नही।'

नरपति ने ढले हुए कठ से कहा—'झगड़ा मत करिये, पूजन के लिये आये होगे।'

'पूजन के लिये नही आये हैं', दूसरे सिपाही ने कहा—'मन बहलाने आये हैं। अपना काम देखो, हम भी चले जायँगे। कडे होने की ज़रूरत नही है, क्योकि हमारी जबान और तेग दोनो ही कडे हैं।'

लोचनसिंह दाँत पीसकर बोला—'उस जबान और तेग दोनो के टुकडे कर डालने की ताकत हमारे हाथ मे है। सीधे-सीधे चले जाओ, वरना कौए यहाँ से हड्डियाँ उठाकर ले जायँगे।'

दोनो सिपाहियों ने अपनी-अपनी तलवारे खीच ली। लोचनसिंह की उनसे पहले ही निकल चुकी थी।

नरपति मन्दिर की ओर मुँह करके चिल्लाकर बोला—'माई, माई, निवारण करो।'

कुमुद दरवाजे के पास आ गई। कुञ्जर से बोली—'राजकुमार, इस पवित्र स्थान पर रक्त-पात न हो।'

इन शब्दो मे जो प्रबलता थी, जो आदेश था, उसने कुञ्जर को कर्तव्यारूढ कर दिया । तुरन्त दोनो ओर की खिची तलवारो के बीच पहुँचकर बोला—'यहाँ पर नही, किसी उपयुक्त स्थान पर ।'

'हम सैयद की फौज के आदमी हैं ।' एक बोला—'कोई स्थान और कोई भी समय हमारे लिए उपयुक्त है ।'

लोचनसिंह अप्रतिहत भाव से बोला—'सैयद का बडा डर दिखलाया। न मालूम कितने सैयदो को तो हम कच्चा ही गटक गये है ।'

'और हमने न-मालूम तुम-सरीखे कितने लुक्को को तो चुटकी से ही मसल दिया है ।' उनमे से एक ने चुनौती देते हुए कहा ।

लोचनसिंह उन दोनो पर लपका । कुजर अपने प्राणो की जरा भी परवा न करके बीच मे धँस गया ।

लोचन वार को रोककर खिसियाए हुए स्वर में बोला—'कुवर, कुवर, बचो । लोचनसिह की जलती हुई आग शत्रु-मित्र के अन्तर को नही पहचानती ।'

कुमुद दो कदम आगे बढकर एक हाथ आकाश की ओर जरा-सा उठाकर बोली—'मत लड़ो, अपने-अपने घर जाओ । पुण्य-पर्व है, जो लडेगा, दुःख पवेगा ।'

दोनो मुसलमान सैनिको ने अपनी तलवारे नीची कर ली । कुजर ने लोचनसिह का हाथ पकड लिया । वे दोनो सिपाही एकटक कुमुद की ओर देखने लगे, अतृप्त, अचल नेत्रो से, मानो अनत काल तक देखते रहेगे ।

कुमुद ने कुजर से कहा—'राजकुमार, इनको यहाँ से ले जाइये ।' फिर मुसलमान सैनिको से बोली—'आप लोग यहाँ से जायँ ।'

इतने में शोर-गुल सुनकर गाँव के कुछ आदमी आ गये ।

मन्दिर पर मुसलमानो की उपस्थिति देखकर उन लोगो ने सैनिको पर झगड़े का सन्देह ही नही, चुपचाप विश्वास भी कर लिया । कई कठो

से यकायक निकला—'कौन हो ? क्या करते हो ? मन्दिर की वेइज्जती करने आये हो ?'

भीड़ में से एक ने खूब चिल्लाकर कहा—'इस आदमी ने हमारे नारियल अगरबत्ती छीन लिये हैं और हमें मारा है।' और भीड़ इकट्ठी हुई।

कुमुद भीड की ओर मुडकर चिल्लाई, जैसे कोयल ने जोर की कूक दी हो—'जाओ अपने-अपने घर, व्यर्थ झगड़ा मत करो।'

'जाओ कम्बख्तो यहां से।' दोनो मुसलमान सिपाहियों ने भी कहा। कुञ्जरसिंह ने हाथ के इशारे से भीड़ हटाने का प्रयत्न किया।

परन्तु आगे वाले पीछे को न मुड पाये थे कि पीछे से और भीड़ आ गई। उसमे दलीपनगर के राजा के कुछ सेनिक भी थे। वास्तविक स्थिति को बिना ठीक-ठीक समझे ही पीछे वाले चिल्लाये—'मारो, मारो,' लोचन-सिंह को तलवार निकाले और कुन्जरसिंह को बीच में देखकर पीछे आए सिपाहियों ने भी तलवारे निकाल ली। इतने में लुटा हुआ दुकानदार फिर चिल्लाकर बोला—'लूट लिया भाइयो, मुझे तो लूट लिया। मेरे नारियल चुरा लिए।' लोचनसिंह ने उस ओर देखा, परन्तु आरोपी को पहचान न पाया।

शब्द बढता गया। कुमुद का बारीक स्वर उस भीड़ के हुल्लड को न चीर पाया, प्रत्युत पीछे वालो को पूरा विश्वास हो गया कि न केवल लोचनसिंह उनका सरदार, बल्कि उनका राजकुमार और धर्म भी उन दो मुसलमान सैनिकों के कारण सकट मे पड़ गये हैं। कुछ ही क्षण मे मुसलमान सैनिक भीड से घिर गये।

उनमें से एक ने चिल्लाकर कहा—'अरे बेवकूफो, हमको यहाँ से निकल जाने दो, नही तो तलवार से हम अपना रास्ता साफ करते हैं।'

इस समय दो-तीन मुसलमान सिपाही और उस स्थान पर आ गये।

'क्या है ? है क्या है ?' उन्होने आवेश के साथ पूछा।

पहले आये हुए मुसलमान सैनिकों में से एक ने कहा—'कुछ नहीं, यों ही हुल्लड़ है। खून-खराबी मत करना।'

उन दो-तीन नवागंतुक मुसलमान सिपाहियों के आने पर गाँव वाले ज़रा पीछे हटे और पीछे वाले दलीपनगर के सैनिक नंगी तलवारे लिये आगे आ गये। तुरन्त 'मारो-मारो' 'की पुकारें मच गईं और खिंची हुई तलवारों ने अपना काम शुरू कर दिया।

लोचनसिंह ने पीछे आये हुये मुसलमान सिपाहियो में से एक को समाप्त कर दिया। पूर्वागतुको ने भी वार आरम्भ कर दिये। भीड के कई आदमी कतर डाले और घायल कर दिये। कुञ्जरसिंह तलवार निकालकर कुमुद के पास जा खडा हुआ। वह कुञ्जर को वही छोडकर अपने पिता के साथ धीरे-धीरे घर चली गई।

दलीपनगर के और सैनिक आ गये। घमासान हो उठा। थोडे से मुसलमान सैनिक दृढता के साथ लड़ते-लडते पीछे हटने लगे। थोडी दूर से लडते-लडते मुसलमान सैनिक एक ओर भाग गये। उनका वहुत दूर तक पीछा नही किया गया।

मुसलमान सैनिक की लाश वही पडी रही और इधर के जो आदमी मारे और घायल किये गये थे, उन्हे वही छोड़कर भीड तितर-वितर हो गई। मन्दिर में केवल देवी की मूर्ति थी। कुञ्जरसिंह को वह थोडी ही देर पहिले का शब्दमय स्थान सुनसान मालूम होने लगा। वहाँ केवल किसी आलोक की कोई छाया-मात्र दिखाई पड़ती थी, किसी मधुर स्वर की गूँज-भर।

मृतकों और घायलों का उचित प्रवन्ध करके जो कुछ हुआ था, उन पर पछतावा करता हुआ कुञ्जरसिंह अपने डेरे की ओर लोचन को लेकर चला गया।

[४]

सध्या होने के पहले गाँव मे खबर फैल गई कि ४-५ कोस पर मुसलमानो की एक बडी सेना ठहरी हुई है और वह शीघ्र ही आक्रमण करेगी, गाव मे आग लगावेगी और देवी के अवतार का जबरदस्ती अपहरण करेगी।

इस प्रकार की मार-काट उन दिनो प्रायः हो जाया करती थी। इसलिये आश्चर्य तो किसी को नही हुआ, परन्तु भय सभी को। दलीप-नगर के राजा के साथ भी बहुत से सैनिक थे, इसलिये गाँव वालों को अपनी रक्षा का बहुत भरोसा था। जो लोग हाथ-पाँव चलाने लायक थे, वे हथियारबन्द होकर इधर-उधर टुकडियो मे जमा हो गये। परन्तु गाँव मे जनसंख्या अधिक न थी, इसलिये दलीपनगर की सेना की तैयारी की प्रतीक्षा चिन्ता के साथ करने लगे।

राजा ने अभी तक कोई मंतव्य प्रकट नही किया था। समाचार उन्हे मिल गया था।

राजा का रामदयाल नामक एक विश्वस्त निजो नौकर था। उसके साथ थोडी देर बातचीत होने के बाद राजा ने पूछा—'तूने उस लड़की को देखा है ?'

'हाँ महाराज।'

'बहुत खूबसूरत है ?'

'ऐसा रूप कभी देखा-सुना नही गया।'

'कुछ कर सकता है ?'

कोई कठिन बात नही।'

'राजमहल की दासियो में डाल ले।'

'जब आज्ञा होगी तभी।'

'आज रात को।'

'बहुत अच्छा, परन्तु—'

परन्तु क्या बे ?'

राजा की चढ़ी हुई आँखों से नौकर घबराया नही। बोला—'महाराज, कही से मुसलमानों की फौज आई है।'

'मार डाल सबों को, परन्तु उस लडकी को लिवा ला।' राजा ने कहा।

रामदयाल अनसुनी-सी करके बोला—'महाराज, लोचनसिंह दाऊजू ने उस फौज के एक जवान को मार डाला है और कई-एक को घायल कर दिया है। उन लोगो ने भी गाँव के कई आदमी मार डाले हैं और अपने भी कई सिपाहियो को घायल कर गये हैं।'

राजा ने उपेक्षा के साथ कहा—'इस लम्बी दास्तान को शीघ्र समाप्त कर दे। बोल, उसको किस समय लिवा लायेगा।'

उत्तर न देते हुये रामदयाल बोला—'मुसलमानी सेना पास ही दो-तीन कोस फासले पर ठहरी हुई है। तुरही-पर-तुरही बज रही है। गाँव पर हल्ला बोला जाने वाला है।'

'यह तुहरी हमारी फौज की थी। तू झूठ बोलता है।'

'रात को वे लोग गाँव मे आग लगा देंगे और उस लड़की को उठा ले जायँगे।'

राजा रामदयाल के इस अन्तिम कथन को सुन उठ बैठे। आँखें नाचने-सी लगी। कहा—'लोचनसिंह को इसी समय बुला ला।'

कुछ क्षण पश्चात लोचनसिंह आ गया। जुहार करके बैठा ही था कि राजा ने तमक कर पूछा—'तुमने आज एक आदमी मार डाला है ?'

उसने शाति-पूर्वक जवाब दिया—'हाँ महाराज, एक ही मार पाया, बाकी भाग गये। बनिये को भी नही मार पाया, वह मुझे चोर बताता था।'

'यह कहाँ की सेना है ?'

'कही की हो महाराज! मुझे तो उनमें से कुछ को मारना था, सो एक को देवी की भेंट कर दिया।'

'देवी! देवी! तुम लोगो ने एक छोकरी को मुफ्त देवी बना रखा है। मैं देखूँगा, कैसी देवी है।'

'महाराज देखें या न देखें, परंतु उसकी महिमा देवी से कम नही। उसके लिये आज रात को फिर तलवार चलाऊँगा।'

'कैसे ? क्यों ?'

'महाराज, ऐसे कि मुसलमान लोग उसको आज लेकर भाग जाने वाले हैं। लोचनसिंह उन्हे ऐसा करने से रोकेगा। बस।'

'उसे हमारे डेरे पर भिजवा दो लोचनसिंह, हम उसकी रक्षा करेंगे।'

लोचनसिंह ने उपेक्षा के साथ कहा—'राजमहल की रक्षा का भार दूसरो के सुपुर्द कर दिया गया है। कुँवर और हम उस देवी की रक्षा करेंगे।

राजा क्रोध से थर्रा गये। बोले—'रामदयाल, जनार्दन शर्मा को लिवा ला।'

रामदयाल के जाने पर लोचनसिह ने कहा—'महाराज, एक विनती है।'

भर्राये हुये गले से राजा ने पूछा—'क्या ?'

'विनती करने भर का बस मेरा है।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'फिर मर्जी महाराज की। वह लड़की अवश्य देवी या किसी का अवतार है। उसका बाप बज्र लोभी और प्रचंड मूर्ख है, परंतु बालिका शुद्ध, सरल और भोली-भाली है। हकीम जी से महाराज पूछ ले कि अब महाराज को ऐसी बातो की ओर ध्यान नही देना चाहिये। महाराज के रोग को देखकर ही कभी-कभी मुझे डर लग जाता है।'

राजा विष का-सा घूँट पीकर चुप रहे। इतने में जनार्दन शर्मा आ गया। राजा ने जरा नरम स्वर में कहा—'शर्मा जी, मेरी दो आज्ञाये हैं।'

'महाराज !' जनार्दन ने कहा।

'एक तो यह कि जो मुसलमान-सेना यहाँ आई है, उसे किसी प्रकार यहाँ से हटा दो।'

'महाराज !' जनार्दन बोला और दूसरी आज्ञा का प्रतीक्षा करने लगा।

'दूसरी यह कि लोचनसिंह को इसी समय मरवा कर झील में फिकवा दो।' राजा ने क्षोभातुर कंठ से कहा।

जनार्दन दोनो आज्ञाओं पर सन्नाटे मे आकर एक बार लोचनसिंह और दूसरी बार राजा का मुँह निहार कर माथा खुजलाने लगा।

लोचनसिंह ने अपनी तलवार राजा के हाथ मे देते हुये कहा—'मुझे मारने की यहाँ किसी की सामर्थ्य नही। जब तक यह मेरी कमर में रहेगी, तब तक आपकी इस आज्ञा के पालन किये जाने मे सहस्रो बाधायें खड़ी होंगी। आप ही इससे मेरी गर्दन उतार दीजिये।'

राजा तलवार को नीचे पटक कर थके हुये स्वर में बोले—'तुम बहुत बातूनी हो गये हो, लोचन।'

'जैसा था, वैसा ही हूँ और वैसा ही रहूगा भी। मरवा डालिये महाराज, परन्तु अपने शरीर को अब और मत बिगाड़िये।' लोचनसिंह ने हाथ बाँध कर कहा।

राजा बोले—'उठा लो तलवार लोचनसिंह, तुमको मारकर हाथ गंदा नही करूँगा।'

तलवार कमर मे बाँधकर लोचनसिंह ने पूछा—'महाराज ने मुझे किस लिये बुलाया था?'

'जाओ, जाओ।' राजा ने फिर गरम होकर कहा—'तुम्हारी हमको जरूरत नहीं है।'

'है महाराज।' लोचनसिंह ने सोचते-सोचते कहा—'उस देवी के घर का पहरा न लगाकर मैं आज रात राजमहल का ही पहरा दूँगा।'

राजा ने जनार्दन से पूछा—'यह सेना कहां की है?'

'कालपी की अन्नदाता।' जनार्दन ने उत्तर दिया।

'भगा दो, मार दो, आग लगा दो, कोई हो, कही की हो।' राजा ने हाथ-पैर फेंककर आज्ञा दी।

'अन्नदाता—'

'बको मत जनार्दन, कालपी पर अब हमारा फिर राज्य होगा।'

'होगा अन्नदाता, परन्तु अभी कुछ विलम्ब है। दिल्ली गड़बड़ के तूफान में पडी हुई है, किन्तु तूफान अभी काफ़ी ज़ोर पर नही है। कालपी के फौजदार अलीमर्दान की सेना मालवे मे मराठों से हारकर लौटी है, परन्तु अब भी इतनी अधिक है कि मुठभेड़ करना ठीक न होगा। दूसरे राज्यो का रुख़ हमसे कटा हुआ-सा है।'

'वही सब षड्यन्त्र, वही पुराना प्रपञ्च।' राजा ने तकिये के सहारे लेटकर धीरे-धीरे कहा—'तुम्हारे छली-कपटी स्वभाव से तो हमारे लोचनसिंह की बेलाग बात अच्छी।'

लोचनसिंह तुरन्त बोला—'नही महाराज, शर्माजी बुद्धिमान आदमी हैं, मैं तो कोरा सैनिक हूँ।'

राजा फिर बैठ गये। बोले—'अच्छा, तुम सब जाओ। जिसको जो देख पड़े, सो करे। मैं सवेरे कालपी की सेना को अकेले मार भगाऊँगा। मैं निज़ाम-इज़ाम को कुछ नही समझता। कालपी बुन्देलो की है।

जनार्दन और लोचनसिंह चले गये। परन्तु उन लोगों ने सिवा रक्षात्मक यत्नों के किसी आक्रमण-मूलक उपाय का प्रयोग नही किया। जनार्दन ने राजा के डेरे का अच्छा प्रबन्ध कर दिया। लोचनसिंह कई सरदारो के साथ पहरे पर स्वयं डट गया।

राजा ने रामदयाल को पास बुलाकर धीरे से कहा—'आज ही, थोड़ी देर मे, अभी।'

'जो आज्ञा।' कहकर रामदयाल चला गया।

[५]

रात हो गई। खूब अन्धकार छा गया। जगह-जगह लोग आक्रमण रोकने की योजना मे लग गये। गांव मे खूब हल्ला-गुल्ला होने लगा, मानो असंख्य सैनिक किसी स्थान पर आक्रमण कर रहे हो। कुञ्जरसिंह नरपति के मकान के बाहर वेश बदले, शस्त्र-सज्जित टहल रहा था। पहरेवालों की टोलियाँ इधर-उधर से आकर, शोर करती हुईं, इस मकान के सामने कुछ क्षण के लिये खड़ी होकर 'अम्बा की जय, दुर्गा मैया की जय' कहती हुई गुज़र जाती थी, परन्तु कुञ्जर चुपचाप टहल रहा था। केवल कभी-कभी कही दूर की आहट लेने के लिये एक-आध बार ठिठक जाता था। नरपति के किवाड़ बन्द थे; भीतर से सुगन्धित द्रव्यो के होम की खुशबू आ रही थी।

थोड़ी देर मे एक मनुष्य ने आकर नरपतिसिह के किवाड खटखटाये।

कुञ्जरसिह ने कदाचित् उसे पहिचान लिया। भाला साधा और स्वर बदलकर पूछा—'कौन ?'

'महाराज का आदमी रामदयाल।' उस व्यक्ति ने दम्भ के साथ उत्तर दिया।

कुञ्जरसिंह ने कहा—'रामदयाल, इतनी रात तुम यहा कैसे ?'

बदले हुये स्वर के कारण रामदयाल ने न ताड पाया। समझा, दलीपनगर का कोई सैनिक है। बोला—'महाराज यहा की रक्षा के निमित्त बड़े चिंतित हो रहे हैं। सारी मुसलमानी सेना छिपे छिपे यही आ रही है। अबेर-सबेर आक्रमण होगा, इसलिये मैं देवी को राजमहल में सुरक्षित रखने के लिये लिवाने आया हूं।' रामदयाल ने फिर कुन्डी खटखटाई। कुञ्जरभाला टेककर खड़ा हो गया और आकाश की ओर देखने लगा।

जब कई बार कुण्डी खटखटाने पर भी भीतर से कोई उत्तर न मिला, तब रामदयाल ने कुञ्जर से पूछा—'आप कौन हैं ? बतला सकते हैं, नरपतिसिंह कहां हैं और देवी जी कहां हैं ?'

'मैं हूं कुञ्जरसिंह । नरपतिसिंह भीतर हैं ।'

रामदयाल सकपका गया,परंतु शीघ्र सँभलकर बोला,—राजा, यहा कैसे?'

'देवी की रक्षा के लिये ।'

'लो, यह बहुत अच्छा हुआ, परन्तु क्या राजा अकेले ही रक्षा करने के लिये डटे रहेगे ?'

'हां, उसके लिये मुझे तुम्हारी जरूरत नही पड़ेगी ।'

इतने समय मे रामदयाल ने अपनी स्वभाव-सिद्ध स्थिरता पुनः प्राप्त कर ली । बोला—'महाराज की आज्ञा है कि देवी राजमहल मे आज की रात सुरक्षित रहे ।'

वैसे ही भाले के बल अपने शरीर को थामे हुये कुञ्जर ने कहा— 'रामदयाल देवी की रक्षा उसके मन्दिर में ही सबसे अच्छी होती है । तुम जाओ । मेरे साथ तर्क मत करो ।'

दासी पुत्र होने पर भी कुञ्जर राजकुमार था और रामदयाल चाकर होने पर भी दलीप नगर के राजा का विश्वासपात्र । इसलिये कोई एक दूसरे से विचलित न हुआ ।

रामदयाल बोला—'मैंने देवी की रक्षा का बीड़ा उठाया है ।'

'मैंने तुमसे पहले ।'

'उन्हे राजमहल में जाना होगा । महाराज की आज्ञा है । ऐसे रक्षा न हो सकेगी राजा ।'

'कभी नही ।'

'तो महाराज से जाकर यही कह दूँ राजा ?'

'कह दो ।'

'मेरे प्राण बड़े सङ्कट में हैं । उधर आज्ञा का पालन नही होता, तो सिर से हाथ धोने पड़ेंगे, इधर आपको अप्रसन्न करता हूं, तो प्राणों पर आ बनेगी ।'

कुञ्जरसिंह भभक उठा । बोला—'जा यहां से नीच । मैं तेरी प्रकृति से खूब परिचित हूं । यदि यहां कोई और होता, तो शायद तेरी चल जाती ।

रामदयाल चला गया और थोड़ा नमक-मिर्च लगाकर सारी बात राजा से कह सुनाई ।

[६]

गांव में रात भर हो-हल्ला होता रहा, परन्तु किसी ने किसी पर आक्रमण नही किया।

सवेरे नहा-धोकर राजा के सामने लोग इकट्ठे हुये।

सैयद आगा हैदर राजा की हालत देखकर सहम गया। धीरे से जनार्दन के कान मे कहा—'महाराज को यहां लाने में बड़ी भूल हुई।'

'क्या करते ?' जनार्दन ने भी धीरे से कहा—'उनके हठ के सामने किसी की नही चलती। लोचनसिंह सरीखे वीर को कल सध्या-समय कत्ल करवाये डालते थे। उसने अपनी वीरता से अपने प्राण बचाये।' इतने मे कुञ्जरसिंह आया। रात भर के जागरण के कारण आँखे फूली हुई थी और चेहरे पर थकावट छाई हुई थी। प्रणाम करके राजा के पास जाकर यथानियम बैठ गया। राजा की आखे चढ गईं, परन्तु कुछ कहा नही। देर तक किसी दरबारी की हिम्मत कोई बात कहने की नही पड़ी।

लोचनसिंह बहुत समय तक कभी चुप नही रहा था। बोला—'किसी ने हल्ला-वल्ला नही किया। जानते थे कि अभी तो एक ही आदमी की लाश ढोनी पडी है, आगे न मालूम कितनी लाशे ढोनी पड़ेगी।'

कुञ्जरसिंह ने पूछा—'लाश को वे लोग कब उठा ले गये थे ?'

'हम लोगो के वहा से चले आने के थोड़ी ही देर पीछे।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया।

राजा ने रुखाई के साथ कहा—'हमको यह सब चवर-चवर पसन्द नही है।'

फिर सन्नाटा छा गया, इतना कि दूर से आने वाली रमतूलो और ढोल-ताशो की आवाज स्पष्ट सुनाई पड़ने लगी।

जनार्दन ने धीरे से राजवैद्य से कहा—'हकीमजी, कालपी की फौज छापा मारने वाली है।'

'यह मुसलमानों के लिये मूर्खता की बात होगी, यदि उन्होने कुछ आदमियो के अपराध के लिये गांव भर को सताया, या अपने राज्य की सेना पर धावा किया। रमतूलों और ढोल-ताशों की जो आवाज आ रही है, वे किसी की बारात के बाजे हैं।'

जनार्दन ने धीरे से मंतव्य प्रकट किया—'न-मालूम किस बुरी शायत मे यहाँ आये थे।'

'सारा कुसूर लोचनसिंह का है।'

आगा हैदर ने अपने आस-पास कनखियों से देखते हुए सतर्कता के साथ कहा—'पडितजी, यह ठाकुर एक दिन अपने राज्य को किसी गहरे खदक में खपा देगा।'

जब इस तरह से किसी बड़ी जगह के सन्नाटे में दो आदमी काना-फूसी करते हैं, तब टोलियाँ-सी बनकर अन्य उपस्थिति लोग भी काना-फूसी करने लगते हैं।

स्थान-स्थान पर कानाफूसी होती देख राजा उस सन्नाटे को अधिक समय तक न सह सके। बोले—'लोचनसिंह!'

'महाराज!' उसने उत्तर दिया।

'तुम्हारे घराने में चामुडराय की उपाधि चली आई है, जानते हो?'

'हाँ, महाराज, सारा संसार जानता है कि सिर-पर-सिर काटने के बाद यह उपाधि हम लोगों को मिली है।'

'वह तुमको प्यारी है?'

'हाँ महाराज, प्राणो से भी अधिक और कदाचित् इस संसार के संपूर्ण जीवों से अधिक।'

'यानी मुझमे भी बढ़कर, क्यों ठाकुर?'

'हाँ, महाराज।'

'निर्लंज्ज, मूर्ख।'

'सो नही महाराज।' चामुडराय की जो प्रतिष्ठा है, वह हृदय का खून बहाकर प्राप्त की गई है। किसी भी लोभ के वश मे वह दलित नही हो सकती। बस, यही तात्पर्य था और कुछ नही।'

'लोचनसिंह, तुमने रात को कहाँ पहरा लगाया था ?'

'राजमहल पर।'

'झूठ बोलते हो। उस लड़की के यहाँ, जो देवी कहलाती है, रखवाली करने पर तुम भी तो थे ?'

'मैं न था महाराज।'

'काकाजू, वहाँ पर मैं अकेला ही था।' बहुत विनीत, परन्तु दृढ भाव के साथ कुञ्जरसिंह बोला।

'हाँ तुम अब बहुत मनचले हो गये हो।' राजा ने उपस्थित लोगो की परवा न करते हुए कहा—'तुम्हारे ये सब लक्षण मुझे बहुत अखरने लगे हैं। तुम क्या यह समझते हो कि ऐसी बेहूदा हरकतो से मैं प्रसन्न बना रहूँगा ?'

कुञ्जरसिंह स्थिर दृष्टि से एक ओर देखता रहा। उत्तर मे कुछ नही बोला।

राजा लोचनसिंह की ओर एकटक दृष्टि में देखने लगे। लोचन ने नेत्र नीचे नही किये।

'आज तुम्हारी चामुण्डराई की परीक्षा है लोचनसिंह।' राजा ने कुछ क्षण पश्चात् कहा।

'आज्ञा हो महाराज।' लोचनसिंह बोला।

'यह मुसलमानी फौज हमको और हमारे धर्म को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए आई है।' राजा ने कहा—'उन लोगो की आँख मन्दिर की मूर्ति तोड़ने और मूर्ति की पुजारिन—उस दाँगी की लडकी—को उडा ले जाने पर है। मेरी आज्ञा है, उस सेना का मुकाविला करो और लड़की को सुरक्षित दलीपनगर पहुंचा दो।'

कुञ्जरसिंह काँप उठा। जनार्दन को रोमांच हो आया और लोचन-सिंह की नाहीं पर सबकी आशा जा अटकी।

लोचनसिंह ने हाथ बाँधकर उत्तर दिया—'उस सेना का सामना करने के लिये मैं अभी तैयारी कराता हूँ, परन्तु अपने पास इस युद्ध के लिये काफी सैनिक नहीं हैं। दलीपनगर से और सेना बुलाने का प्रबन्ध कर दीजिये। दूसरी आज्ञा जो दाँगी की लड़की को दलीपनगर पहुंचाने से सम्बन्ध रखती है, उसका पालन उस लड़की की इच्छा पर निर्भर है। यदि वह दलीपनगर न जाना चाहेगी, तो मैं उसे पकड़ कर न भेजूँगा।'

लोचनसिंह चला गया।

उसी समय ढोल-ताशों और रमतुलों का शब्द फिर सुनाई पड़ा। आगा हैदर ने कहा—'सवारी दलीपनगर वापस चली जाय, तो बहुत अच्छा। यहाँ शांति के साथ दवा-दारू होगी।'

'तुम सब गधे हो।' राजा ज़रा कष्ट के साथ बोले—'यह आवाज़ क्या है, इसका पता तुरन्त लगाओ, नहीं तो मार खाओगे। याद रखना, मैं लडूँगा और किसी को नहीं छोड़ूँगा।'

[७]

राजा के जासूसों ने बाजो का पता दिया। मालूम हुआ, एक दरिद्र ठाकुर की बारात आ रही है और दूरी पर, उसके पीछे-पीछे, छिपी-छिपी कालपी की सेना भी आक्रमण करने के लिये आ रही है।

हकीम ने मना किया, परतु राजा ने एक न सुनी। घोड़े पर सवार होकर लड़ाई की तैयारी कर दी।

हकीम ने जनार्दन से कहा—'पडितजी, इस राज्य की खैर नही है। अब क्या होगा ?'

जनार्दन ने माथा ठोककर उत्तर दिया—'बडी कठिनाइयो से राज्य को अब तक बचा पाया है। मत्री केवल गुणा-भाग जानता है। नीति-वीति कुछ नही समझता। कुमार दासी-पुत्र है। अधिकाँश सरदार उसे अङ्गीकार न करेगे। रानियों में लडाई ठनी रहती है। लोचनसिंह एक महज झझावात है। उत्तराधिकारी कोई नियुक्त नही है। महाराजा का पागलपन और भी अधिक वढ गया है। राज्य की नैया डूबने से बचती नही दिखाई देती।'

'और, इधर कालपी के सैयद से यह बैर बिसाहना गजब ही ढा देगा।' आगा हैदर ने कहा—'आज किसी तरह महाराज की जान बच जाय, तो बाद को सैयद को तो मैं मना लूँगा। जनार्दन, आपके पास रोग की दवा है, परंतु मौत की दवा किसके पास है ? क्या ठीक है कि आज यह या हममे से कोई बचेंगे या नही। इस अकारण युद्ध से रोका भी, न माने। दलीपनगर से और सेना बुलाने के लिये हरकारा तो भेज दिया है। कदाचित् जरूरत पड़े। बड़ी सासत है। यदि लोचनसिंह बिगड़ जाते, तो राजा के सिर पर लड़ाई का भूत इतना जोर न करता।'

यह कष्ट-कहानी शायद और लम्बी होती, परंतु इसी समय राजा की सवारी आ पहुँची। पीछे-पीछे कुञ्जरसिंह का घोड़ा था। जहाँ जनार्दन और हकीम खड़े थे, राजा ने घोड़े की बाग थामकर कहा—'आप

लोग लड़ नही सकते । पीछे रहे ।' फिर मुड़कर कुञ्जरसिंह से कहा—'तुम' मेरे साथ मत रहो । लोचनसिंह इधर आवे ।'

लोचनसिंह तुरन्त घोडा कुदाकर आ गया ।

'क्या आज्ञा है ?'

'कालपी की फौज पर धावा वोल दो ।'

'जो हुकुम ।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया । दलीपनगर की सेना जासूसो के बतलाये मार्ग पर चल पड़ी और लोचनसिंह की स्वल्प सावधानता पवन पर ।

कुञ्जरसिंह मन मसोसकर पीछे रह गया था । नरपति के दरवाजे के सामने से निकला । उधर दृष्टि गई । कुमुद को देखा । सचमुच अवतार । कुञ्जर ने नमस्कार किया । कुमुद जरा-सी—बहुत जरा-सी—मुस्कराई, शायद उसे मालूम भी न हुआ होगा कि मुस्करा रही हूं ।

कुञ्जरसिंह आगे बढ गया ।

जिस घर बारात आ रही थी, उसके दरवाजे पर तोरण-बंदनवार लगे हुए थे । वही होकर दलीपनगर की सेना निकली । राजा ने लोचनसिंह से पूछा—'क्या यही उस ठाकुर की बारात आ रही है ?'

'हाँ महाराज ।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया ।

राजा ने कहा—'बहुत दरिद्र मालूम होता है । द्वार पर कोई ठाटबाट नही ।'

'होगा महाराज, किस-किसका दुख रोवे, यहाँ और सब कही ऐसे अनेक भरे पडे हैं ।'

'अजी नही ।' राजा ने चलते-चलते कहा—'सब शरारत है, बदमाशी है; घर में सपत्ति गाडकर रखते हैं, ऊपर से गरीबी का दिखलावा करते हैं । इस लड़ाई से लौट कर साहूकारो से सारी क्षति की पूर्ति कराऊँगा । बहुत दिनो से उससे कुछ नही लिया है ।'

लोचनसिंह कुछ नही बोला । थोड़ी देर में दलीपनगर की छोटी-सी सेना पालर के बाहर जगल के मुहाने पर पहुंच गई । ठाकुर की छोटी-सी

बारात एक ओर से आ रही थी। वह कुछ दूरी पर ठिठक गई। दूल्हा पालकी में था। कहार पालकी को अपने कधो पर ही लिये रहे।

राजा ने लोचनसिह से कहा—'इस घमड को देखते हो ? पालकी नही उतारी गई। चाहू, तो अभी दूल्हा के खण्ड-खण्ड कर डालू ।'

लोचनसिह ने उपेक्षा के साथ कहा—'महाराज, यह बुन्देला की बारात है। दूल्हा किसी के लिये भी पालकी से नही उतरेगा। निर्धन हो, चाहे श्रीसंपन्न, परन्तु बुन्देले आपस में सब बराबर हैं।'

'सब बराबर हैं ?' राजा ने कालपी की चढती हुई सेना की चिंता न करके पूछा—'सब बराबर हैं ? तुम और हम ?'

'मैं प्रजा हूं।' लोचनसिह ने उसी स्वर मे कहा—'वह बुन्देला आपकी प्रजा नही है। उसकी पालकी नीची नही हो सकती।' फिर चिल्लाकर कहारो से बोला—'ले जाओ अपनी पालकी को।' पालकी और बारात कतराकर निकली।

थोडी देर में कालपी की सेना से मुठभेड हो गई।

राजा, लोचनसिह और कुञ्जरसिंह थोड़ी देर घोडो पर ही लडते रहे। आधी घड़ी पीछे राजा का घोड़ा आहत हो गया। राजा के घोड़े से उतरते ही उनके अन्य सरदार भी पैदल लड़ने लगे।

कालपी की सेना बडी दृढता और दिलेरी के साथ लड़ी, परन्तु वह अल्पसख्यक थी।

दलीपनगर की सेना भी बहुत न थी। एक को दूसरे के बल का पता न था। टुकड़ियो में बाँटकर दोनो ओर की सेनाएँ भिड़ गईं और कटने लगी।

कालपी की एक टुकड़ी ने राजा को उनके कुछ सरदारों-सहित घर दबाया। रोग ग्रस्त होने पर भी राजा पागलो की तरह लडने लगे। कई आक्रमणकारी हताहत हुए, परन्तु ठेल-पर-ठेल होने के कारण एक किनारे दूर तक राजा को हटना पडा। उनके साथी जरा दूर पड़ गये। राजा मुश्किल से अपना बचाव करने लगे। क्षण-क्षण पर यह भासित

होता था कि राजा अब आहत हुए और अब सहायता के लिये ऐसे समय में पुकारना राजा की बची-खुची शक्ति के बाहर था। इतने मे पेड़ो की एक झुरमुट के पीछे इधर-उधर कुछ आदमी ज़ोर से भागे। हमला करनेवालो का ध्यान जरा उचटा कि व्याह का झॉगा पहने और मुकुट बाँधे बारात का वह दूल्हा तलवार भाँजता हुआ वहाँ आ टूटा। ठेठ बुन्देलखण्डी मे बोला—'काकाजू, एक हाथ मोरोई देखने मे आवे।' उधर पालकी पटककर भागे हुए कहारो ने कुहराम मचाया।

वह दूल्हा इतने वेग से लड़ा कि जगह-जगह से उसका आँगा कट-फट गया, रुधिर की धार बदन से वह निकली और सिर का मौर टुकडे टुकड़े होकर धरती पर रूँद गया। उसी समय दलीपनगर की सेना सिमट आई। तलवार अनवरत रूप से चली। ऐसे चली कि कालपीवालो के छक्के छूट गये। जो सशक्त थे वे भाग खड़े हुए। मालवा से एक लड़ाई तो हारकर वे लोग आए ही थे, इस लड़ाई मे भी एक बार पैर उखड़ने पर फिर भागने में ही कुशल देखी।

सध्या होने के पूर्व ही युद्ध समाप्त हो गया। कालपी की घबराई हुई सेना कालपी की ओर कोसो दूर निकल गई।

राजा घायल हो गये थे और बहुत थक गये थे। दूल्हावाली पालकी में राजा को लिटाकर ले चले। दूल्हा साथ-साथ था। शरीर से रक्त बह रहा था, परन्तु उसकी दृढता में कमी नही दिखलाई पड़ती थी। जान पड़ता था, मानो लोहे का बना हो।

राजा ने पालकी में लेटे-लेटे क्षीण स्वर में उसका नाम पूछा।

उत्तर मिला—'अन्नदाता, मुझे देवीसिंह कहते हैं।'

'ठाकुर हो ?'

हाँ, महाराज।'

'बुन्देला ?'

'हाँ, महाराज।'

'जीते रहो। तुमको ऐसा पुरस्कार दूँगा, जैसा कभी किसी को न मिला होगा।'

इस समय जनार्दन शर्मा और आगा हैदर भी पालकी के पास गाँव की ओर से आ चुके थे और बडे आदर की दृष्टि से उस दरिद्र दूल्हा को देख रहे थे। कुञ्जरसिंह उदास-सा पीछे-पीछे चला आ रहा था। लोचन-सिंह कुछ गुनगुनाता हुआ चला जा रहा था। बदनवार वाले दरवाजे पर जब राजा की पालकी पहुची, तब देवीसिंह से राजा बोले,—'देवीसिंह, अब तुम अपना ब्याह करो। टीके का मुहूर्त आ गया है। ब्याह होने के बाद दलीपनगर आना—अवश्य आना, भूलना मत।'

पालकी दरवाजे पर ठहर गई। दूल्हा ने पालकी के कोर हाथ मे पकड़कर क्षीण स्वर मे कहा—'मेरा ब्याह तो रणक्षेत्र मे हो गया। अब महाराज के चरणो मे मृत्यु हो जाय, बस यही एक कामना है।'

जब तक कोई सँभालने को दौडता, तब तक देवीसिंह धड़ाम से पालकी का सहारा छोड़कर अपनी भावी ससुराल के सामने गिर पड़ा।

लोचनसिह ने आगे बढकर कहा—'वाह, क्या बाँकी मौत मर रहा है। सब इसी तरह मरे, तो कैसे आनन्द की बात हो।'

राजा ने तीव्र स्वर में करहाते हुये कहा—'काठ के कठोर कलेजे वाले मनुष्य, इस नन्हे-से दूल्हा की मौत पर तू खुश हो रहा है। सँभाल इसको।'

'यह न होगा।' लोचनसिंह ने अविचलित स्वर में कहा—'क्षत्रिय को बिना किसी सहारे और लाड-दुलार के मरने दीजिये। वह बचेगा नही।' फिर पालकी वालो से बोला—'महाराज को शिविर में ले चलो। हकीमजी तुरंत दवा-दारू का बन्दोबस्त करें। मैं इसकी क्षत्रियोचित अत्येष्टि-क्रिया का प्रबन्ध किये देता हू।'

राजा कुछ कहने को हुये; परन्तु दर्द ने फिर न बोलने दिया। इतने में कुञ्जरसिंह वहाँ आ गया। तुरंत घोडे से उतर पड़ा। अचेत देवीसिंह को या उसकी लाश को घोड़े पर रखकर आगे बढ़ गया। लोचनसिंह ने पीछे

से आकर कहा—'आज देवी ने लाज रख ली। चलो राजा, पुजारी को कुछ देते चलें।'

कुञ्जरसिंह ने कोई उत्तर न दिया। जब वे दोनो नरपतिसिंह के मकान के सामने पहुंचे, राजा की पालकी आगे निकल गई थी। लोचनसिंह ने घोड़े पर चढे-चढे नरपति को पुकारा। दरवाजे पर साँकल चढ़ी किसी ने उत्तर न दिया।

कुञ्जरसिंह ने आगे बढ़ते हुये कहा—'आओ, मैं नही ठहरूँगा।'

लोचनसिंह ने फिर पुकार लगाई। उस मकान से तो कोई उत्तर नही मिला, परन्तु एक पड़ोसी ने किवाड़ों के पीछे से कहा—'वह तो देवी के साथ दोपहर के बाद न जाने कहाँ अन्तर्धान हो गये।'

लोचनसिंह चल दिया। कुञ्जरसिंह कुछ और प्रश्न करना चाहता था, परन्तु वह पडोसी पोर से खिसककर अपने घर के किसी भीतरी भाग में जा छिपा। लोचनसिंह बोला—'देवी कूच कर गई। चलिये।'

सब लोग डेरे पर पहुँचे। राजा की मरहम पट्टी हो गई। घाव काफी लगे थे, परन्तु कोई भय की बात न जान पड़ती थी। लोग रात-भर उपचार में लगे रहे। देवीसिंह को भी बुलाया गया। कुञ्जरसिंह उसकी दवा-दारू करता रहा। अवस्था चिन्ताजनक थी।

दलीपनगर के सरदार राजा को दूसरे ही दिन दलीपनगर ले गये। राजा ने देवीसिंह को भी साथ ले लिया।

[८]

दलीपनगर पहुचने पर राजा के घाव अच्छे हो गये, परन्तु पागलपन बहुत बढ़ गया और उनकी दूसरी बीमारी ने भी भयानक रूप धारण किया। देवीसिंह को अच्छे होने में कुछ समय लगा। राजा का स्नेह उस पर इतना वढ गया कि निजी महल मे उसे स्थान दे दिया।

राजा का स्नेह-भाजन होने के कारण बड़ी रानी भी देवीसिंह पर कृपा करने लगी और छोटी रानी अकारण ही घृणा।

रामदयाल वचपन से महलों में आता-जाता था। उन दिनों तो वह राजा की विशेष टहल ही करता था। रानियाँ उससे पर्दा नही करती थी। छोटी रानी का वह विशेष रूप से कृपा-पात्र था, परन्तु इतना चतुर था कि बड़ी रानी को भी नाखुश नही होने देता था।

एक दिन किसी काम से छोटी रानी के महल में गया। छोटी रानी ने राजा की तबियत का हाल पूछा। वह स्वयं राजा के पास महीने में एकाध बार जाती थी।

अवस्था का समाचार सुनकर रानी ने कहा—'अभी तक महाराज ने किसी को उत्तराधिकारी नही बनाया है। यदि भगवान् रूठ गये, तो बड़ी विपद आयेगी।'

बात टालने के लिये रामदयाल बोला—'महाराज, काकाजू की तबियत जल्दी अच्छी हो जायगी। हकीमजी ने विश्वास दिलाया है।'

'भगवान् ऐसा ही करे। परन्तु हकीम की बात का कुछ ठीक नही।' फिर कुछ सोचकर रानी ने कहा—'कुञ्जरसिंह राजा तो दासी के पुत्र हैं, उन्हे गद्दी नही मिल सकती। वैसी भी राजसिहासन उनकी रोनी सूरत के विरूद्ध है।'

'इसमे क्या सदेह है महाराज !' रामदयाल ने हाँ में हाँ मिलाई।

'महाराज ने अपने महलों में उस नये मनुष्य को क्यो रक्खा है।?'

'एक बुन्देला ठाकुर है महाराज, पालर की लड़ाई में वह बहुत आड़े आये थे, इसलिये दवा-दारू के लिये अपने खास महलों में काकाजू ने रख लिया है।'

'जनार्दन शर्मा की भी उस पर कृपा है या नही ? मन्त्री तो बेचारा अपने बाप का लड़का होने के कारण मंत्रित्व कर रहा है। उस गधे में गाँठ की ज़रा भी बुद्धि नही। लोचनसिंह जंगल के बाँस की तरह सीधा है। बस, राज्य तो धूर्त जनार्दन कर रहा है। बड़ी रानी के महलों में भी जुहार करने जाता है या नही ?'

'महाराज, वह तो सभी जगह आते-जाते हैं।'

'अच्छा, एक बात बतला। जनार्दन महाराज के कान मे कभी कुछ कहता है या नही ?'

'मेरे सामने अभी तक तो कुछ कहा नही। महाराज तो उन्हें गाली देते रहते हैं।'

'लोचनसिंह तो आते-जाते रहते हैं !'

'नित्य महाराज, परंतु उनसे काकाजू की बातचीत बहुत कम होती है।'

'तब बातचीत किससे ज्यादा होती है ?'

रामदयाल अधिक खोलकर कुछ नही कहना चाहता था, परन्तु अब निर्वाह न होते देखकर बोला—'शर्माजी के साथ ही बहुत बत-बढ़ाव होता रहता है।'

'किस विषय पर ?'

'विषय तो महाराज, कोई खास नही है। परन्तु कभी-कभी देवीसिंह ठाकुर की प्रशंसा करते हुये सुना है।'

'मैं सब समझती हूं।' रानी ने सोचकर कहा। फिर एक क्षण बाद बोली—'रामदयाल, यदि तू धर्म पर टिका रहा, तो प्रतिफल पावेगा।'

रामदयाल ने नम्रता-पूर्वक कहा—'महाराज, मै तो चरणों का दास हूं।'

'तू मुझे महाराज के महलों के समाचार नित्य दिया कर। अब जा और ज़रा लोचनसिंह को भेज दे।'

थोड़े समय उपरांत लोचनसिंह आया। दासी द्वारा पर्दे में रानी से बातचीत हुई।

रानी ने कहलवाया—'लोचनसिंह, भगवान न करे कि महाराज का अनिष्ट हो; परन्तु यदि अनहोनी हो गई, तो राज्य का भार किसके सिर पड़ेगा ?'

'जिसे महाराज कह जायँ।'

'तुम्हारी क्या सम्मति है ?'

'जो मेरे स्वामी की होगी।'

'या जनार्दन की।'

'महाराज की आज्ञा से जनार्दन का सिर तो मैं एक क्षण में काटकर तालाब में फेंक सकता हूँ।'

'यदि महाराज कोई आज्ञा न छोड़ गये, तो ?'

'वैसी घडी ईश्वर न करे आवे।'

'और यदि आई ?'

'यदि आई, तो उस समय जो आज्ञा होगी या जैसा उचित समझूंगा, करूंगा।'

रानी कुछ सोचती रहीं। अन्त में उसने यह कहलवाकर लोचनसिंह को बिदा किया कि 'भूलना मत कि मैं रानी हूं।'

'इस बात को बार-बार याद करने की मुझे आवश्यकता न पडेगी। यह कहकर लोचनसिंह चला। रानी ने फिर रुकवा दिया। दासी द्वारा कहलवाया—'सिंहासन पर मेरा हक है, भूल तो न जाओगे ?'

उसने उत्तर दिया—'जिसका हक होगा, उसी की सहायता के लिये मेरा शरीर है।'

'और किसी का नही है।'

'मैं इस समय इस विषय मे कुछ नही कह सकता।'

'स्वामिधर्म का पालन करना पड़ेगा ।'

'यह उपदेश व्यर्थ है ।'

'तुम्हारे आँखें और कान हैं । किस पक्ष को ग्रहण करोगे ?'

'जिस पक्ष के लिये मेरे राजा आज्ञा दे जायँगे और यदि वह विना कोई आज्ञा दिये सिधार गये, तो उस समय जो मेरी मौज में आवेगा ।' लोचनसिंह चला गया । रानी बहुत कुढी ।

[९]

कुछ दिनो बाद बड़नगर से यह उलाहना आया कि दलीपनगर की सेना ने अपने राज्य की सीमा के बाहर उपद्रव किया और कालपी के मित्र राज्य को बड़नगर का शत्रु बनाने मे कसर नही लगाई। उलहने के साथ इन आरोपो का उत्तर-मात्र पूछा गया था, उलहनो की पीठ पर कोई धमकी नही थी, इसलिये जनार्दन ने राजा को बिगडी हुई अवस्था मे यह समाचार नही सुनाया। नाना प्रकार के बहाने बनाकर ओरछे से क्षमा माग ली।

इसके बाद ही कालपी से एक दूत आया। दिल्ली मे फ़र्रुखसियर नाम-मात्र का राज्य या कुराज्य कर रहा था। चारो ओर मार-काट मची हुई थी। अन्तिम मुगल-सम्राट् की थपेड़ो ने जो भयकर लहर भारत-वर्ष में उत्पन्न कर दी थी, उसने क्राति उपस्थित कर दी। दिल्ली के शासन का संचालन सैयद भाई कर रहे थे। किसी राजा या रजवाडे को चैन न था। सब शासक परस्पर गुट्टो मे एक दूसरे से उलझे हुये थे। सब अपनी-अपनी स्वतंत्रता की चिंता मे डूबे हुए थे। उत्तर-भारत में सैयद भाइयो की तूती बोल रही थी। उनकी एक छाया सैयद अलीमर्दान के रूप मे कालपी-नामक नगर में भी थी, जो उस समय बुन्देलखण्ड की कुञ्जी और मालवे का द्वार समझा जाता था। सैयद भाइयो को उत्तर-भारत के ही झगड़ो से अवकाश न था, दक्षिण-भारत अलग दम घोटे डालता था। अलीमर्दान का भविष्य बहुत कुछ सैयद भाइयो के पल्ले से अटका हुआ था। दलीपनगर उस समय के राजनीतिक नियमानुसार दिल्ली का आश्रित राज्य था। दिल्ली को उस समय दलीपनगर और कालपी दोनो की जरूरत थी। कम-से-कम दिल्ली को उन दोनो से आशा भी थी। कालपी वस्तुत दिल्ली की सहायक थी, दलीपनगर केवल शाही कागजो मे। दोनो की मुठभेड़ में दिल्ली को कालपी का पक्ष लेना अनिवार्य सा था। परन्तु यह तभी हो सकता था, जब दिल्ली को अपनी अन्य

उलझनों से साँस लेने का अवकाश मिलता। अलीमर्दान इस बात को जानता था और उसे यह भी मालूम था कि न जाने किस समय कहाँ के लिये दिल्ली से बुलावा आ जाय, इसलिये उसने पालर के पास अपनी टुकड़ी के ध्वस्त किये जाने पर तुरत कोई बड़ी सेना वदला लेने के लिये नही भेजी, केवल चिट्ठी भेज दी। एक पत्र दिल्ली भी भेजा कि दलीपनगर बाग़ी हो गया है। परंतु चिट्ठी मे पद्मिनी का कोई जिक्र न किया। अपनी उलझनों की मात्रा मे एक की और बढ़ती होती देखकर बादशाह ने उसे विशेष अवकाश के अवसर पर विचार करने के लिये रख लिया।

जो चिट्ठी दलीपनगर आई थी, उसमें ये चार माँगे की गई थी—

(१) पालर की रूपवती दाँगी-कन्या एक महीने के भीतर दिल्ली के शाहंशाह की सेवा में कालपी द्वारा भेज दी जाय।

(२) लोचनसिंह-नामक सरदार को ज़िन्दा या मरा हुआ भेज दिया जाय।

(३) एक लाख रुपया लड़ाई के नुकसान का हर्जाना पहुचा दिया जाय।

(४) दलीपनगर का कोई ज़िम्मेदार कर्मचारी या सरदार राज्य की ओर से कालपी आकर क्षमा-याचना करे।

यदि एक भी माँग पूरी न की गई, तो दलीपनगर की बस्ती और सारे राज्य को शाही सेना द्वारा ख़ाक में मिला देने का प्रस्ताव भी उसी चिट्ठी में किया गया था।

यह चिट्ठी मंत्री को दी गई। मत्री ने जनार्दन के पास भेज दी। चिट्ठी पाकर जनार्दन गूढ चिता में पड़ गया। हर्जाना देकर और माफ़ी माँगकर पिंड छुड़ा लेना तो व्यवहारिक जान पड़ता था, परंतु बाकी शर्तें बहुत टेढ़ी थीं। पद्मिनी बादशाह के लिये नही माँगी गयी थी, बादशाह की ओट लेकर अलीमर्दान ने उसे अपने लिये चाहा था, यह बात जनार्दन की समझ मे सहज ही मे आ गई। लोचनसिंह को जीवित या मृत किसी भी अवस्था मे कालपी भेजना दलीदनगर मे किसी के भी बल के बाहर

की बात थी । किंतु सबसे अधिक टेढा प्रश्न उस समय इन बातों को राजा के सम्मुख उपस्थित करने का था ।

बिना पेश किये बनता नही था और पेश करने की हिम्मत पड़ती न थी। जनार्दन ने आगा हैदर को सब हाल सुनाकर सलाह की। 'हकीम जी, या तो अब राजा को जल्दी स्वस्थ करो, नही तो मुझे छुट्टी दो। कही गङ्गा किनारे अकेले बैठकर राम-भजन करूँगा।' जनार्दन ने कहा।

हकीम ने कहा—'यदि आपका हौसला पस्त हो गया, तो इस राज्य की पूरी बरबादी ही समझिये।'

जनार्दन ज़रा मचला। बोला—'नही हकीम जी, अब सहा नही जाता। रोज-रोज नई-नई मुश्किले नजर आती हैं। राजा दिन पर दिन रोग मे डूबते चले जाते हैं और हर घड़ी जो गालियाँ खाने को मिलती हैं, उनका कोई हिसाब नही। अब आप इस आफत को सँभालिये, मेरे बूते की नही है।'

'राजा अब चगे नही होते।' आगा हैदर ने उसास लेकर कहा।

'पहले ही कह दिया होता।'

'तो क्या होता ? कुहराम मचाने के सिवा और क्या कर लेते ?'

'नाहक इतना दम-दिलासा दिलाये रहे। अब क्या करे ? कोई राज्य साथ देने को तैयार न होगा। सिवा मराठो का आश्रय लेने के और कोई उपाय नही दिखाई पड़ता। सो उसके बदले आधे राज्य से यो ही हाथ धोने पड़ेगे।'

हकीम के मन मे ज़रा बल पड़ गया। बोला—'जितना करते बना मैंने इलाज किया। मैं कोई फ़रिश्ता तो हूं नही कि रोग को छू-मंतर कर दूँ।'

जनार्दन ने खिसियाकर कहा—इस कालपी की चिट्ठी को आप ही राजा के सामने पेश करे।'

'मन्त्री होगे आप, चिट्ठियाँ पढ़कर सुनाऊँ मै !' हकीम ने त्योरी बदलकर कहा—'मुझे सिवा वैद्यक के कुछ नही करना है। जिसे चारो तरफ अपने हाथ फेकने हो, वही यह काम खूबी के साथ कर सकता है। यदि राजा या आप लोग मुकर जायेगे, तो अपने घर बैठूँगा। खुदा ने रोटी-भाजी के लायक़ बहुत दिया है।'

'जब दलीपनगर का ही सत्यानाश हो जायगा, तब क्या खाओगे हकीम जी ?'

'जो जनार्दन महाराज खायेगे, वही बन्दा भी खायगा। आप ही ने इतनी सम्पत्ति जोड़ रक्खी है कि सबसे ज्यादा चिंता आपको है।'

जनार्दन का क्षोभ कम हो गया। भाव बदलकर बोला—'हकीम जी, मै इतना घबरा गया हूँ कि कोई उपाय नही सूझता। अपनो से न कहूँ, तो किसके सामने दुःख रोऊँ ? आप ही कहिये, आप कहते थे कि कालपी के सैयद को तो मै किसी न किसी तरह मना लूँगा।'

'पण्डितजी।' हकीम ने उत्तर दिया—'वह मेरा रिश्तेदार तो है नही, अपनी ज़बान और ईमान का भरोसा था। मैंने स्वप्न मे भी न सोचा था कि सैयद होकर ऐसा ज़ालिम निकलेगा।' फिर एक क्षण सोचकर बोला—'सैयद की शिकायत बिलकुल अन्याय-मूलक नही है।'

जनार्दन ने सोचकर कहा—'अब इस चिट्ठी को मै ही पेश करता हूँ। परन्तु आप कृपा कर के मौजूद रहियेगा।'

आगा हैदर ने स्वीकार किया। एक दूसरे से अलग होने के समय दोनो अशान्त थे। जनार्दन इस कारण कि निश्चय और अभ्यास के विरुद्ध वह अपने भावों की उत्तेजना को सयत न रख सका और वैद्य इस कारण कि जनार्दन सदृश मित्र भी मुझे अयोग्य वैद्य समझते हैं।

जनार्दन आगा हैदर की उपस्थिति में राजा के पास पहुँच गया। परन्तु उसने अपने पैमाने के हिसाब से एक बुद्धिमानी का काम किया। दूत के जरिये कालपी जवाब भेज दिया कि हरजे की रकम एक लाख बहुत है, परन्तु दी जायगी और माँफ़ी माँगने के लिये प्रधान राज्य कर्म-

चारी जनार्दन शर्मा स्वयं शीघ्र दरबार मे उपस्थित होगे। दाँगी-कन्या दलीपनगर राज्य की हद के बाहर कही लापता है और लोचनसिंह बहुत बीमार है, एक-आध दिन के ही मेहमान हैं, इसलिये उनके लिये चिंता न की जाय। जनार्दन राजा के गाली-गलौज के लिये दूत को टिकने नही देना चाहता था। इसलिये यह सम्वाद देकर लौटा दिया। उसने सोचा कुछ समय मिल जायगा, इस बीच मे बाहर की घटनाओ के परखने का अवसर हस्तगत हो जायगा और अपनी राजनीति को तदनुकूल ढालने और गढ़ने में आसानी रहेगी।

[१०]

जनार्दन का स्वभाव था कि जब तक बला टालते बने, टाली जाय, उसका मुकाबिला केवल उस समय किया जाय, जब टालने का अन्य कोई उपाय नजर न आये।

राजा सुने या न सुने, समझे या न समझें, परन्तु परम्परागत रीति के अनुसार कालपी की चिट्ठी लेकर उनके पास जाना ही पड़ेगा। रह-रहकर धैर्य खिसक रहा था और जी चाहता था कि राज्य छोडकर कही चले जाये, परन्तु बाग-बगीचे थे, मकान थे, अनाज और रुपये थे और थी प्रधान मन्त्री के नाम से पुकारे जाने की आशा।

राजा के सामने पहुँचते ही जनार्दन का मन और भी छोटा हो गया। उनकी तबियत आज और भी ज्यादा खराब थी। वह बहुत हँस रहे थे और बिलकुल बेसिर-पैर की बातें कर रहे थे। आगा हैदर मौजूद था।

राजा ने जनार्दन से खूब हँसकर कहा—'कहो बम्हनऊ, आजकल किस घात मे हो ? तुम और कुञ्जर मिलकर राज्य करोगे ? याद रखना, वह भेड़िया लोचनसिह तुम सबो को खा जायगा।'

जनार्दन हाथ जोड़े सिर नीचा किये रहा।

'तुम्हारे इस अवनत मस्तक पर अगर दो सेर गोबर लपेट दिया जाय, तो कैसा रहे ?' राजा ने अट्टहास करके पूछा ?

'महाराज का दिया सिर है, इनकार थोड़े ही है।' जनार्दन ने विनीत भाव से उत्तर दिया।

'हाँ-हाँ।' राजा ने उसी तरह कहना जारी रक्खा—'इसी विनय से तो तुम दुनियाँ को ठगते रहते हो महाराज। कितना धन और अन्न इकट्ठा कर लिया है, उफ ! सोचकर डर लगता है। मरने के बाद सब सिर पर धरकर ले जायगा।'

फिर यकायक गम्भीर होकर बोले—'हकीमजी, बचूँगा या मरूँगा ?'

'अभी महाराज बहुत दिन जियेगे।' राज-भक्त हकीम ने दृढता के साथ उत्तर दिया, परन्तु स्वर मे विश्वास की खनक न थी। तकिये पर सिर रखकर राजा बोले—'तब कुञ्जरसिंह राज्य करेगा। वही करे, कोई करे। जनार्दन तुम राज्य करोगे?'

'महाराज, ऐसा न कहे। ब्राह्मणो का काम राज्य करने का नही है।' जनार्दन ने जरा काँपकर कहा। राजा किसी गुप्त पीड़ा के मारे कराहने लगे।

इतने मे लोचनसिंह वहाँ आया। प्रणाम करके बैठ गया।

लोचनसिह ने हकीम से धीरे से पूछा—'आज अवस्था क्या कुछ अधिक भयानक है।'

'नही, ऐसी कुछ अधिक नही।' उत्तर मिला।

लोचनसिह बोला—'आप सदा यही कहते रहते हैं, परन्तु महारज के जी के सम्भलने का रत्ती भर भी लक्षण नही दिखलाई देता है। सच्ची बात तो यह है कि राजा को यह बीमारी आप ही ने दी है।'

'मैंने।' हकीम ने साश्चर्य कहा।

'हाँ, आपने, निस्सन्देह आपने और किसी ने नही दी। बुढापे में जवानी बुला देने का नुसखा आप ही ने बतलाया। न मालूम किन-किन दवाओ की गरमी से महाराज का दिमाग आप ही ने जलाया है।'

दाँत पीसकर आगा हैदर महल की छत की ओर देखने लगा।

राजा का ध्यान आकृष्ट हुआ। जनार्दन से पूछा—'क्या गड़बड़ है? क्या मेरे ही महल मे किसी षड्यन्त्र की रचना कर रहे हो?' जनार्दन के उत्तर देने के पूर्व ही लोचनसिंह बोला—'षड्यन्त्रो का समय भी महाराज इन लोगो ने मिल-जुलकर बुला लिया है, परन्तु जब तक लोचनसिंह के हाथ में तलवार है, तब तक किसी का कोई भी षड्यन्त्र एक क्षण नहीं चल पावेगा।'

'क्या बात है?' राजा ने आँखे फैलाकर पूछा।

लोचनसिंह ने तुरन्त उत्तर दिया—'महाराज अपने किसी उत्तराधिकारी को नियुक्त कर दें. नहीं तो शायद बीमारी के साथ-साथ गोलमाल भी बढता चला जायगा। जगह-जगह लोग चर्चा करते हैं 'अब कौन राजा होगा?' जगह-जगह लोग सोचते होंगे 'मैं राजा होऊँगा, मैं राजा बन जाऊँगा। तबियत चाहती है, ऐसे सब पाजियों के गले काटकर कुत्तों को खिला दूँ। महाराज—'

राजा ने कराहते हुये कहा—'मूर्ख, बकवादी, पहले तू अपना ही गला काट।'

लोचनसिंह तुरन्त तलवार निकालकर बोला—'एक बार अन्तिम बार आदेश हो जाय और सब सह लिया जाता है, महाराज की व्यथा नहीं देखी जाती।'

'क्या करता है रे नालायक, डाल म्यान में तलवार को।' राजा ने भयभीत होकर कहा। फिर बहुत क्षीण स्वर में बोले—'हकीम जी, इस भयंकर रीछ को मेरे पास मत आने दिया कीजिये। यह न-मालूम इतने दिनों कैसे जीता रहा।'

हकीम सिर नीचा किये बैठा रहा।

लोचनसिंह ने भी कुछ नहीं कहा।

जनार्दन उस दिन ठीक मौका न समझ कर कालपी से आई हुई चिट्ठी के विषय में कोई चर्चा न करके लौट आया। लोचनसिंह भी साथ ही आया।

मार्ग में जनार्दन ने कहा—'आपसे एक विनती है ठाकुर साहब, जो बुरा न माने, तो निवेदन करूँ।'

'कहिये।'

'ऐसे समय महाराज से कोई तीखी बात मत कहिये।'

'मैंने कौन-सी बात चिल्लाकर कही? क्या यह झूठ है कि अनेक स्थानों पर 'उत्तराधिकारी कौन होगा' इस बारे में तरह-तरह की न सुनने लायक वार्ता छिड़ती चली जा रही है? क्या आपको मालूम है कि

खास महलों में रानियाँ तक राजा के उत्तराधिकारी के विषय में बिना किसी मोह या दु:ख के चर्चा कर रही हैं ? और कोई कहता तो सिर या जीभ काट लेता; परन्तु रानी को क्या कहू ? अच्छा किया, जो मैनेअपना विवाह नही किया ।'

'आपकी बात से राजा को कष्ट होता है ।'

'तब आपने राजा को अभी तक नही पहचाना। राजा को कष्ट होता है आप-सरीखे लोगो की ठकुर-सुहातियो से । ऐसा राजा कभी न हुआ होगा, जो सच्ची बात और सच्चे आदमियो का इतना आदर करे ।'

'यह तो आप बिलकुल ठीक कहते हैं ।' जनार्दन ने सावधानी के साथ कहा—'हम लोगों को बड़ी चिंता है कि ऐसे राजा के बाद कम-से-कम ऐसा ही वीर-पोषक राजा हो। इस प्रश्न पर विचार करना आप-सरीखे सरदारों का ही काम है । हम तो आप लोगो के किये हुए निर्धार के केवल पालन करने वाले हैं ।'

[११]

कुञ्जरसिंह को राजसिंहासन के प्राप्त करने की बहुत आशा न थी। वह यह जानता था कि राजा का अन्तिम समय निकट है और उनके मरते ही सिंहासन के लिये दौड़ो-झपटो की धूम मच जायगी। उसका संसार में कोई न था, केवल राजा का स्नेह था, सो वह पालर से लौटने के बाद कदाचित् राजा के पागलपन में ऐसा लीन हो गया कि उसके चिह्न तक न दिखलाई पड़ते थे।

बड़ी रानी की ज़रूर कुछ कृपा थी, परन्तु उस कृपा में स्नेह के लिये, व्याकुल हृदय के लिये प्रीति न थी।

पालर में एक आलोक उसने देखा था। वह बिजली की तरह चमका और उसी तरह विलीन हो गया। उसकी दिव्यता का आतंक-मात्र मन पर गढा हुआ था और जैसे प्रात:काल कोई सुख-स्वप्न देखा हो, किसी आकाश-कुसुम के दूर से एक क्षण के लिये दर्शन किये हो और फिर वह विस्तृत अनन्त प्रसारमय आकाश में ही कही छिप गया हो।

एक-आध बार कुञ्जरसिंह ने सोचा, स्त्री थी, मनोहर थी, लज्जावती थी, एक बार स्नेह की दृष्टि से देखा भी था। परन्तु यह भाव बहुत थोड़ी देर मन मे टिकता था। उसके मानस-पटल पर जो चित्र बना था, वह स्पष्ट दृष्टिवाली, अपरिमित शालीनतामय नेत्रो वाली, कठिनाइयों के सामने अपनी कोमल, गोरी भुजा की एक छोटी-सी उँगली के संकेत से अनन्त लहरावलि को प्रबलताओ को जगाने वाली दुर्गा का था। स्वप्न सच्चा था, अनूठा था और शातिदायक था। अथवा कदाचित् उत्साह-मात्र दान करने वाला। परंतु उस समय के चिंताजनक और शून्य-से काल में उस आलोक की दिवयता-मात्र की स्मृति ही थी।

कुञ्जर को सिंहासन की आशा कम थी, परन्तु उपेक्षा न थी। उसने लोगों से प्राय: सुना था कि ससार में पाँसा पलटते विलंब नही होता।

राजा की बहुत बढ़ती बीमारी में एक दिन बड़ी रानी ने राजा के पास से लौटकर अपने महल में कुञ्जर को बुलाया।

कहा—'राजा का बचना असंभव जान पडता है, मेरे सती हो जाने के बाद किसका राज्य होगा ?'

'इस तरह की बाते सुनकर मेरा मन खिन्न हो जाता है और यथासभव मैं इस तरह की चर्चा से बचा रहता हूँ।'

'परन्तु कुञ्जर !' रानी ने कहा—'जो अवश्यंभावी है, वह होकर रहेगा।'

कुञ्जरसिंह ने एक क्षण सोचकर उत्तर दिया—'जो आप सती हो गईं और महाराज ने किसी को उत्तराधिकारी नियुक्त न किया, तो इस राज्य का अनिष्ट ही दिखाई देता है।'

'छोटी रानी राज्य करेगी।' रानी ने आंखें तानकर कहा—'वह सती न होगी।'

कुञ्जरसिंह बोला—'यह आपको कैसे मालूम ?'

'क्या मैं उनकी प्रकृति को नही जानती हू ? वह राज्य-लिप्सा में चाहे जो कुछ कर सकती हैं। वह देखो न, देवीसिंह नाम का एक दीन ठाकुर, जो महाराज ने अपने महल में ठहरा रक्खा है, उनकी आखो में लटक गया है। कारण केवल इतना ही है कि मैंने दो मीठी बातें कह दी थी।' रानी ने उत्तर दिया।

'परन्तु।' कुञ्जरसिंह बोला—'महाराज उस बेचारे को थोडे ही राज्य दे रहे हैं, जो छोटी सरकार को खटके।' और उसने घबराहट की एक सांस को दबाया।' रानी ने कहा—'कुञ्जरसिंह, जब तक मै राज्य का कोई स्थायी प्रबन्ध न कर दूँगी, सती न होऊँगी। यदि मेरे पीछे रानी ने राज्य करके प्रजा को पीसा, तो मुझे स्वर्ग मे भी नरक-यातना सी अनुभव होगी।'

'मेरे लिये जो कुछ आज्ञा हो, सेवा के लिये तैयार हूं। संसार मे आपके सिवा और मेरा कोई नही।'

'तीन आदमियों के हाथ में इस समय राज्य की सत्ता बँटी हुई है—जनार्दन, लोचनसिंह और हकीमजी। इनमें से किस पर तुम्हारा काबू है?'

'काबू तो मेरा पूरा किसी पर नही है।' कुञ्जरसिंह ने विश्वास परित्याग कर उत्तर दिया—'परन्तु लोचनसिंह थोड़ा-बहुत मेरा कहना मानते हैं।'

'और जनार्दन?' रानी ने पूछा।

'वह बड़ा काइयाँ है। उसका दांव समझ में नही आता।'

'मैं उसे बहुत दिनों से जानती हूं। मैंने उसके साथ बहुत-से अहसान भी किये हैं। वह उन्हे भूल नही सकता। उसे ठीक करना होगा।'

'कैसे?' कुञ्जरसिंह ने भोले भाव से प्रश्न किया।

रानी ने अवहेलना की सूक्ष्म दृष्टि से कुञ्जर का अवलोकन किया। फिर ज़रा मुस्कराकर बोली—'मै उसे ठीक करूँगी। जो कुछ कहती जाऊँ, करते जाना और यदि महाराज स्वस्थ हो गये और मैं उनके समय उस लोक को चली गई, तो सोलह आना बात रह जायेगी।'

कुछ छण बाद फिर बोली—'कालपी से एक चिट्ठी आई थी। कल महाराज को जनार्दन ने सुनाई। आपे से बिल्कुल बाहर हो गये।' रानी ने चिट्ठी का सविस्तार वृत्तान्त कुञ्जरसिंह को सुनाया।'

कुञ्जर ने भी उस चिट्ठी का हाल सुना था, परंतु यथावत् उसे मालूम न था। रानी के मुख से सपूर्ण ब्योरा सुनकर उसे आश्चर्य हुआ।

रानी बोली—'मुझे राज्य की खबरों का सब पता रहता है। यह तुमने समझ लिया या नही?'

कुञ्जर ने स्वीकार किया। बोला—'उस लड़की का पता क्या मुसलमानो को लग गया है?'

'नही, परन्तु जनार्दन ने पता लगा लिया है। बहुत सुरक्षित स्थान में बिराटा के रजवाड़े के दाँगी राजा सबदलसिंह के दुर्ग मे वह पहुंच गई है।' फिर कहा—'हकीमजी जनार्दन के कहने में हैं। जनार्दन को ठीक कर लेने से वह भी ठीक हो जायँगे।'

[१२]

राजा न सम्भले—मर्ज बढता गया, ज्यों-ज्यों दवा की, पागलपन और शरीर की अन्य वीमारियो के बीच मे कभी-कभी कुछ चेत हो आता था। अवस्था इतनी खराब हो गई थी कि शायद आगा हैदर के सिवाय और किसी को उनकी चिन्ता न रह गई थी। सब बेचैन थे, व्यग्र थे इस उग्र चिन्ता मे कि आगे क्या होगा ?

जिस समय जनार्दन ने राजा को कालपी की चिट्ठी का साराँश सुनाया, सब उपस्थित लोगों को तरह-तरह की फूहर गालियाँ देकर अन्त में आज्ञा दी कि कालपी पर चढाई करने की तैयारी कर दो।

बात-बात पर सिर काटने और कटवाने की योजना वाले लोचनसिंह को भी इस आज्ञा को पालन करने मे कठिनाई अनुभव हुई।

जनार्दन जानता था कि अलीमर्दान शीघ्र चढ़ाई न करेगा। दिल्ली षडयंत्रो के भँवर में पड़ी थी। दिल्ली के प्रत्येक गुट्ट की दृष्टि अपने प्रत्येक सहायक की सत्वर सहायता पर लगी हुई थी। अलीमर्दान अपने भाग्य का अधिकांश वहाँ के एक गुट्ट से सम्बद्ध समझता था। दलीपनगर भी उस गुट्ट का शत्रु न था। परन्तु किसी गुट्ट का भी इतना आतंक दलीपनगर पर न था कि अलीमर्दान के सामने दाँतो-तले तिनका दबाता। इसलिये जनार्दन ने सेना का धीरे-धीरे तैयार कर डालना ठीक समझा। बड़े पैमाने पर सेना रखना उस समय की माँग थी। शायद इस तैयारी से अलीमर्दान सहम जाय और यदि उससे न भी माना, तो डटकर लड़ाई लड़ ली जायगी। परन्तु कालपी पर आक्रमण करना जनार्दन का ध्येय न था और न उसकी व्यवहार-मूलक राजनीति में इस प्रकार के विचार के लिये स्थान था। वज्र-मुष्टि की नीति में विश्वास रखने वाले लोचनसिंह की सनक राजा की मनोवृत्ति पर निर्भर थी।

वास्तव में इसी का जनार्दन को बहुत खटका था। राजा कालपी पर चढाई करने की आज्ञा दे चुके थे। जनार्दन दलीपनगर को इस तरह की मुठभेड़ से बचाना चाहता था। सेना की धीमी तैयारी से इस मुठभेड़ का

कुछ समय तक बरकाव हो सकता था। जनार्दन को एक और बड़ी आशा थी—राजा का शीघ्र मरण। और, और जो कुछ उसने मन में रहा हो, उसे कोई नही जानता था।

परन्तु वह इस विचार पर अवश्य पहुंच चुका था कि राजा के मरते ही दलीपनगर पर आने वाले तूफान का सहज ही निवारण कर लिया जा सकेगा।

जनार्दन ने राजा की एक दिन बहुत भयानक अवस्था देखकर और दोनो रानियो के बुलाओ को टालने के बाद आगा हैदर के घर जाकर मंत्रणा की।

कहा—'आज सवेरे राजा को जरा चेत था। स्थिति की भयंकरता देखकर, जी कड़ा करके मैंने राजा से स्पष्ट कहा कि किसी को गोद ले लिया जाय। आश्चर्य है, वह इस बात पर नाराज़ नही हुये। केवल यह कहा कि अभी मैं नही मरूँगा, जियूँगा। फिर मैं ज्यादा कुछ न कह सका।'

हकीम बोला—'अब उनके जीवन में बहुत थोड़े दिन रह गये हैं। बहुत कोशिश की, मगर यमराज का मुकाबला नही कर सकता। राजा की बद-परहेज़ी पर मेरा कोई काबू नही। यदि कंबख्त रामदयाल मर जाय, तो शायद अब भी राजा बच जायें। उनकी नामुमकिन फरमाइशों को पूरा करने के लिये वह सदा कमर कसे खड़ा रहता है। ऐसा बदकार है कि कुछ ठिकाना नही।'

'यदि मरवा डाला जाय ?'

'यह आप जाने। मै क्या कहूं ?'

'हकीम जी, बदन में फोड़ा होने पर आप उसे सेवें-पालेंगे या काटकर साफ कर देंगे ?'

'मै यदि जर्राह होऊँगा, तो साफ करके ही चैन लूँगा। मगर मैं हकीम हूँ, जर्राह नही।'

'खैर, जिसका जो काम होता है, वह उसे करता ही है। न्यायाधीश शूली की आज्ञा देता है, परन्तु शूली पर चढ़ाते हैं अपराधी को चांडाल।'

'मूजी है और उसने पाप भी बहुत किये हैं। आपके धर्म के अनुसार उसे जो दंड दिया जा सकता हो, दीजिये।'

'परन्तु हकीमजी, यह आपने बड़ी टेढी बात कही। रामदयाल का असल मे दोष ही क्या है ? मालिक ने जो हुकुम दिया, उसे सेवक ने पूरा कर दिया। धर्म-विधि से तो राजा का ही दोष है।'

'राजा करे सो न्याव, पांसा पडे सो दाँव।'

'परन्तु अब राजा के अधिक जीवित रहने से न केवल उनका कष्ट बढ रहा है, प्रत्युत यह राज्य भी आफत की गहरी खाई की ओर अग्रसर हो रहा है।'

'जो होनी है, उसे कोई नही रोक सकता।'

'हकीमजी।' जनार्दन ने साधारण निश्चय के साथ यकायक कहा—'या तो राजा का रोग समाप्त होना चाहिये या उन्हे शीघ्र स्वर्ग मिलना चाहिये।'

'दोनों बातें परमात्मा के हाथ मे हैं।' हकीम ने निराशा-पूर्ण स्वर में कहा।

जनार्दन बोला—'नही, आपके हाथ मे हैं।'

'यानी ?'

'यानी यह कि आप ऐसी दवा दीजिये कि या तो उनका रोग शीघ्र दूर हो जाय या उनका कष्ट-पीड़ित जीवन समाप्त हो जाय।' आगा-हैदर सन्नाटे मे आ गया।

बोला—'शर्माजी, अपने मालिक के साथ यह नमकहरामी मुझसे न होगी चाहे आप उनके साथ मुझे भी मरवा डालिये।' अबकी बार जनार्दन की बारी सन्नाटे मे पड़ने की आई।

जरा रुखाई के साथ बोला—'अभी-अभी बेचारे रामदयाल के खत्म होने का समर्थन तो कर रहे थे, परन्तु जिसके अत्याचारो के कारण बेचारी प्रतिष्ठित प्रजा बिलबिला रही है, जिसकी नादानी की वजह से कालपी का फौजदार इस निस्सहाय जदपद को सर्वनाश के समुद्र में

डुबोने के लिये आ रहा है, जिसकी वज्र-कामुकता के मारे असंख्य भोली-भाली, सती स्त्रियां मुँह पर कालिख पोतकर ससार मे मक्खियाँ उड़ाती फिर रही हैं, जिसका—'

'बस-बस, माफ कीजिये।' हकीम बोला—'आपको जो करना हो, कीजिये, मैं दखल नही देता। चाहे किसी को राज-रानी बनाइये, मुझसे कोई वास्ता नही। परन्तु अपने ईमान के खिलाफ मैं कुछ न कर सकूँगा।'

बिना किसी व्याकुलता के जनार्दन ने बड़ी अनुनय के साथ प्रस्ताव किया—'हकीमजी, मैं हाथ जोड़ता हूँ, कुछ तो इस राज्य के लिये करो, जिसके अन्न-जल से हमारे और आपके हाड़-मांस बने हैं।'

'क्या करूँ?' हकीम ने अन्यमनस्क होकर पूछा।

जनार्दन ने उत्तर दिया—'सैयद अलीमर्दान को मना लो। दलीपनगर को बचा लो। सुना है, उसकी फौज कालपी से शीघ्र कूच करने वाली है। यदि आप उसे बिलकुल न रोक सके, तो कम-से-कम कुछ दिनों तक अटका ले, तब तक मैं राजा द्वारा किसी उत्तराधिकारी को नियुक्त कराके राज्य को सुव्यवस्थित करा लूँगा। यदि राजा बच गये, तो उत्तराधिकारी की रेख-रेख मे राज-काज ठीक तौर से होता रहेगा, न बचे, तो जो राजा होगा, सँभाल कर लेगा। इस समय सबके मन किसी अनिश्चित, अंधकारावृत, अदृश्य, घोर विपत्ति के आ टूटने की संभावना के डर से थर्रा रहे हैं मानो मनुष्य में कोई शक्ति ही न हो। सामने सहायक देखकर ये ही भय-कातर लोग प्रबल हो उठेगे और यह राज्य विपत्ति से बच जायगा।'

इस अनुनय की प्रबलता ने हकीम को कुछ सोचने पर विवश किया।

जनार्दन निस्सकोच कहता चला गया—'यदि प्रजा अपने आप कुछ कर सकती होती, तो हमें और आपको इतना ऊँच-नीच न सोचना पड़ता। उसका सशक्त या अशक्त होना अच्छे-बुरे राजा पर निर्भर है। देखिये, छोटे राज्यो के अच्छे नरेशों के आश्रय में प्रजा कैसे-कैसे भयानक

आक्रमणकारियों का प्रतिरोध करती है और बड़े राज्यो के बुरे नरपतियों की मौजूदगी कराल विष का काम करती है।'

हकीम सोचकर बोला—'मै कालपी तुरंत जाने को तैयार हूँ, परन्तु राजा के इलाज का क्या होगा ?

'किसी अच्छे वैद्य या हकीम को नियुक्त कर जाइये।' उत्तर मिला।

हकीम ने कहा—'मै अपने लडके के हाथ मे राजा का इलाज छोड़ जाऊँगा और किसी के हाथ मे नही।'

'इसमे कोई खलल न डालेगा।' जनार्दन ने कहा—'और मैंने अत्यन्त विह्वलता के कारण जो दारुण प्रस्ताव आपके सामने उपस्थित किया था, उसे भूल जाइयेगा। अवस्था इतनी भयानक हो गई है कि मेरा तो दिमाग ही खराब हो गया है।'

'खैर।' हकीम बोला—'इसका आप कोई खयाल न करे। मैं अलीमर्दान को तो मनाने की कोशिश करूँगा ही, किन्तु दिल्ली के भी किसी गुट्ट को हाथ मे लेकर अलीमर्दान को सीधा कर लूँगा। इस समय दिल्ली की सल्तनत मे एक औरत की बहुत चल रही है। शायद उसकी मार्फत अलीमर्दान को काफी समय के लिये दिल्ली बुलवा सकूँ।'

[१३]

'लोचनसिंह के हाथ मे सारी सेना नही है। मै कभी नही मानूँगी कि सब सरदार उसके कहने या तावे मे हैं।' रानी मे उस दिन देर तक कुञ्जरसिंह को तटस्थ की तरह बात करते हुये सुनकर कहा।

अपनी पहले की कही हुई वातों पर डिगने या आशान्वित होने का कोई लक्षण न दिखलाते हुये कुञ्जरसिंह बोला—'राव अपनी ही घात मे हैं और दीवान साहव अपने को महाराज से भी वढ़कर हकदार समझते हैं। लोचनसिंह शूरता मे उन सव स्वार्थियो से वढ़कर है और किसी विशेप पक्ष में नही समझा जाता है, इसलिये लोग उसकी वात मानने का कम-से-कम दिखावा अवश्य करते हैं।'

'जो आदमी संसार में यह प्रकट करता है कि मै हथेली पर जान लिये फिरता हूं और वात-बात मे सिर दे डालने का दंभ करता है, उसे शूर बोदापन ही कह सकता है। उस दिन तो तुम कहते थे कि तुम्हारे कहने मे आ जायगा।'

'आपने भी तो आज्ञा की थी कि आप जनार्दन को ठीक कर लेगी।'

'वह तो होगा ही अंत मे।' रानी वोली—'परन्तु इसमे तुम्हारे किस प्रयत्न को गौरव और पुरस्कार मिलेगा ?'

कुञ्जर ने उत्तर दिया—'संभव है, काकाजू स्वस्थ हो जायँ।'

'असभव है।' रानी ने विना किसी छद्म के कहा—'अव तो उनके कष्ट की घड़ियाँ वढ़-भर रही हैं।'

इतने मे एक दासी ने आकर खवर दी कि रामदयाल आना चाहता है। वुला लिया गया।

एक वार कुञ्जर और दूसरी वार रानी की ओर विजली की तेज़ी के साथ देखकर वोला—'महाराज आज पचनद की ओर जाने की तैयारी कर रहे हैं। निवेदन करवाया है कि आप भी चले।'

ज़रा अचम्भे मे आकर रानी ने कहा—'जी कैसा है ?'

'कुछ अच्छा है—यों ही है।'

'जनार्दन ने भी मान लिया है ?'

'उन्होने यह कहकर समर्थन किया है कि स्थान-परिवर्तन से लाभ होगा।'

कुञ्जरसिंह ने पूछा—'कौन-कौन जा रहा है ? लोचनसिंह भी जा रहे हैं ?'

'हाँ राजा।' भृत्य ने झुककर उत्तर दिया—सेना भी उनके साथ जायगी, जितनी साथ के लिये आवश्यक होगी।'

रानी ने कहा—'छोटी महारानी जायँगी ?'

'हाँ महाराज।' उत्तर मिला।

'अच्छा, जाओ।' रानी बोली—'मै थोड़ी देर मे उत्तर भेजूँगी।'

रामदयाल जाने लगा। रानी ने रोककर कहा—'महाराज की अनुपस्थिति मे और यहाँ से अनेक लोगो के चले जाने पर सेना किसके हाथ मे छोड़ी गई है ?'

उसने जवाब दिया—'शर्माजी ने प्रबन्ध कर दिया है।'

रामदयाल चला गया।

कुञ्जरसिंह बोला—'जनार्दन ने अलीमर्दान को शांत करने के लिये आगा हैदर को कालपी भेजा है। जान पडता है, उस दिशा से अब भय का कारण नही है। इसीलिये जनार्दन मान गये हैं। मेरी समझ मे आपको वही चलना चाहिये, जहाँ जनार्दन और लोचनसिंह महाराज के साथ जायँ। छोटी रानी साथ न जाती, तब भी आपका जाना आवश्यक होता।'

बड़ी रानी ने भी साथ जाने की सहमति प्रकट की।

[१४]

कालपी से आगा हैदर ने जनार्दन को लिखा था कि अलीमर्दान नाराज तो बहुत था, परतु अब शात है और दलीपनगर को मित्र की दृष्टि से देखता है, लडाई की कोई संभावना नही और मुझे कुछ दिनो मेहमान बनाये रखना चाहता है।

असल बात कुछ और थी। निज़ामुलमुल्क हैदराबाद मे करीब-करीब स्वतंत्र हो गया था। मालवा स्वतत्रता के मार्ग पर दूर जा चुका था। परन्तु मराठे अपने संपूर्ण अधिकार के लिये वहाँ दौड़-धूप कर रहे थे। दिल्ली मे सैयद भाई अस्त हो चुके थे और वह कठपुतलियों को नचाने वाले ओछे हाथो मे थी। बुन्देलखण्ड के पूर्वीय भाग मे महाराज छत्रसाल की तलवार झनझना रही थी। मुहम्मदखाँ बगश उस झनझनाहट का विरोध करता फिर रहा था। अलीमर्दान दिल्ली, मालवा और बंगश के चक्रव्यूह से बचकर अपनी धुन बना ले जाने की चिंता में था। दिल्ली का भय उसे न था, परन्तु उसकी ओट की अपेक्षा थी। दिल्ली से ससैन्य आने के लिये बुलावा आया था। बिना समझे-बूझे शीघ्र दिल्ली पहुंच जाना उन दिनो दिल्ली का कोई सूबेदार, फ़ौजदार या सरदार आफत से खाली नही समझता था। मेरे लिये कोई षड़यंत्र तो तैयार नही है ? मुहम्मदखाँ बगश ने तो कोई शरारत नही रची है ?

बंगश उसका मित्र था, परन्तु अलीमर्दान उसकी लड़ाइयो में बहुत कम शामिल होता था। होता भी, तो उस समय के मित्र के षड़यंत्र, विष और खड्ग से कैसे बचता ? इसलिये उसे बगश पर और बंगश को उस पर सन्देह रहता था। अतएव उसने शाति के साथ कालपी में कम-से-कम कुछ दिनो डटे रहना तय किया। दलीपनगर पर आमक्रण करने की बात उसने सदा के लिये स्थगित कर दी हो, सो नही था। मित्र भाव दिखलाकर वह दलीपनगर को सुषुप्त रखना चाहता था। अवसर आने पर चढाई कर दूँगा, इस निश्चय को उसने सावधानी से गाँठ मे बाँध लिया था।

आगा हैदर का जो अतिथि-सत्कार हुआ, उसने अलीमर्दान के मनोगत भाव को और भी न समझने दिया।

ऐसी परिस्थिति में जनार्दन ने राजा के मनोवेग का समर्थन किया। दलीपनगर में सेना का एक काफी बड़ा भाग अपनी मण्डली के कुछ विश्वस्त लोगों के हाथ में छोड़ा और पचनद की ओर राजा को लेकर कूच कर दिया। खबर लेने के लिये जहाँ-तहाँ जासूस नियुक्त कर दिये। वह राजा का साथ बहुत कम छोड़ता था।

रानियाँ साथ गईं। देवीसिंह अब बिलकुल चङ्गा हो गया था। उसे भी राजा ने साथ ले लिया।

कहने के लिये कई वार सोची हुई बात को जनार्दन ने मार्ग में एकांत पाकर देवीसिंह से कहा—'आप बड़े वीर हैं। उस दिन महाराज की रक्षा आप ही ने की।'

'बुन्देला का कर्तव्य ही और क्या है, शर्माजी ? देवीसिंह ने लापरवाही के साथ कहा—'परन्तु अब किस तरह उनके प्राण बचेंगे, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है।

'दवा-दारू हो रही है। देखिये, आशा तो बहुत कम है।' आह भरकर जनार्दन बोला—'ऐसी दशा मे महाराज को इतनी दूर नहीं आने देना चाहिये था।'

'यमुनाजी की रज मे वह अपने जन्म की यात्रा समाप्त करना चाहते हैं, इसलिये हम लोगो ने निषेध का उपाय नहीं किया।'

देवीसिंह ने पूछा—'यदि महाराज का स्वर्गवास बीच मे ही हो गया, तब क्या कीजियेगा ?'

उत्तर मिला—'यमुनाजी की रज में उनके फूल विश्राम करेंगे। आपके प्रश्न के साथ हम सबकी एक और घोर चिन्ता का भी सम्बन्ध है। वह यह कि उनके पश्चात् इस राज्य का शासन कौन करेगा ?'

'सिवा बुन्देला के और कौन कर सकता है ?' देवीसिंह ने कहा—'कुञ्जरसिंह तो दासी-पुत्र हैं, गद्दी के हकदार नही सकते, इसलिये कोई भाई-बन्द ही सिंहासन पर बैठेगा।'

'परन्तु।' जनार्दन ने मुस्कराकर कहा—'भाई-बन्द कोई ऐसा नही, जिसका दृढता-पूर्वक अपने चेत मे उन्होने निषेध न किया हो। रानियाँ अवश्य हैं।'

देवीसिंह बोला—'यह समय स्त्रियो के राज्य का नही।'

'और इधर-उधर कोई भी उपयुक्त भाई-बन्द नही। बड़ी कठिन समस्या है।'

'सब बुन्देले भाई-बन्द ही हैं।'

'आप भी ?' जनार्दन ने आँख गड़ाकर पूछा।

उसने उत्तर दिया—'हाँ, मै भी। प्रजा होने से क्या भाई-बन्द में अन्तर आ सकता है ?'

हँसते हुये जनार्दन ने पूछा—'आपको राजा नियुक्त कर दे, तो ?'

देवीसिंह सन्न रह गया। जरा रीती दृष्टि से जनार्दन की ओर देखने लगा।

जनार्दन बोला—'यदि कर दे, तो गो-ब्राह्मणों की तो रक्षा होगी ?' और हँसा।

[१५]

पालर मे और आस-पास भी खबर फैली हुई थी कि घोर लूट-मार और मार-काट होने वाली है। उत्तरी भारतवर्ष के लिये यह समय बड़े सकट का था। उपद्रवो के मारे नगरो और राजधानियों में खलबली मची रहती थी। दिल्ली डाँवाडोल हो चुकी थी। उसके सहायक और शत्रु अपने-अपने राज्य स्थापित कर चुके थे। परन्तु ईर्ष्या और शत्रुता बढने के भय से अपनी पूर्ण स्वतंत्रता बहुत थोड़े राजा या नवाब घोपित कर रहे थे। बहुत से स्वाधीन हो गये थे, किन्तु नाममात्र के लिये दिल्ली की अधीनता प्रकट करते रहते थे। इनमें जो प्रवल थे, वे चौकस थे, निर्दय थे और उनकी प्रजा को बहुत खटका नही था, किंतु ऐसे थोडे थे जो छोटे या निर्बल थे, वे किसी प्रबल पड़ोसी या दूर के शक्तिशाली, तूफानी जन-नायक की ओर निहारते रहते थे।

एक आग-सी लगी हुई थी। उसकी लौ मे बहुत से जल-भुन रहे थे, अनेको झुलस रहे थे और उसकी आँच से तो कोई भी नही बच रहा था।

बड़नगर के राजा के लिये भी कम परेशानिया न थी। पालर के निकट किसी होने वाले तूफान की खबर पाकर कुछ प्रबन्ध करने का संकल्प किया कि दूसरी ओर और बड़े झंझाव्रातो की दुश्चिन्ता में फँस जाना पड़ा। पालर के निकटवर्ती ग्रामो की रक्षा का कोई प्रबन्ध न किया जा सका। ऐसी अवस्था में साधारण तौर पर जैसे प्रजा को अपने भाग्य के भरोसे छोड़ दिया जाता था, छोड़ देना पड़ा।

पालर के और पड़ोस के निकटवर्ती ग्रामीणो ने इस बात को समझ लिया। जङ्गलों और पहाड़ो की भयंकर गोद मे छिपे हुये छोटे-छोटे गढपतियो की शरण के सिवा और कोई आसरा न था। कोई कही और कोई कही चला गया। रह गये अपने घरों मे केवल दीन-हीन किसान, जो हर खेती छोड़कर कही न जा सकते थे। उन्हे पेट के लिये, राजा के लगान के लिये, लुटेरों की पिपासा के लिये खेतो की रखवाली करनी

थी । आशा तो न थी कि चैत-वैशाख तक खेती बची रहेगी । यदि कहीं से घुड़सवार सेना आ गई तो खेतो मे अन्न का एक दाना और भूसे का एक तिनका भी न बचेगा । परन्तु जहां आशा नही होती, वहाँ निराशा ईश्वर के पैर पकड़वाती है । यदि बच गये, तो कृतज्ञ हृदय ने एक आंसू डाल दिया और बह गये, तो भाग्य तो कोसने के लिये कही गया ही नही ।

जिस समय बड़े-बड़े राजा और नवाब अपनी विस्तृत भूमि और दीर्घ सपत्ति के लिये रोज-रोज़ खैर मनाते थे, अपने अथवा पराये हाथों अपने मुकुट की रक्षा में व्यस्त रहते थे और उसी व्यस्त अवस्था में बहुधा दिन मे दो-चार घण्टे नाच-रङ्ग, दुराचार और सदाचार के लिये भी निकाल लेते थे, उस समय प्रजा अपनी थोड़ी-सी भूमि और छोटी-सी संपत्ति के बचाव की फिक्र करते हुये भी देवालयो में जाती, कथा-वार्ता सुनती और दान-पुण्य करती थी । सन्ध्या समय लोग भजन गाते थे । एक दूसरे की सहायता के लिये यथावकाश प्रस्तुत हो जाते थे । यद्यपि बड़ो के सार्वजनिक पतन की विषाक्त छाया मे साधारण समाज को खोखला करने वाले अधर्ममूलक स्वार्थ का पूरा घुन लग चुका था, और कादरता तथा नीचता डेरा डाल चुकी थी, परन्तु बडों को छोड़कर छोटों मे छल-कपट और वेईमानी का आम तौर पर दौर-दौरा न हुआ था ।

झाँझ बजाकर रामायण गाते थे । लुटेरो के आने की खबर पाकर इकट्ठे हो जाते थे । मुकाबले के लायक अपने को समझा, तो पिल पड़े, न समझा, तो दे-लेकर समझौता कर लिया या समय टालकर किसी गढ़पति के यहाँ वन-पर्वत में जा छिपे ।

पालर के सीधे-सादे जीवन में जहां विशाल झील में नहा-धोकर काम करना और पेट भर खा लेने के वाद शाम को झाँझ बजाकर ढोलक पर भजन गाना ही प्राय नित्य का सरल कार्य-क्रम था, वहाँ देवी के अवतार का चमत्कार ही एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी । इसके रङ्ग को

बाहर वालों ने अधिक गहरा कर दिया था, क्योंकि पालर वालों ने इसकी विज्ञप्ति के लिये स्वयं कोई कष्ट नही उठाया था।

वही चमत्कार उन दिनो उनकी विपत्ति का कारण हुआ। असंख्य घुड़सवारो की टापो से टूटे हुये हरे-हरे पौधो की टहनियो को धूल के के साथ गगन मे उडते देखना वहाँ के बचे-खुचे लोगो का जागते-सोते का स्वप्न हो गया था।

जिस दिन दलीपनगर के राजा की मुठभेड़ कालपी के दस्ते के साथ हुई, उसी दिन कुमुद का पिता उसे लेकर कही चल दिया था। सब धन-सम्पत्ति नही ले जा पाया था। उसका ख्याल था कि शायद शाँत हो जाय। थोडे ही दिन बाद लौट कर आया।

उसके पडोस मे केवल ठाकुर की एक लडकी, जिसका नाम गोमती था, रह गई थी। वह घर मे अकेली थी। देवीसिंह के साथ इसी का विवाह होने वाला था। परन्तु दूल्हा को राजा की पालकी थामे हुये गिरते लोगो ने और गोमती ने देख लिया था। लोचनसिंह की सहानुभूतिमयी वार्ता गोमती नही भूली थी। दूसरे दिन जब राजा नायकसिंह दलीपनगर की ओर चलने लगे, तब डर के मारे किसी पालर-निवासी ने देवीसिंह की कुशल-वार्ता का समाचार भी न पूछ पाया था। गोमती स्वयं जा नही सकती थी। उडती खबर सुन ली थी कि हाल अच्छा नही है। लोचनसिह-सरीखे मनुष्य जिस बेडे मे हो, उसमें वह दीन घायल युवक कैसे बचेगा ? परन्तु एक टूटती-जुड़ती आशा थी—शायद भगवान बचा ले, कदाचित दुर्गा रक्षा कर दें।

नरपतिसिंह को गाँव मे फिर देखकर गोमती को बडा ढाढस हुआ। जाकर पूछा—'काकाजू, कहाँ चले गये थे ? दुर्गा कहाँ हैं ?'

'मन्दिर मे हैं।' नरपतिसिंह ने अपना सामान जल्दी-जल्दी बाँधते हुये उत्तर दिया।

'मैं अपनी दुर्गा की बात पूछती हू।' गोमती बोली।

'मन्दिर में हैं।' वही उत्तर मिला।

बड़ी विनय के साथ गोमती ने कहा—'काकाजू, मैं भी उसी मन्दिर में तुम्हारे साथ चलूँगी। जहाँ कुमुद होगी, वही मेरी रक्षा होगी। इस विशाल झील के सिवा और कोई मेरा यहाँ रक्षक नही।'

सामान का बाँधना छोड़कर नरपतिसिंह बोला—'क्या दुर्गा रक्षा नही करती हैं? ऐसा कहने से बड़ा पाप लगता है।'

गोमती ने दृढ अनुनय के साथ कहा—'इसीलिये तो आपके साथ चलूँगी। मेरे पास कोई सामान नही है। एक धोती और ओढने-बिछाने का छोटा-सा बिस्तर है, कधे पर लुटिया-डोर डाल लूँगी। यहाँ नही रहूंगी। साथ चलूँगी। जहाँ कुमुद होगी, वही चलूँगी।'

'चल सकोगी?' करारे स्वर मे नरपतिसिंह ने गोमती को विचलित करने के लिये कहा।

अचल कण्ठ से गोमती ने उत्तर दिया—'चलूँगी, चाहे जितनी दूर और चाहे जैसे स्थान पर हों।'

'बिराटा, भयानक बेतवा के बीच मे यहाँ से दस कोस।'

'चलूँगी।'

थोड़ी देर बाद दोनों पोटली बाँधकर पालर से चल दिये।

[१६]

टेढ़े-मेढे, पथरीले-नुकीले और वन्य, पहाड़ी ओछे-सकरे मार्गों में होकर नरपतिसिंह गोमती-सहित बिराटा पहुँच गया।

बिराटा पालर से उत्तर-पूर्व के कोने में है। बेतवा के तट और टापू पर, घोर वन के आँगन में, छोटी संपन्न वस्ती थी। राजा दाँगी था। नाम सबदलसिंह। नदी की करार पर उसका गढ था, जो दूर से वन के सघन और दीर्घ-काय वृक्षो के कारण कई ओर से दिखलाई भी न पडता था।

गढ़ के ठीक सामने पूर्व की ओर नदी के बीचोबीच एक टापू पर एक छोटा मन्दिर छोटी-सी दृढ गढी के भीतर था। इस मन्दिर मे उस समय दुर्गा की मूर्ति थी। जीर्णोद्धार होने के बाद अब उसमें शकर की मूर्ति स्थापित है। दक्षिण की ओर यह टापू एक ऊँची पहाड़ी मे समाप्त हो गया है। कही-कही पहाड़ी दुर्गम है। जिस ओर यह लम्बी-चौडी चट्टानों में ढल गई है, उस ओर विस्तृत नीलिमामय जल-राशि है। नदी की धार टापू के दोनो ओर बहती है, परन्तु टापू से पूर्व की ओर धार बड़ी और चौड़ी है। इस पहाड़ी के नीचे एक बडा भारी दह है।

उत्तर की ओर टापू करीब पांच मील लम्बी, समथर, उपजाऊ भूमि में समाप्त हुआ है। सबदलसिंह की छोटी-सी बैठक उस मैदान में थी और बैठक के चारो ओर एक छोटा-सा उद्यान।

मन्दिरो में कभी कोई साधू-बैरागी आकर कुछ दिनों के लिये ठहर जाता था; वैसे खाली पड़ा रहता था। पूजा का अवश्य प्रबन्ध था, जैसा पुराने बिराटा के बिलकुल उजड जाने पर भी इस एकात मन्दिर की पूजार्चा का आज भी कुछ-न-कुछ प्रबन्ध है।

बिराटा मे भी कुमुद के दुर्गा होने की बात विख्यात थी। राजा दाँगी था, इसलिये कुमुद के देवत्व को यहाँ और भी अधिक बड़प्पन मिला। नरपतिसिंह थोड़े ही दिनो गाँव की बस्ती में रहा। नदी के बीच में, टापू की पहाड़ी पर स्थित मन्दिर उसे अपनी रक्षा और निधि के बचाव के

लिये बहुत उपयुक्त जान पड़ा। कुमुद भी आवभगत और पूजा की बहुलता के मारे इतनी थक गई थी कि टौरिया के मन्दिर के एकांत को उसने कम-से-कम कुछ दिनो के लिये बहुत हितकर समझा। नरपति के पालर जाने के पहले ही कुमुद इस मन्दिर मे चली आई थी।

पालर से लौटकर गाँव मे पहुंचने पर नरपतिसिंह ने गोमती से कहा—'तुम अब यही कहीं अपने रहने का बन्दोबस्त करो। मैं देवी के पास मन्दिर मे जाऊँगा।'

'मैं भी वही चलूँगी।'

'बडा भयानक स्थान है।'

'भयानक स्थानों से नही डरती। देवी की सेवा में मेरा सम्पूर्ण जीवन सुभीते के साथ बीत जायगा।'

परन्तु यदि देवी ने पसन्द न किया, तो?'

गोमती ने विश्वास के साथ उत्तर दिया—'अवश्य करेंगी। देवता के पास एक पुजारिन सदा रहेगी। आप जब कभी टापू छोड़कर बस्ती में राजा के पास आवेंगे, देवी का अकेला न रहना पड़ेगा। आजकल किसी को अकेला न रहना चाहिये।'

नरपतिसिंह ने ज़िद न की

जिस समय गोमती मन्दिर में पहुंची, कुमुद बेतवा के पूर्व तट के उस ओर वन की ओर जंगली पशुओ की आवाजे सुन रही थी। संध्या हो चुकी थी। पश्चिम दिशा का क्षितिज सुनहले रग से भर चुका था और पूर्व की ओर से अन्धकार के पल्लड के पल्लड़ नदी की स्वर्ण-रेखा पर मानो आवरण डालने वाले थे। मन्दिर के चारों ओर नदी की प्रशस्त धाराएँ अन्धकार और वन्य पशुओ के चीत्कारो से कुमुद की एकांतता को अलग-सा कर रही थी। पिता को देखते ही एकांतता का गाभीर्य चला गया। हर्ष की एक सुनहली रेखा से आँखे जग गईं और गोमती को देखते ही आनन्द की पुलकावली का रखा जाल विकसित सुख पर नाचने-सा लगा।

बिना किसी प्रतिबन्ध के गोमती को गले लगाकर बोली—'गोमती, तुम भी आ गईं। अच्छा किया। भूली नही। एक से दो हुए। अच्छी तरह हो! अब जब पालर चलेंगे, साथ ही चलेंगे।'

यह मिलाप नरपतिसिंह को भी बुरा नही लगा। देवी को—अपनी कन्या को—एक घडी के लिये स्वाभाविक आनन्द मे लहराते देखकर वह बूढा पँडा भी प्रसन्न हो गया। उसने सोचा—'ऐसा मिलाप बहुधा और सबके सामने न होना चाहिए।'

गोमती भी उमड़े हुए सौन्दर्य की युवती थी। परतु किसी गुप्त चिंता और प्रकट थकावट ने उसे मेघाच्छन्न चाँदनी की तरह बना रक्खा था।

आलिंगन से छूटकर गोमती ने सजल, कृतज्ञ नेत्रो से एक क्षण उन महिमावान् स्थिर नेत्रो की ओर देखा। बोली—'आपकी शरण मे आ गई हूँ, अब कोई कष्ट न रहेगा।' और रोने लगी।

नरपतिसिंह अपना सामान यथास्थान रखने में जुट गया।

कुमुद ने गोमती का हाथ पकडकर कहा—'आप-आप मत कहो, तुम कहो।'

'देवी से ?'

'देवी मदिर में हैं। मै तो पुजारिन-मात्र हूँ।'

'नही, आप ही कहूँगी। सब लोग आप कहते हैं।'

'नही, मुझे वही बहुत प्यारा है। आप-आप सुनते-सुनते थक गई हूँ। दूसरे शब्द मे अधिक शाति और सुख है।'

'जैसा आदेश हो।'

'फिर वही! अच्छा, देखा जायगा। परन्तु मैं तुम्हारी बहन हूँ, यह सम्बन्ध मानने का वचन दो।'

'बड़ी बहन ?'

'यही सही।'

'सो तो है ही।'

कुमुद ने कहा—'तुम बहुत थक गई हो। सारी देह धूल और धूप में घूमरी पड़ गई है। नहा-धोकर भोजन करो।'

इतने मे नरपतिसिंह का ध्यान आकृष्ट हुआ। उसे सिर के वाल बिखेरे पास आता देखकर कुमुद की मुद्रा धीर हो गई।

नरपतिसिंह बोला—'गोमती, तुम इस कोठरी में अपना डेरा डाल लो। तुम्हें मैं कुछ वस्त्र और दूँगा। भोजन करके आराम से सो जाओ।'

कुमुद ने अपने सहज मीठे स्वर मे कहा—'हम और वह एक ही स्थान पर अर्थात् एक ही कोठरी में सोवेगी। मैंने उसे अपनी छोटी वहन बना लिया है।'

'देवी और गोमती बहन नही हो सकती। नरपतिसिंह ने जरा अधिकार के स्वर मे कहा। फिर नरम होकर बोला—'अच्छा, देवी के मन में जैसा आवे, करें। देवी जिस पर कृपा करें, कर सकती हैं।' गोमती को सम्बोधन करते हुये उसने कहा—'गोमती बेटी, यहस्मरण रखना कि हमारी तुम्हारी देह मानवो की है और कुमुद कुमारी दुर्गा का अवतार है।'

'अवश्य।' गोमती ने उत्तर दिया।

भोजन के उपरान्त नरपतिसिंह मंदिर के एक बड़े कोठे में जा लेटा और तुरन्त सो गया। दूसरी ओर की एक कोठरी मे कुमुद और गोमती जा लेटी।

न मालूम आज कुमुद गोमती को क्यो गले लगा लेने की बार-बार अभिलाषा कर रही थी। आज की संध्या के पहले उसने कभी किसी को गले नही लगाया था। पीठ पर हाथ फेरा था, सिर पर कर-स्थापन किया था, वरदान और आशीर्वाद दिये थे। परन्तु दो स्त्रियाँ घण्टों तक जो वे-सिर-पैर की निरर्थक बाते करती हैं और फिर भी नही अघाती, इसका उसके जीवन में कभी अवसर न आया था।

गोमती थकी हुई थी, अङ्ग-अङ्ग चूर हो रहे थे, परंतु मन बहुत हल्का था और आँखों में नीद न थी। जीभ वार्तालाप के लिये लौंक-सी

रही थी। परस्पर की दूरी ने मुहर सी लगा रक्खी थी। कुमुद इस अवस्था को अवगत कर रही थी। एक स्त्री हृदय को दूसरी स्त्री हृदय की मूक भाषा समझने में देर न लगी।

जब दोनो को चुपचाप लेटे-लेटे आधी घड़ी बीत गई, कुमुद ने कहा—'गोमती !'

उसने उत्तर दिया—'मैं अभी सोई नही हूं। आप भी जाग रही है ?'

'फिर वही आप !' जी के उमड़े हुये किसी अज्ञात, अगम्य वेग को रोकते हुये हँसकर कुमुद बोली—'भाई, ऐसे काम नही चलेगा। इन दूर की बातो से अन्तर न बढाओ। क्या बहन कहने से तुम्हारे सिर कोई विपद् आती है ?'

कुमुद की हँसी मे हलकी पैंजनी की क्षीण खनक थी, परन्तु गोमती जरा विचलित-कम्पित स्वर मे बोली—'मैं ठाकुर की बेटी हूं, इसलिये नही डरती; वैसे देवी के मन्दिर मे और देवी के इतने निकट रहने पर किसी मनुष्य देहधारी मे साहस न हो सकता !'

'तुम्हारी जैसी तो मेरी भी देह है, गोमती ! क्या तुम मुझसे डरती हो ?'

'देवी, मैं किसी से नही डरती। परन्तु सिंहवाहनी दुर्गा का आदर किस तरह हृदय से दूर किया जा सकता है। लोग कहते हैं, आप रात को सिंह पर सवार होकर ससार भर का भ्रमण और दीन-दुखियो का कष्ट निवारण करती हैं।'

'गोमती, लोग और क्या-क्या कहते हैं ?' अलसाये हुये कण्ठ से कुमुद ने प्रश्न किया।

गोमती ने उत्तर दिया—'लोग कहते और विश्वास करते हैं और यह बात सच भी है कि दुर्गा रानी किसी प्राणी के कष्ट को रात्रि के अवसान पर उतनी ही मात्रा में नही रहने देती। प्रात:काल होते-होते कलियों को चिटक, फूलो को महक, हरियाली को दमक, अनाथो को

सनाथता, पीडितों को स्वास्थ्य और दलितों को आश्रय देती हैं—जैसा आज मुझे मिला।'

'गोमती, तुम पढी-लिखी हो।' कुमुद ने जरा हँसकर कहा—'इसलिये कविता-सी कह गई, परन्तु क्या वह नही जानती कि देवता का वास मूर्ति में है, मै तो दुर्गा की केवल पुजारिन हूं ?'

वह बोली—'मेरा भाग्य उदय होना चाहता है, इसलिये आप इतनी दयालु होकर इस तरह मुझसे बाते कर रही हैं। विनती यही है कि यह कृपा कभी कम न हो।

एक क्षण सोचकर कुमुद ने कहा—'पालर मे उस दिन की लडाई मै रोकना चाहती थी, परन्तु न रोक सकी। दुर्गाजी की यही इच्छा रही होगी। चाहते हुये भी मैं उस रक्त-पात को न रोक सकी और यहाँ आना पड़ा। इस पर भी गोमती तुम वास्तविक दुर्गा को भुलाकर मुझे दुर्गा कहती हो ? मैं तो केवल होम आदि करने वाली हूँ और यदि तुम मुझे ऐसा ही मानती हो, तो मुझे बहन कहलवाने में ही आनन्द है।'

गोमती ने कहा—'यदि ऐसा है, तो केवल अकेले मे बहन कह सकूँगी। सबके सामने कहने में मुझे भय लगेगा।'

'उस दिन युद्ध में क्या हुआ था।'

'दुर्गा ने जो चाहा, सो हुआ। अन्तर्यामिनी होकर भी आप यह प्रश्न करती हैं, यह केवल आपकी महत्ता है।'

'फिर भी तुम्हारे मुँह से सुनना चाहती हूं।'

गोमती ने जितना वृत्तान्त सुन रक्खा था, सुनाया। अपने विवाह से सम्बन्ध रखने वाली घटना नही कही।

कुमुद ने पूछा—'उस दिन तुम्हारी बारात आ रही थी, टीका कुशल-पूर्वक हो गया था या नही ?'

गोमती ने कोई उत्तर नही दिया। एक आह भर ली।

कुमुद ने कहा—'उधर के समाचार मुझे नही मिले। पूजार्चा मे इतनी संलग्न रही की पूछ नहीं पाया।'

रुद्ध स्वर मे गोमती ने कहा—'आपसे कोई बात छिपी थोडे ही रह सकती है। मैं क्या बतलाऊँ।

कुमुद ने सहानुभूति के साथ कहा—'तुम्हारे ही मुँह से सुनूँगी। सच मानो मुझे नही मालूम।'

कुमुद ने उस अंधेरी कोठरी मे यह नही देखा कि गोमती के कानो तक आँसू बह आये थे। प्रयत्न करके अपने को सम्भालकर गोमती ने उत्तर दिया—'मेरा भाग्य खोटा है, इसमें दुर्गा के आशीर्वाद को क्यो दोष दूँ ?' अपनी बारात के दूल्हा से सम्बन्ध रखने वाली शेष रण-कथा भी सुना दी। अन्त में बोली—'घायल राजा पालकी मे पडे हुये थे। वह बन्दनवारो के सामने ही रुक गये। मेरी ओर देखते ही उनके घाव पुलकित हो उठे। सह न सके। थम न सके, जैसे तलवार टूटकर दो टूक हो जाती है, उसी समय धराशाही हो गये ! मै पास भी न जा सकी।'

'फिर क्या हुआ ?' कुमुद ने सहानुभूतिमयी आतुरता के साथ पूछा—'फिर क्या हुआ गोमती ?'

'एक निठुर ठाकुर पास आकर बुरी-भली बाते कहने लगा। किसी ने उसे लोचनसिंह के नाम से सम्बोधन किया था।' गोमती ने कहा।

'लोचनसिह।' कुमुद ने कुछ सोचकर कहा—'यह नाम मुझे भी मालूम है। उस दिन की लडाई से इस नाम का कुछ सम्बन्ध है। कहे जाओ बहन, आगे क्या हुआ ?'

गोमती कहने लगी—'वह पत्थर का मनुष्य लोचनसिह उन्हे ठुकरा देना चाहता था। मेरे मन मे आया कि खड्ग लेकर उसे ललकारूँ और सिर काटकर फेक दूँ। इतने पर घोडे पर बैठे राजकुमार वहाँ आ गये।'

'राजकुमार !' जरा चकित होकर कुमुद बोली—'अच्छा फिर ?'

गोमती ने उत्तर दिया—'राजकुमार आ गये। उन्होने धीरे से उनके घायल शरीर को अपने घोड़े पर कस लिया और अपने डेरे पर ले गये। उनका नाम भूल गई हूं।'

'नाम कुञ्जरसिंह है।' कुमुद ने कहा, फिर तुरन्त जरा उपेक्षा के साथ बोली—'कुछ भी नाम सही, फिर वे सब कहाँ गये ?'

'लोचनसिंह ने अपना घोडा आपके मकान के सामने रोक लिया।'

'मेरे घर के सामने ?'

'हाँ, और काकाजू को पुकारा।'

'क्यो ? अच्छा फिर ?'

'वह पूजा करना चाहता था, परन्तु राजकुमार ने कहा—'आओ, मैं नही ठहरूँगा।' वह दुष्ट उन्हे अटकाये रखना चाहता था। फिर काकाजू के नाम से पुकार लगाई, कोई नही बोला। पडोस के पण्डितजी ने कहा—सब लोग दोपहर को ही कही चले गये। उसी समय मुझे भी मालूम हुआ कि काकाजू ने घर छोड दिया है।'

कुमुद ने ज़रा-सा खाँसा, एक क्षण बाद पूछा—'फिर वे सब लोग पालर में ही बने रहे या उसी रात चले गये ?'

गोमती ने उत्तर दिया—'पण्डितजी के जवाब देने पर राजकुमार घोडे की लगाम हाथ में थामे वही थोड़ी देर खड़े रहे, परन्तु पंडितजी घर से बाहर न निकले। डर गये थे। वह पाषाण-हृदय लोचनसिंह तब राजकुमार को वहाँ से जल्दी-जल्दी लिवा ले गया। सबेरे सुना, राजा अपने दल के साथ दलीपनगर चले गये।'

कई क्षण बाद कुमुद ने पूछा—'दूल्हा का कुशल समाचार मिल गया था ?'

जरा संकोच के साथ गोमती ने कहा—'दूसरे दिन खबर लगी थी कि राजकुमार, जिसका नाम आपने कुञ्जरसिंह बतलाया है, रातभर मरहम-पट्टी करते और दवा देते रहे। इससे आगे और कुछ नही सुना। आप तो राजकुमार को जानती होगी!'

'मैंने उनका वह नाम यों ही सुन लिया था।' कुमुद बोली—'अब सो जाओ, बहुत थकी हुई हो '

'अभी तो नीद नही आ रही है, सो जाऊँगी। आप सोये।'

'मै भी अभी उनींदी नही हुई हू। पालर का और क्या समाचार है?'

'गॉव सुनसान हो गया है। केवल चलने-फिरने से अशक्त लोग और थोड़े से किसान वहॉ रह गये हैं। ,मुसलमानो की चढाई होने वाली है। सुनते हैं, वे लोग देश को उजाड़ देगे। कुछ लोग कहते हैं, वे मन्दिर का अपमान करने की भी चेष्टा करेंगे।'

क्षुब्ध स्वर में कुमुद ने कहा, मानो कई तार एक साथ झकार मार गये हो—'क्या सब क्षत्रिय उस समय पालर की झील या बेतवा की धार मे डूबकर प्राण बचा ले जायेगे? क्या बडनगर और दलीपनगर के हिन्दू उस समय सोते ही रहेगे?'

गोमती जरा भयभीत हो गई, पर एक क्षण बाद दृढता के साथ बोली—'यद्यपि कुछ लोगो ने वहाँ जाकर फरियाद भी की थी और सुनते हैं, दलीपनगर के राजा राजधानी छोडकर पंचनद की ओर चले गये हैं।'

[१८]

राजा नायकसिंह अपने दल के साथ एक दिन पंचनद पहुँच गये।

पंचनद, जिसे पचनदा भी कहते हैं, बुन्देलखण्ड का एक विशेष स्थान है। यमुना, चंवल, सिन्धु, पहूज और कुमारी, ये पांच नदियाँ उस जगह आकर मिली हैं। स्थान की विस्तृत भयानकता उसकी विशाल सुन्दरता से होड लगाती है। बालू, पानी और हरियाली का यह संगम वैभव, भय और सौंदर्य के विचित्र मिश्रण की रचना करता है।

इस संगम के करीब एक गढी थी। राजा उसी मे जाकर ठहरे। सध्या के पहले ही डेरे पड़ गये।

आज तवियत कुछ ज्यादा खराव थी, परन्तु वातचीत करने का चाव अधिक था। कुञ्जरसिंह को बुलाकर पूछा—'लोचनसिंह कहाँ हैं?' और लोचनसिंह के उपस्थित होने पर प्रश्न किया—'कुञ्जरसिंह कहाँ हैं?'

जितने प्रमुख लोग गढ़ी में राजा के साथ आये थे, सब जानते थे कि राजा के साथ यहाँ आने में गलती की है। मार्ग से भटकी हुई इस दूर की गढ़ी मे पहुचकर किसी को भी हर्ष नही हुआ। केनल लोचनसिंह ने ठण्डा पानी पीकर, घोड़े की पीठ ठोकते-ठोकते सोचा कि आज रात-भर अच्छी तरह सोऊँगा। कालपी पचनद से दूर नही थी। कालपी के फौज-दार से किसी तत्काल संकट की आशंका न थी। उन दिनो मिलाप करते-करते छुरी चल पड़ती थी और छुरी चलते-चलते मिलाप हो जाता था। पञ्चनद दलीपनगर की सीमा के भीतर था। हकीम द्वारा फौजदार की शांति-वृत्ति का पता लग चुका था और दलीपनगर की सेना भी निर्बल न थी। जनार्दन मेल और लड़ाई दोनों के लिये तैयार था। कुछ लोग सोचते थे कि दलीपनगर छोड़ आने मे राज्य की हत्या का-सा काम किया, परन्तु उस परिस्थिति मे राजा की आज्ञा का उल्लंघन करना असंभव था। इसलिये ऐसे लोग पछतावा तो प्रकट न करते थे, परन्तु राजा के लिये चिन्तित दिखाई पडते थे। ऐसे लोगों मे केवल जनार्दन कम से कम ऊपर से चिंतित नही दिखाई पड़ता था।

सभी अगुओ के मन में एक बात ही थी—राजा की समाप्ति कब शीघ्रतापूर्वक हो और कब राजसत्ता किसी अच्छे आदमी के हाथ मे सुव्यवस्था का संग्रह कर दे। केवल देवीसिंह राजा के निकटवर्तियो मे ऐसा था, जो भगवान् से राजा के स्वास्थ्य-लाभ के लिये दिन मे एक-आध बार प्रार्थना कर लेता था।

षड्यन्त्र खूब सरगर्मी पर थे। बिना किसी लाज-सकोच के राजा के पलङ्ग से चार हाथ के ही फासले पर रचित षड्यन्त्रो की काना-फूसी और षड्यन्त्र-रचना की बहस होने लगी।

लोगो को यह दिखलाई पड रहा था कि सैनिको का विश्वास लोचनसिंह के बल-विक्रम पर और जनार्दन की दक्षता तथा कुशलता पर है। जनार्दन अपनी आर्थिक समर्थता और व्यवहार-पटुता के कारण पंचनद पर सेना के विश्वास का स्तम्भ-सा हो गया। खुल्लम-खुल्ला कोई रानी उसके खिलाफ कुछ नही कह रही थी। लोचनसिंह के पास न कोई षड्यन्त्र था और न कोई षड्यन्त्रकारी दल। षड्यन्त्र की सृष्टि के लायक कुञ्जरसिंह मे न तो यथेष्ट मानसिक चपलता थी, और न किसी षड्यन्त्र के प्रबल नायकत्व के लिये पूरी नैतिकहीनता। भीतर महलो में षड्यत्र बनते और बिगडते थे। सुलझाई हुई उलझने और उलझती जाती थी। अच्छी-अच्छी योजनाये भी तैयार हो जाती थी, परन्तु उनके लिये योग्य संचालक की अटक थी।

दो दिन ठहरने के बाद बड़ी रानी ने कुञ्जरसिंह को बुलाकर प्रस्ताव किया कि दलीपनगर तुरन्त लौट चलो। यह प्रस्ताव कथन मे जितना सहज था, व्यवहार मे उतना नही।

कुञ्जर ने कहा—'यह असम्भव है। काकाजू की मर्जी नही है। यदि हमने सैनिकों से कहा और उन्होने न माना, तो तिल धरने को भी स्थान न रहेगा।'

'लोचनसिंह से कहो कि मेरी आज्ञा है। राजा को इस समय भले-बुरे का चेत ही नही।'

'मैंने लोचनसिंह का रुख भी परख लिया है। उनके जी मे किसी ने यह बात विठला दी है कि महाराज इस स्थान को कदापि न छोड़ेंगे और यही स्वस्थ ह ।यँने।'

'किसने ?'

'हकीमजी ने।'

'आगा हैदर के लड़के ने ?'

'हाँ, महाराज।'

'लोचनसिंह को बुला दो।' एक क्षण सोचकर फिर रानी वोली—'मत बुलाओ उस लट्ठ को। वह गँवार रक्त, तलवार और सिर के सिवा हमारी सहायता की कोई और बात न कर सकेगा कुञ्जरसिंह।'

'आज्ञा।'

'समय आ गया है।'

'यह तो मैं भी देख रहा हूँ।'

'तुम अन्धे हो और अपाहिज भी।'

कुञ्जरसिंह कान तक लाल हो गया, परन्तु चुप रहा। रानी वोली—'तुम्हारे साथ कोई नही दिखलाई देता और मेरे पक्ष का भी इस जङ्गल में कोई नही। मुझे इसी समय दलीपनगर पहुँचा सकते हो ?'

'प्रयत्न करता हूं।' उत्तर मिला।

'कुञ्जरसिह वहाँ से जाने को ही हुआ था कि रामदयाल रोनी सूरत वनाये आया, वोला—'ककोजू—'

'हाँ, वोल कह क्यो रुक गया ?' रानी ने कुछ कठोरता के साथ पूछा।

'ककोजू।' रामदयाल ने कहा—'जमनाजी से रज और गंगाजल मँगाने का हुकुम हुआ है। चलन होवैं।'

'क्या दशा वहुत विगड़ गई है ?' रानी ने कंपित स्वर में पूछा।

'हां महाराज।' कह कर रामदयाल छोटी रानी के पास चला गया।

उसी समय जनार्दन वहाँ आया। रानी आड मे हो गई। उत्तर देने वाली दासी, जिसे जवाबवाली कहते हैं, रानी के कहलवाने से बोली-'कहिये, महाराज का हाल अब कैसा है ?'

'पहले से बहुत अच्छा है।' जनार्दन ने उत्तर दिया—'उन्हे खूब चेत है। परन्तु अन्त समय दूर नही मालूम होता। दीप-शिखा की अन्तिम लौ की तरह वह जगमगाहट है। बार-बार देवीसिंह का नाम ले रहे है। वह महाराज के पास ही बैठे हैं। दावात-कलम मँगाई थी।

कुञ्जरसिंह ऐसे हिला, जैसे किसी ने यकायक झकझोर डाला हो। बोला—'दावात-क़लम किस लिये मँगाई थी ?'

स्पष्टता के साथ जनार्दन ने जवाब दिया—'कदाचित् अपना अंतिम आदेश अंकित करना चाहते हैं। दावात-कलम पहुच गई है, कागज पर कुछ लिख भी चुके हो।'

'छोटी महारानी कहाँ है ?' रानी ने तुरन्त पुछवाया।

उत्तर दिया—'उन्हे भी बुलवाया गया है। आप भी यथासभव शीघ्र चले।'

कुञ्जरसिंह सन्न होकर बैठ गया। जनार्दन चला गया।

[१६]

उसी समय पचनद की छावनी मे हकीम आगा हैदर आ गया। आते ही उसने जनार्दन से कहा—'यहाँ आकर वहुत बुरा किया। क्या राजा को मारने के लिये लाये थे ?'

'नही, उनकी इच्छा उन्हे यहाँ ले आई। अब वह जा रहे हैं।'

'फिर दलीपनगर ?'

'नही, गोलोक !'

'ऐसी जल्दी ! उफ !'

'यह सब पीछे सोचियेगा। राजा के पास तुरन्त चलिये।'

दोनो जा पहुचे। लोचनसिंह दवा-दारू में व्यस्त था। उसने पंचनद पर आने के पश्चात् हर्षपूर्वक इस कर्तव्य को स्वीकार कर लिया। एक-एक युद्ध के लड़ने-जीतने में होता होगा। और वह इस कार्य मे इतना संलग्न था कि उसे इधर-उधर क्या हो रहा है, इसका कुछ भी चेत न था। इतना विश्वास उसे अवश्य था कि राजा का औषधोपचार सावधानी के साथ हो रहा है। देवीसिंह राजा के पास बैठा उनकी देख-भाल कर रहा था। छोटी रानी एक ओर पर्दे मे बैठी हुई थी।

सकेत मे आगा हैदर ने अपने लड़के से राजा की दशा पूछी। उसने सिर हिलाकर निराशा-सूचक सकेत किया। आगा हैदर ने पास जाकर देखा।

राजा क्षीण स्वर मे बोले—'हकीम जी, कहाँ थे ?'

काँपते हुए गले से आगा हैदर ने कहा—'कदमो मे।'

'आज सब पीडा खत्म होती है हकीमजी।' राजा सिसकते हुये बोले।

रोते हुए आगा हैदर ने कहा—'हुजूर की ऐसी अच्छी तबियत वहुत दिनो से देखी गई थी। आशा होती है······'

राजा ने हाथ हिलाकर सिर पर रख लिया।

'हकीमजी कालपी गये थे महाराज, वह अलीमर्दान को किसी गड्ढे में खपाने की चिंता में हैं।' लोचनसिंह ने राजा को शायद प्रसन्न करने के लिये कहा।

आगा हैदर ने हाथ जोडकर लोचनसिंह को वर्जित किया।

'हकीमजी', लोचनसिह ने धीरे से कहा—'क्षत्रिय न तो रण की मृत्यु से डरता है और न घर की मृत्यु से।'

इतने में एक ओर पर्दे मे बड़ी रानी भी आ बैठी।

रामदयाल ने छोटी रानी के पास से आकर जनार्दन से जरा ज़ोर से कहा—'आप सब लोग बाहर हो जायँ कक्कोजू दर्शन करना चहती हैं।'

राजा ने यह सब वार्ता कुछ सुन ली, कुछ समझ ली। टूटे हुये स्वर मे बोले—'तब सब लोग यही समझ रहे हैं कि मै मरने को हूँ। कुञ्जरसिह कहाँ हैं?'

कुञ्जरसिंह तुरन्त हाथ जोड़कर सामने खड़ा हो गया। राजा की आँखो मे आँसू आ गये और गला रुँध गया। कुछ कहने को हुये, न कह पाये। कुञ्जरसिह की आँखे भी डबडबा आईं।

जनार्दन इस समय बहुत सतर्क था, दृष्टि तुली हुई और सारी देह कुछ करने के लिये सधी हुई। वह ऐसा जान पड़ता था, जैसे किसी महत्वपूर्ण नाटक का सूत्रधार हो। उसने लोचनसिंह की ओर देखते हुए कहा—'इस समय महाराज को बात करने में जितना कम कष्ट हो, हम अपना उतना ही बडा सौभाग्य समझें।'

लोचनसिंह ने कुञ्जरसिंह के पास जाकर कहा—'राजकुमार जरा इधर आइये।' इच्छा-विरुद्ध कुञ्जरसिह दूसरी ओर दो-तीन कदम के फासले पर हट गया।

जनार्दन दावात-कलम और कागज लेकर राजा के पास जाकर झुक गया। राजा असाधारण चीत्कार के साथ बोले—'मुझे क्या तुम सबने पागल समझ लिया है?' और तुरन्त अचेत हो गये। रामदयाल झपटकर राजा के पास आना चाहता था, लोचनसिंह ने रोक लिया।

कुञ्जरसिंह ने हकीम से कहा—'आप देख रहे हैं कि आपकी आँखो के सामने यह क्या हो रहा है?'

'मेरी समझ में कुछ नही आता।' हकीमजी ने आँखे मलते हुये कहा।

'यह दुधारा खाँड़ा भी आज किसी लोभ मे आ गया है।' लोचनसिंह की ओर इङ्गित करके कुञ्जरसिंह ने दबे गले से कहा और दृढतापूर्वक अपने पिता के पैताने जाकर खड़ा हो गया।

लोचनसिंह धीरे से बोला—'महाराज जिसे चाहेगे, उसे लिख देगे। किसी को उनसे अपनी माँग-चूँग नही करनी चाहिये।'

एक क्षण बाद राजा को होश आता देखकर जनार्दन ने ज़ोर से कहा—'कलम-दावात मँगवाई थी, सो आ गई है। देवीसिंह के लिये आदेश हुआ, वह यहा उपस्थित हैं।'

'मुझे किस लिये ?' एक कोने से देवीसिंह ने पूछा।

जनार्दन ने आग्रह के ऊँचे स्वर में कहा—'अब आज्ञा हो जाय।'

राजा ने कुछ मुह ही मुह मे कहा, परन्तु सुनाई नही पड़ा।

जनार्दन ने मानो कुछ सुना हो। बोला—'बहुत अच्छा महाराज, यमुनाजी की रज और गंगाजल ये हैं।' वह सामग्री पास ही रक्खी थी।

रामदयाल ने छोटी रानी के पर्दे के पास से चिल्लाकर कहा—'हकीमजी, यहां जल्दी आइये।'

हकीम राजा को छोड़कर नही गया। तब रामदयाल चिल्लाया—'कुजरसिंह राजा आप ही इधर तक चले आओ।'

जैसे किसी ने ढकेल दिया हो, उसी तरह कुञ्जरसिंह छोटी रानी के पर्दे के पास पहुचा। छोटी रानी ने सबके सुनने लायक स्वर मे कहा—'भकुये बने खडे क्या कर रहे हो ? तुम राजा के कुवर हो, क्यों अपना हक मिटने देते हो ? जाओ, राजा के पास अपना हक़ लिखवा लो।'

लोचनसिंह बोला—'राजा जिसे देंगे, वही पावेगा। हक ज़बरदस्ती नही लिखवाया जा सकता।'

कुजरसिंह राजा के पलंग की ओर बढ़ा। इतने मे जनार्दन ने कहा—'महाराज देवीसिंह का नाम ले रहे हैं। सुन लो चामुडराय

लोचनसिंह, सुन लो हकीमजी, सुन लो कुंजरसिंह राजा, सुन लो कक्कोजू !' और सब चुप रहे ।

लोचनसिंह बोला—'आप झूठ थोड़े ही कह रहे हैं ।'

राजा ने वास्तव मे देवीसिंह का नाम दो-तीन बार उच्चारण किया था । परन्तु क्यो किया था, इस बात को सिवा जनार्दन के और कोई नही बतला सकता था ।

जनार्दन ने और किसी ओर ध्यान दिये बिना ही खूब चिल्लाकर राजा से कहा—'तो महाराज देवीसिंह को राज्य देते हैं ?'

राजा ने केवल 'देवीसिंह' का नाम लेकर उत्तर दिया और जरा देर तक सिर कंपाते रहे । होठो पर कुछ स्पष्ट शब्द हिले, परन्तु सुनाई कुछ भी नही पड़ा । और लोगो के मन मे सन्देह जाग्रत हुआ हो या न हुआ हो, परन्तु लोचनसिंह के मन में कोई सशय न रहा ।

जनार्दन ने राजा के हाथ मे कलम पकड़ाकर कहा,—'तो लिख दीजिये इस कागज पर कि देवीसिंह राजा हुये ।' राजा का हाथ अशक्त था । किंतु किसी क्रिया के लिये जरा हिल उठा । सबने देखा । जनार्दन ने तुरन्त उस हिलते हुये हाथ को अपने हाथ मे पकड़कर कागज़ पर लिखवा लिया—देवीसिंह राजा हुये । उसके नीचे राजा की सही भी करा ली ।

जनार्दन ने देवीसिंह को तुरन्त इशारे से पास बुला लिया । बोला—'महाराज अपने हाथ से तिलक भी कर दें ।' और गङ्गाजल से राजा के अँगूठे को भिगोकर अपने हाथ से हाथ थामे हुये जनार्दन ने देवीसिंह का मस्तक अभिषिक्त करा दिया ।

लोचनसिंह से कहा—'तोपे दगवा दो ।'

हकीम बोला—'कालपी खबर पहुचने मे देर न लगेगी । इसी जगह चढाई हो जायगी ।'

'होवे ।' जनार्दन वेग के साथ बोला—'थोडी देर मे संसार भर जान जायगा, अभिषेक गुपचुप नही होगा, खुल्लमखुल्ला होगा ।'

लोचनसिंह बाहर चला गया ।

रामदयाल चिल्लाया—'कक्कोजू की मर्जी है कि यह सब जाल है । महाराज कुछ सुन या समझ नही सकते । राजा कुन्जरसिंह महाराज हो सकते हैं और किसी का हक नही है ।'

बडी रानी ने कहलवाया—पहले भलीभाँति जाँच कर ली जाय कि महाराज ने अपने चेत मे यह आदेश लिखा है या नही । व्यर्थ का बखेडा नही करना चाहिये ।

बडी रानी की ओर हाथ बाँधकर जनार्दन बोला—'बड़ी कक्कोजू के जानने मे आवे कि राज्य कुँवर देवीसिंह को ही दिया गया है ।'

इतने में राजा कछ अधिक कम्पित हुये । जरा जोर से बोले—'कुन्जर—सिंह ।'

'मेरा नाम ले रहे हैं ।' कुन्जरसिंह ने अबकी बार चीखकर कहा—'मुझे राज्य दे रहे हैं ।'

जनार्दन ने कहा—'कभी नही, राजा अब अचेत हैं ।'

राजा ने फिर अस्थिर कण्ठ से कहा—'देवीसिंह ।'

'राज्य मुझे दिया है ।' देवीसिंह कठोर स्वर मे बोला ।

कुञ्जरसिंह राजा के पास आ गया । बड़ी रानी ने निवारण करवाया । छोटी रानी ने बढावा दिलवाया । रामदयाल कुञ्जरसिंह के पास खड़ा हो गया ।

'धायँ, धायँ, धायँ ।' उधर तोपो का शब्द हुआ ।

'महाराज देवीसिंह की जय !' तुमुल स्वर मे कोठी के बाहर सिपाही चिल्लाये ।

इतने मे राजा ने क्षीण स्वर में' कुञ्जरसिंह !' फिर कहा । कुञ्जरसिंह और रामदयाल ने सुना । शायद जनार्दन ने भी ।

कुन्जरसिंह बोला—'अब भी छल और धूर्तता करते ही चले जाओगे ? मेरा नाम ले रहे हैं ।'

'नही ।' देवीसिंह ने कहा ।

'नही ।' जनार्दन बोला ।

'आगा हैदर चुपचाप एक कोने में खडा था ।

छोटी रानी पर्दे से चिल्ला उठी—'कायर, डरपोक, क्या राज्य ऐसे लिया जाता है ?' पर्दा ज़ोर से हिला, मानो रानी सबके सामने किसी भयानक वेश में आने वाली हैं । रामदयाल लपककर दरवाजे पर जा डटा।

कुञ्जरसिह ने तलवार खीच ली । इतने में लोचनसिंह आ गया । बोला—'यह क्या है कुजरसिह राजा ?'

'ये लोग मुझे अब अपने राज्य से वचित करना चाहते हैं, दाऊजू । काकाजू ने अभी-अभी नाम लेकर मुझे राज्य दिया है ।'

'तलवार म्यान में राजा ।' लोचनसिंह ने कुञ्जरसिंह के पास जाकर डपटकर कहा—'जो कुछ महाराज ने किया है, वह सब मेरे देखते सुनते हुआ है ।'

'धोखा है ।' रामदयाल चिल्लाकर छोटी रानी के दरवाजे पर डटे हुये बोला ।

राजा ऊर्ध्व-श्वास लेने लगे ।

हकीम गरजकर बोला—'महाराज को शाति के साथ परमधाम जाने दीजिये । अब एक-दो क्षण के और हैं, पीछे जिसे जो दिखाई दे, कर लेना ।'

राजा की अवस्था ने उपस्थित लोगो के बढते हुये क्रोध पर छाप-सी लगा दी ।

राजा को भूमि पर शय्या दे दी गई । मुँह में गङ्गाजल डाल दिया गया ।

तोपो और जय-जयकार के नाद मे राजा नायकसिंह की ससार-यात्रा समाप्त हो गई ।

[२०]

बहुत सपाटे के साथ लोग पंचनद से दलीपनगर लौट आये, केवल कुन्जरसिंह पीछे रह गया। राज्य-भर ने पुरानी रीति के अनुसार सूतक मनाया, बाल मुड़वाये, परन्तु वास्तव में कोई दुःखी था या नहीं, यह बतलाना कठिन है।

असफल प्रयत्न के पीछे पडना बड़ी रानी की प्रकृति मे न था। एक बार मनोरथ विफल होते ही पुनः प्रयत्न करना उनके मानसिक संगठन के बाहर की बात थी। छोटी रानी को देवीसिंह का राजतिलक बहुत बुरा लगा। वह सती नहीं हुई। यह देखकर और शायद देवीसिंह के मनाने पर बड़ी रानी भी सती नहीं हुई।

जनार्दन प्रधान मंत्री घोषित कर दिया गया और लोचनसिह प्रधान सेनापति। इसी बीच में दिल्ली से जो समाचार अलीमर्दान को मिला, उससे उसकी बहुत-सी चिंताएँ दूर हो गई। उसने दलीपनगर पर आक्रमण करना निश्चित कर लिया। यदि अलीमर्दान को वह समाचार कुछ दिन पहले मिल गया होता, तो शायद वह पचनद पर ही युद्ध ठानने की चेष्टा करता। परन्तु इसकी सम्भावना थी बहुत कम, क्योकि बहुत दूर न होते हुये कालपी से पंचनद पर तोपों का घसीट ले जाना काफी समय ले लेता।

अब कालपी मे दलीपनगर के ऊपर चढाई करने के लिये तैयारी होने लगी। दलीपनगर में इसकी खबरे आने लगी।

थोड़े दिनों बाद वह सेना कालपी से चल पड़ी।

उधर दलीपनगर में भी खूब तत्परता के साथ जनार्दन और लोचन-सिह द्वारा सैन्य-संगठन होने लगा। प्रजा मे विश्वास का सचार हुआ। देवीसिह इस तरह राजसिंहासन पर बैठने लगा, जैसे दरिद्रता या सामाजिक स्थिति की लघुता ने कभी उनका सम्पर्क ही न किया हो।

उसी समय समाचार मिला कि कुञ्जरसिंह ने कुछ सरदारो को साथ लेकर सिंध तटस्थ सिंहगढ पर कब्जा करके विद्रोह का झण्डा खड़ा कर

दिया है। जनार्दन ने यह भी सुना कि छोटी रानी कुञ्जरसिंह को उभाड़ने और द्रव्य आदि से सहायता करने में कोई सकोच नही कर रही हैं। इस पर भी नये राजा ने उनके साथ कोई बुरा बर्ताव करने का लक्षण नहीं दिखलाया।

परन्तु जनार्दन से सहन नही हुआ। बुलाकर रामदयाल से कहा—'तुम्हारी सब चाले हमें विदित हैं। कुञ्जरसिंह राजा अपने किये का फल पायेंगे। परन्तु तुम उनसे अपना कोई सम्बन्ध मत रखो, नही तो किसी दिन सिर से हाथ धो बैठोगे।'

'मैंने क्या किया है पडित जी ?' रामदयाल ने पूछा।

'तुमने कुञ्जरसिंह के पास रुपया-पैसा भेजा है। तुम यहाँ के भेद कुञ्जरसिंह के पास भेजते रहते हो।'

'मैंने यह कुछ भी नही किया।'

'छोटी रानी और तुम यह सब नही कर रहे हो ?'

'वह करती होगी, महारानी हैं, मैं तो नौकर-चाकर हू।'

'खाल खिचवाकर भुस भरवा दिया जायगा, जो किसी शेखी में भूले हो।'

'किसकी खाल ? रानी की ?'

'मैंने यह तो नही कहा, परन्तु यदि रानी पृथ्वी को सिर पर उठायेगी, तो क्या वह न्याय से बच जायंगी ? धैर्य की सीमा समाप्त हो चुकी है।'

'मेरा कोई अपराध नही।' कहकर रामदयाल चला गया।

जनार्दन दूसरे कामो मे लग गया और इस वार्तालाप को भूल गया। खबर लगी कि अलीमर्दान सेना लेकर राज्य की सीमा के पास से होता हुआ बढता आ रहा है, परन्तु सीमा के भीतर प्रवेश नही किया, और न राज्य की किसी प्रजा को सताया ही है। शायद कही और जा रहा हो। कम-से-कम अपनी तरफ से कारण न उपस्थित किया जाय। ऐसी

दशा में उससे लड़ने के लिये सेना भेजना राजा देवीसिंह ने उचित नहीं समझा, परन्तु अपने यहाँ चौकसी रक्खी। कुञ्जरसिंह को सिंहगढ़ से निकाल भगाने के लिये कुछ सेना उस ओर रवाना कर दी। कुञ्जरसिंह अपनी छोटी-सी सेना के साथ सिंहगढ में घेर लिया गया। सिंधु नदी साँप की तरह कतराती हुई इस किले के नीचे से बहती चली गई है। नदी के उस ओर भयानक जगल था। किले में खाद्य-सामग्री थोड़े दिनों के लिये थी। घेरा प्रचंडता और निष्ठुरता के साथ पड़ा। किले से बाहर निकलकर लडना आत्मघात से भी अधिक बुरा था। किले की दीवारों पर तोपें निरतर गोले फेकने लगी। बचने का कोई उपाय न देखकर जो कुछ उसे अनिवार्य दिखाई पडा, वही निश्चय किया, अर्थात् लड़ते-लड़ते मर जाना।

[२१]

मौका मिलते ही रामदयाल ने छोटी रानी को जनार्दन द्वारा अपमानित होने की बात सुना दी। रानी के क्रोध का पार न रहा। बोली—'मै तब अन्नजल ग्रहण करूगी, जब जनार्दन का सिर काटकर मेरे पास ले आवेगा।'

रामदयाल को विस्मय हुआ, वह रानी के हठी स्वभाव को जनता था। उसकी यह कल्पना न थी कि बात इतनी बढ़ जायगी। बोला—'अभी काकाजू की तेरही नही हुई है, जब हो जायगी, तब इस काम के होने में देर नही लगेगी।'

'तेरही होने के दो-तीन दिन रह गये हैं। मैं तब तक बिना अन्न-जल के रहूँगी।'

'ऐसा न करे महाराज, यदि शरीर को कुछ क्षति पहुची, तो जो कुछ थोड़ी-सी आशा है, वह भी नष्ट हो जायगी।'

'यदि जनार्दन मार डाला गया, तो मानो राज्य ही प्राप्त हो गया। उसी के प्रपञ्च से आज मैं इस दशा को पहुंची हूं। उसी के षडयन्त्रो से राज्याधिकार से वर्जित रही, उसी की धूर्तता के कारण सती न हो पाई। बोल, तू उसका सिर काट सकेगा ?'

'मैं आज्ञा-पालन से कभी न हिचकूंगा।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'फिर चाहे चरणो की सेवा मे मुझे अपने प्राण भले ही उत्सर्ग करने पड़ें।'

'तब ठीक है।' रानी ने ज़रा सन्तोष के साथ कहा—'परन्तु अन्न-जल तभी ग्रहण करूँगी।'

रामदयाल ने विषयांतर के प्रयोजन से कहा—'कालपी से अलीमर्दान की सेना आ रही है।'

'आती होगी; मुझे उसकी कोई चिंता नही।'

'इधर से सिंहगढ की ओर सेना भेजी गई है। बहुत-सी तोपें भी गई हैं। जनार्दन को इस समय अलीमर्दान इतना बड़ा शत्रु नही जान पड़ रहा है, जितना कुञ्जरसिंह राजा।'

रानी ने चकित होकर पूछा—'कुञ्जरसिंह को समाचार भेज दिया या नही ?'

उत्तर दिया—'कड़ा पहरा बिठलाया गया है। गुप्तचर वेश बदलकर घूम रहे हैं। वहाँ जाने के लिये मेरे सिवा और कोई नही है।'

रानी बोली—'तुम्हारे चले जाने से यहाँ मेरे निकट कोई विश्वस्त आदमी नही रहेगा। तुम किसी तरह उनके पास यह समाचार पहुँचा दो कि सिंहगढ की रक्षा के लिये अधिक मनुष्य एकत्र कर लो, तब तक मैं अन्य सरदारों को ठीक करती हूँ।'

'परन्तु दूसरा काम भी मेरे सुपुर्द किया गया है।' रामदयाल ने बनावटी सकोच के साथ कहा।

छोटी रानी गये-गुजरे पक्ष के लिये हार्दिक अभिलाषा तक का बलिदान कर डालने वालो के स्वभाव की थी। बोली—'अच्छा, जनार्दन का शीश काटने के लिये एक सप्ताह का समय देती हूँ। एक सप्ताह के पश्चात् मेरा व्रत आरम्भ हो जायगा। अभी स्थगित किये देती हूं। जल्दी कर।'

सिर खुजलाते हुये अत्यन्त दीनतापूर्वक रामदयाल ने कहा—'सेना को सिंहगढ़ की ओर गये हुये देर हो गई है। बहुत तेज़ घोड़े की सवारी से ही इस सेना से पहले सिंहगढ़ पहुंचा जा सकता है। इधर जनार्दन की हम लोगो पर बडी पैनी आँख है। कोई अन्य विश्वसनीय आदमी हाथ में नही।'

'अच्छा, मैं पुरुष वेश मे सिंहगढ़ जाती हूँ।' रानी ने तमककर कठिनाइयों का निराकरण किया—'देखें, मेरा कोई क्या करता है ?'

परन्तु धीरे से रामदयाल ने कहा—'महाराज, इस तरह अपने महल को छोड़कर स्वयं देश-निष्कासित होने से कुञ्जरसिंह राजा को कोई सहायता आपके द्वारा न मिलेगी और निश्चित स्थान से अनिश्चित स्थान मे भटकने की नई कठिनाई का भी सामना करना पड़ेगा।'

रानी की आँख से चिनगारी छूट पड़ी। 'मैं दलीपनगर के इस बिल में चूहे की मौत नहीं मरूँगी।' रानी ने कहा—'बडी की तरह नही हूँ कि ऐरो-गैरो का उस पवित्र सिंहासन पर बैठना सह लूँ। घोडा तैयार करवा। हथियार और कवच ला।'

रामदयाल आज्ञा-पालन के लिये चला, फिर लौटकर हाथ बाँधकर खडा हो गया।

रानी डपटकर बोली—'क्या मैं ही तेरी खाल खीचूँ? जानता है क्षत्रिय-कन्या हूँ, अपने हाथ से भी घोड़े पर जीन कस सकती हूँ।'

'महाराजा।' रामदयाल बड़बडाया।

रानी ने अपने कोषागार से तलवार, ढाल और दो पिस्तोले निकाल ली। मुस्कराकर कहा—जैसे सॉवन की अँधेरी रात में बादलो के भीतर बिजली की एक रेखा थिरक गई हो—'तुझे हथियार उठा लाने का प्रयत्न न करना पडेगा। घोड़ा कस सकेगा?'

'महाराज।' रामदयाल ने कम्पित स्वर में कहा—'मैं भी साथ चलूँगा। यदि सर्वनाश ही होना है, तो हो। नही तो पीछे मेरी लाश को किसी घूरे पर गीध और गीदड़ नोचेंगे।'

रानी थककर चौकी की तकिया के सहारे बैठ गईं।

एक क्षण बाद पूछा—'बोल, क्या कहता है?'

'एक उपाय है। आज्ञा हो, तो निवेदन करूँ?'

'कहता क्यो नही मूर्ख। क्या ताम्रपत्र पर खुदवाकर आज्ञा दूँ?'

रामदयाल ने स्थिरता के साथ उत्तर दिया—'अलीमर्दान की सेना दलीपनगर पर आक्रमण करने आ रही है। अभी दूर है, परन्तु थोडे दिन में अवश्य ही निकट आ जायगी। जनार्दन उस सेना से युद्ध करने की तैयारी कर चुका है। लडाई अवश्य होगी। सधि के लिये कोई गुंजायश नही रही। हो भी, तो कोई चिन्ता नही।'

'यह सब क्या पहेली है रामदयाल?' रानी ने झुँझलाकर पूछा—'सीधी तरह कह डाल, जो कुछ कहना हो।'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'अन्नदाता, अलीमर्दान ने अपने राज्य का कुछ नही बिगाड़ा था। लोचनसिंह दाऊजी ने नाहक उसकी फौज के एक सरदार को मार डाला। यदि वह उसका बदला लेने के लिये आ रहा है, तो कोई आश्चर्य की बात नही। मंदिर और दुर्गाजी के अपमान की बात बिलकुल बनावटी है। अलीमर्दान को केवल रुपये से गरज़ है।'

रानी उठ खड़ी हुई। आँखे जल रही थी, परंतु धीमे स्वर में बोली—'देख रामदयाल, यदि तू पागल हो गया है, तो तेरी कोई दवा-दारू न होगी। मैं एक ही वार मे तेरा सब रोग बहा दूँगी। जनार्दन का मद दूसरे वार में शांत हो जायगा; फिर यदि यह राज्य अलीमर्दान को मर्द डाले, तो चिंता नही और यदि वह इसे, तो भी चिंता नहीं। यदि तेरी बात समाप्त हो गई हो और तू अचेत न हो, तो तुरंत घोड़ा कस ले।'

रामदयाल वहाँ से नही टला। शीघ्रता-पूर्वक बोला—'कई बार दिल्ली के बादशाहों का साथ इस राज्य ने दिया है। अबकी बार दिल्ली के सरदार से यदि सहायता ली जाय, तो क्या बुराई है?'

रानी बैठ गई, सोचने लगी। सोचती रही।

रामदयाल बीच में बोला—'अलीमर्दान से बड़नगरवाले नही लड़ रहे हैं, विराटा का दाँगी राजा नही लड़ रहा है, दलीपनगर को ही क्या पड़ी है, जो व्यर्थ का बैर बिसावे? उसकी सहायता से यदि आप या कुञ्जरसिंह राजा सिंहासन पा सकें, तो कोई अनुचित बात नही।'

रानी ने थोड़ी देर में बहुत थके हुये स्वर में कहा—'तब कुञ्जरसिंह के पास न जाकर अलीमर्दान के पास जा। मेरी राखी लेता जा। यदि वह मंदिर तोड़ने के लिये आया हो, तो बिना कोई बातचीत किये तुरंत लौट आना। फिर मुझे सिवा जनार्दन के सिर के और कुछ न चाहिये। उस सिर को घूरे पर फेंककर सती हो जाऊँगी।'

[२२]

कुछ दिन पीछे बिराटा मे भी खबर पहुची कि कालपी के सूबेदार अलीमर्दान की सेना पालर मे पहुच गई है। मंदिर तोड़कर नष्ट कर दिया है और कुमुद को लक्ष्य करके दलीपनगर पर आक्रमण करने वाली है। यह समाचार वहाँ पहले ही पहुच गया था कि दलीपनगर का राज्य किसी एक अप्रसिद्ध, दरिद्र ठाकुर देवीसिंह को मिल गया है। किस तरह मिला, यह बात भी नाना रूप धारण करके वहाँ पहुची थी।

बिराटा छोटा-सा राज्य था, परंतु वहाँ का राजा सबदलसिंह सावधान और दिलेर आदमी था। उसे मालूम था कि इस चढाई का कारण मदिर की मूर्ति और कदाचित् कुमुद है। उसे वह सुरक्षित रक्खे हुये था। जब उसके पडोस मे होकर अलीमर्दान की सेना निकली, तब उसने कोई रोक-टोक नही की, बल्कि खातिर से पेश आया, जिसमे अलीमर्दान को कोई सदेह न हो।

कुमुद की पूजा बाहर से बिलकुल रुक गई। यदि कभी-कभी लुके-छिपे हो भी जाती थी तो बडी सावधानी के साथ। परन्तु बिराटा वालों की पूजा बढ गई। बिराटा-निवासी किसी आनेवाली विपद् के निवारण के लिये भक्ति के साथ उस पूजा में रत रहने लगे।

इधर-उधर के समाचार कुमुद को दिन में बहुत कम मिलते थे। रात को नरपतिसिंह से जो कुछ मालूम होता था, उसमें सासारिक समाचारो का समावेश बहुत कम रहता था। आध्यात्मिक—अर्थात् पूजा-सम्बन्धी—विषय उनके भोजन और निद्रा के बीच का स्वल्प समय ले लेते थे।

उस दिन जो कुछ गोमती ने सुना, उससे उसकी विचित्र दशा हो गई। वह कभी आकाश की ओर देखती, कभी गजगामिनी गूढ धार की ओर और कभी दूसरे किनारे के निर्जन, सघन वन की ओर देख-देखकर कुमुद से कुछ कहना चाहती थी। पूजा और पुजारियो की भीड़ के मारे दिन में अवसर न मिला। दोनों रात गये अपनी कोठरी में चली गईं।

कुमुद को विश्राम की ओर प्रवृत होते देखकर गोमती ने कहा—'क्या नींद आ रही है ?'

'बड़ी क्लांत हूँ गोमती। आजकल काम के मारे जी बेचैन हो जाता है। मूर्ति से वरदान न माँगकर लोग मेरे सामने हाथ फैलाते हैं।'

'क्योंकि लोग उसे पा जाते हैं।' प्रफुल्ल गोमती बोली।

उदास स्वर में कुमुद ने कहा—'यह मेरी शक्ति के बाहर है। मैं तो दुर्गा से केवल प्रार्थना करती हूं, स्वयं किसी को कुछ नहीं दे सकती। जो इससे प्रतिकूल विश्वास करते हैं, वे अपने साथ अन्याय और मेरे साथ क्रूरता करते हैं।'

इस पर गोमती ज़रा सहम गई। कुछ क्षण बाद उसाँस लेकर बोली—'उधर के समाचार सुने हैं ? युग-परिवर्तन-सा हुआ है।'

'क्या हुआ है गोमती ?' कुमुद ने जरा रुचि दिखलाते हुये पूछा।

'दलीपनगर के राजा नायकसिंह का देहांत हो गया है।' उत्तर मिला।

'अब राजा कौन हुआ है ? युवराज को गद्दी मिली होगी।' उठती हुई उत्सुकता को स्वयं शांत करके कुमुद ने पूछा।

'सो नही हुआ।' संयत आवेश के साथ गोमती बोली—'राजकुमार को नही, दूसरो को राजा राज्य देकर मरे हैं।'

वड़े कुतूहल के साथ कुमुद ने प्रश्न किया—'किसको गोमती ? किसको ?'

गोमती कुछ कहना चाहती थी, न कह सकी।

कुमुद ने उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना कहा—'राजकुमार ने ऐसा क्या किया होगा ? उन्हे राजा ने क्यों राज्य नही दिया ? वह तो राज्य के उपयुक्त मालूम होते थे और दूसरे को किसको राज्य दे दिया होगा। समाचार भ्रम-मूलक जान पड़ता है गोमती।'

'देवी का वरदान खाली नही जाता।' गोमती ने कहा—'देवी की पूजा रीती नही पड़ती।'

''तुमने जो कुछ सुना हो, मुझे सविस्तार वतलाओ।' कुमुद ने मुक्त उत्सुकता के साथ कहा।

गोमती चुप रही, जैसे किसी ने उसका गला पकड लिया हो। थोड़ी देर बाद बोली—'राजकुमार को मैंने भी देखा है। ऐसी महत्ता, इतनी दया दूसरों मे कम देखी जाती है। राजा उन्हे चाहते भी थे। वह चाहने योग्य हैं भी।'

कुमुद ने आग्रह-पूर्वक पूछा—'तब बतलाती क्यो नही गोमती, राजा कौन हुआ ?'

उसने उत्तर दिया—'जिसने उस दिन पालर की लड़ाई में राजा के प्राण बचाने के लिये अपने शरीर को लगभग कटवा दिया था।'

कुमुद ने अनसुनी-सी करके कहा—'राजकुमार का क्या दोष समझा गया ? इस कृति का मूल कारण राजा का पागलपन न समझा जाय, तो क्या समझा जाय ?'

'पागलपन नही था जीजी ?' गोमती ने दृढता के साथ कहा।

इस नये सम्बोधन से कुमुद बहुत सन्तुष्ट नहीं हुई। परन्तु उसी सहज मृदुल स्वर मे बोली—'तो क्या था, गोमती ?'

'राजकुमार दासी से उत्पन्न हैं, इसलिये उन्हे राज्य नही मिला।' गोमती ने स्वाभाविक गति से उत्तर दिया।

'झूठ, झूठ है गोमती।' क्षुब्ध स्वर में कुमुद ने कहा—'लोचनसिंह सदृश पुरुष झूठ नही बोल सकते।'

'वह निष्ठुर, क्रूर ठाकुर।' गोमती के मुँह से निकल पड़ा—'उसने क्या कहा था ?'

कुमुद कुछ देर तक चुप रही। उसके स्वर ने कुछ क्षण बाद फिर वही कोमलता धारण कर ली। बोली—'तुम्हे कैसे मालूम गोमती ?'

गोमती ने इसके उत्तर मे कुञ्जरसिंह की उत्पत्ति की कथा सुना दी।

लम्बी उसाँस लेकर कुमुद ने पूछा—'कौन राजा हुआ गोमती ?'

गोमती ने उत्साह के साथ उत्तर दिया—'मैंने बतलाया था, जिन्होने उस दिन राजा के प्राणो की रक्षा की थी।'

कुमुद ने बिस्तर से उठकर विस्मय-पूर्वक कहा—'तुम्हारे दूल्हा ?' गोमती ने कुछ नही कहा।

[२३]

गाँव के जो स्त्री-पुरुष बिराटा की टौरिया (अब उस स्थान को इसी नाम से पुकारना चाहिये) पर आते थे, उनके साथ कुमुद की बातचीत वरदानों और तत्सम्बन्धी विषयो के अन्तर्गत अधिक होती थी। अन्य विषयों की बातचीत सुनने के लिये वह कभी-कभी उत्कण्ठित हो जाती थी। परन्तु पूजक और भक्त लोग ऐसे विषयो की चर्चा उसके सामने नहीं करते थे। पूजक और पूज्य के बीच मे श्रद्धा ने जो अन्तर उपस्थित कर रक्खा था, वह कुमुद को असह्य हो उठा, किन्तु वह ऐसी अधीर न थी कि उसका आतुरता के साथ उल्लघन कर सकती।

कुञ्जरसिंह के विद्रोह और अलीमर्दान की अवश्यंभावी चढ़ाई का समाचार यथासमय टौरिया पर पहुँचा। गोमती ऐसे सब समाचारों को जासूसों की तरह खोद निकालने में निमग्न थी।

दो-एक दिन से गोमती कुमुद को किसी उदासी में, किसी असमञ्जस मे उलझी हुई सी देख रही थी। रात को उन दिनो कोई बात नही हुई। गोमती को सन्देह हुआ कि कही कुञ्जरसिंह के उत्तराधिकार को दलित समझकर देवी ने दूसरों पर स्वत्व-भञ्जन और अनुचित अपहरण के आरोप की कल्पना न की हो। कुञ्जरसिंह के विद्रोह और अलीमर्दान के आक्रमण मे अपनी बात कहने के लायक़ सामग्री पाकर रात्रि के आगमन के लिये व्यग्र हो उठी।

गोमती को उस दिन जान पड़ा कि सूर्यदेव बहुत मचल-मचलकर अस्ताचल गये, अन्धकार ने प्रकाश को घोर लड़ाइयों के बाद दबा पाया और उसके अभाग्य से कुमुद लेटने की कोठरी में बड़ा विलम्ब कर के आई।

गोमती ने तुरन्त वार्तालाप आरम्भ किया।

कुमुद से पूछा—'आज का कुछ समाचार आपने सुना है?'

उसने कहा—'मुझे पूजन से अवकाश ही नही मिलता।'

स्वर मे कोई क्षोभ न था, परन्तु कोमल होनेपर भी उसमें संगीत की मञ्जुलता न थी—जैसे कोयल ने दूर किसी सघन वन मे वायु के झोकों की गति के प्रतिकूल कूक लगाई हो।

'उस दिन मैंने कुमार कुञ्जरसिह के विषय में जैसा सुना था, बतलाया था। राज्य न मिलने के कारण असतुष्ट होकर उन्होने एक बड़ा भारी उपद्रव खड़ा कर दिया है।'

एक क्षण के लिये कुमुद की देह थर्रा गई। परन्तु उसने अपने सहज स्वर में उत्सुकता-ज्ञापन न करते हुये पूछा—'क्या सुना है गोमती आज?'

'मैंने यह सुना है।' गोमती ने उत्तर दिया—'कि दासी पुत्र कुजरसिंह ने राज्य-विद्रोह किया है। सिंहगढ पर अनधिकार चेष्टा से दखल कर लिया है और इस अनुचित, अधर्मपूर्ण युद्ध में मनुष्यो के सिर काट और कटवा रहे हैं। छोटी रानी, जो मृत राजा को विष देकर मार डालना चाहती थी, उनका साथ दे रही हैं। गृह-कलह की ऐसी आग दोनो ने मिलकर सुलगा दी है कि दलीपनगर का राज्य राख मे मिल जाने ही को है।'

कुमुद के हृदय से एक उष्ण उसाँस निकली।

गोमती कहती गई—'इधर कालपी के मुसलमान सूबेदार ने चढाई कर दी है। वह अपने बिराटा के पास से होकर आजकल में ही निकलने वाला है। उसका प्रयोजन पालर के मन्दिर को विध्वंस करने का है। उसने आपके विषय में जो वासना प्रकट की है उसे कहने से मेरी जीभ के खण्ड-खण्ड हो जायेंगे।'

अन्तिम वात सुनकर कुमुद क्या कहती है, इसकी प्रतीक्षा एक क्षण करने के वाद गोमती ने फिर कहा—'गृह-कलह, जो कुमार कुञ्जरसिंह ने खडी करदी है, कदाचित् इस अलीमर्दान के मुँह मोड़ने में दलीपनगर-राज्य को कुण्ठित कर दे। प्रार्थना है, आप नये राजा को ऐसा अदमनीय बल दे कि नये महाराज कुञ्जरसिह के विद्रोह को कुचलकर अलीमर्दान की अधर्म-कुचेष्टा को नष्ट-भ्रष्ट करने में समर्थ हो।'

कुमुद देर तक कुछ सोचती रही। थके हुये कुछ काँपते हुये वारीक स्वर में वोली—'गोमती, सो जाओ, फिर कभी वात करूँगी। नीद आ रही है।'

परन्तु भक्त का हठ चढ़ चुका था। गोमती वोली—'नही देवी, आज वरदान देना होगा, जिसमें कोई अनिष्ट न हो। यदि कही आपने समझ लिया कि कुञ्जरसिंह का पक्ष न्याय-सगत है, तो दलीपनगर का, संसार भर का सर्वनाश हो जायगा। यदि दलीपनगर के धर्मानुमोहित महाराज कुञ्जरसिंह से हार गये, यदि अलीमर्दान ने ऐसी अव्यवस्थित अवस्था में राज्य पाया, तो आपके मंदिर का क्या होगा? धर्म का क्या होगा? अन्य राजा अपनी तर्जनी भी मंदिर की रक्षा में न उठावेगे। विराटा-राज्य में इतनी शक्ति नही कि अलीमर्दान का मर्दन कर सके। इसलिये जननी रक्षा करो, वचाओ।'

गोमती कुमुद के पैरों से लिपट गई और आँसुओं से कुमुद के पैर भिगो दिये।

कुमुद ने कठिनाई से उसे छुड़ाकर अपने पास विठला लिया। सिर पर हाथ फेरकर बोली—'क्या चाहती हो गोमती? जो कुछ कहोगी, उसके लिये माता दुर्गा से प्रार्थना करूँगी। यह निश्चय जानो कि माता का मन्दिर भ्रष्ट न होने पावेगा। उसकी रक्षा भगवती करेंगी।'

'तो मै यह वरदान चाहती हूं! गोमती ने अँधेरे में हाथ जोड़कर कहा—'यह भीख माँगती हूँ कि कुञ्जरसिंह का नाश हो, अलीमर्दान मर्दित हो और दलीपनगर के महाराज की जय हो।'

ये शब्द उस कोठरी में गूँज गये, कल-कल शब्दकारिणी बेतवा की लहरावली पर उतरा उठे। कुमुद को उस कोठरी मे एक क्षण के लिये चमक-सी जान पडी और शून्य गगन आंदोलित-सा।

कुमुद ने कुछ समय पश्चात् शांत, स्थिर स्वर में कहा—'यह न होगा गोमती, परन्तु मन्दिर की रक्षा होगी और अलीमर्दान का मर्दन होगा, इसमें कोई संदेह नही।'

'यह वरदान नही है।' गोमती ने प्रखर स्वर मे कहा—'यह मेरे लिये अभिशाप है देवी। मैं इस समय इस तपोमय भवन में इस बेतवा के कोलाहल के बीच चरणो मे अपना मस्तक काटकर अर्पण करूँगी।'

कुमुद ने देखा, गोमती ने अपनी कमर से कुछ निकाला।

कुमुद ने कहा—'क्या करती हो ? ऐसा मत करना।'

'भक्त के कटे हुये सिर पर ही दुर्गा का अधिकार है, अन्यथा नही। वरदान दीजिये या सिर लीजिये।'

'मै बतलाती हू। ठहरो।' कुमुद ने कहा और कुछ क्षण तक कुछ सोचती रही।

फिर दृढता-पूर्वक बोली—'तुम्हारे राजा का राज स्थिर रहेगा। मंदिर बचेगा और अलीमर्दान की जय न होगी। तुम्हे इससे अधिक और क्या चाहिये ?'

गोमती सतुष्ट हो गई, फिर पैर पकड़ लिये। कुमुद ने उसे धीरे से हटाकर रुखाई के स्वर में कहा—'जाओ, सोओ। भविष्य में कभी फिर उस राजकुमार का वर्णन करोगी, तो अच्छा न होगा।'

गोमती चुपचाप जा लेटी।

[२४]

आलीमर्दान एक बडी संख्या मे सेना लिये हुये पालर जा पहुंचा। उसे अपने पड़ाव के लिये वहाँ से बढ़कर अच्छा स्थान मालूम न था। घोडे के लिये पानी और चारा दोनो का सुबीता था तथा उसी स्थान पर दुर्गा का मंदिर और पुजारिन का घर भी था।

बड़नगर के राजा को अलीमर्दान ने आश्वासन दे दिया था कि उसकी प्रजा के साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न किया जायगा और न मंदिर को नष्ट। दलीपनगर के राजा को दंड देना, राज्य-च्युत करके हलवाहे-का-हलवाहा कर देना ही सिर्फ मेरी मंशा है।

दलीपनगर और बड़नगर वर्षों से दिल्ली के मातहत राज्य थे, परन्तु परस्पर स्वतंत्र थे। उनकी दिल्ली की मातहती भी दिल्ली के बल के हिसाब से घटती-बढ़ती या तिरोहित होती रहती थी। इस समय इनमें से कोई भी दिल्ली के प्रति व्यावहारिक रूप में अपनी अधीनता प्रकट नही कर रहा था, लेकिन खुल्लमखुल्ला विरोध भी न था। दिल्ली के बड़े कर्मचारियों या सेना-नायकों से उनकी इन दिनो कोई घोषित लड़ाई न थी। नाम-मात्र की भी पराधीनता से बच निकलने के अवसर की ताक मे अवश्य थे, परन्तु इस समय दलीपनगर का पक्ष लेकर अलीमर्दान से युद्ध छेड बैठना समयानुकूल नही समझा गया।

दलीपनगर दुविधा मे था। एक ओर सिंहगढ का घेरा, दूसरी ओर अलीमर्दान; घर मे छोटी रानी का भय और पूर्व-दुर्व्यवस्था से राज्य को निकालकर वर्तमान में संगठन का आयोजन।

इसीलिये पालर तक पहुच जाने मे अलीमर्दान की रोक-टोक की गई, शायद रास्ते मे बिराटा-सदृश छोटे-छोटे रजवाड़े कुछ विघ्न उप–स्थित कर दे, परन्तु यह कल्पना सफल न हुई।

अलीर्मान जब पालर पहुँचा, उसे वहाँ सिवा किसानो के कोई नही मिला।

मन्दिर का निरीक्षण करने गया। साथ में उसका एक सरदार था। अलीमर्दान ने सरदार से कहा—'मन्दिर तो बहुत छोटा है कालेखाँ। मैंने बहुत बडे-बड़े मन्दिर देखे हैं। क्या इसी के ऊपर उन लोगों को इतना नाज था।'

'हुजूर, इस जगह को उन लोगो ने अपनी नाक बना रक्खा है। पुजारिन कही भाग गई होगी, मगर पता लग जायगा। बुन्देलखण्डी लोग भागते भी हैं, तो घर छोड़कर दूर नही जाते।'

'तुम्हारे साथ किस जगह लोचनसिंह लडा था ?'

कालेखाँ ने स्थान बतलाकर कहा—'इस जगह हुजूर।'

'और वह कहाँ थी ?'

लडाई के समय कुमुद जिस स्थान पर अपने पिता के साथ कुञ्जरसिंह की अभिभावता मे खडी थी, वह स्थान भी अलीमर्दान को बताया गया।

यह सब देख-भालकर और आसपास के रास्ते, छिपाव और आक्रमण के स्थानो की परीक्षा करके सध्या के पहले अलीमर्दान कालेखाँ को साथ लेकर झील पर गया।

चारो ओर पहाड़ो से घिरी हुई झील के पूर्वोत्तरीय किनारे पर पहाड़ी से सटा हुआ नीचे की ओर पालर गाँव। उसी किनारे के ऊपरी भाग पर जाकर अलीमर्दान कालेखाँ के साथ एक चट्टान पर बैठ गया।

झील में लहरे उठ-उठकर बैठ रही थी और सूर्य की किरणो का एक अनन्त भाडार-सा प्रतीत हो रहा था। जैसे स्वर्ण की खानें खुल पडी हो और चारों ओर से विशाल ढोके और पर्वत अपनी निधि की रक्षा के लिये तुले खड़े हो।

'पानी का बड़ा सहारा है यहाँ कालेखाँ। यही से दस्ते बना-बनाकर हमला करना अच्छा है।'

'बेहतर है हुजूर।'

'दो दिन में सामान इकट्ठा कर लो। तीसरे दिन धावा कर दिया जाय। सिपाहियों को इस बीच मे आराम भी मिल जायगा।'

'मुसलमान सिपाहियों की एक ख्वाहिश है हुजूर।'

'क्या ?'

कालेखाँ बोला—'पहले मन्दिर तोड़ डाला जाय।'

मुस्कराकर अलीमर्दान ने कहा—'ताकि चढाई की मुश्किलें और भी बढ़ जायँ। यह न होगा। बल्कि तुम कडा पहरा मन्दिर पर लगवा दो। अगर मन्दिर की एक ईंट का टुकड़ा भी किसी ने उखाड़ा, तो घड़ से सिर अलग करवा दूँगा। समझ गये कालेखाँ ?'

नीची गर्दन करके कालेखाँ ने उत्तर दिया—'हुजूर।'

थोड़ी देर मे नमाज़ का वक्त होने के कारण दोनो पहाडी से उतर आये।

इतने मे एक सिपाही ने सूचना दी कि दलीपनगर से कोई मुजरा करने के लिये आया है। उससे नमाज़ के बाद तक ठहरने के लिये कह दिया गया।

नमाज़ के बाद अलीमर्दान से दलीपनगर का जो मनुष्य मिला, वह रामदयाल था। उस समय अलीमर्दान के पास कालेखाँ के सिवा और कोई न था।

रामदयाल ने कहा—'मैं सरकार के पास राखी लाया हूं।'

'राखी !' अलीमर्दान साश्चर्य बोला—'किसने भेजी है ? परन्तु तुम जवाब दो या न दो, मै राखी मन्जूर न करूँगा।'

'ऐसा कभी नही हुआ है। रामदवाल अपने कपडों के भीतर हाथ बढ़ाता हुआ बोला।

अलीमर्दान ने कहा—'वह जमाना अब नही है। मैं राखियाँ लेने-देने के लिये नही आया हूं। मेरे आने का प्रयोजन स्पष्ट है। और यह तो मैने आज ही सुना है कि दलीपनगर के मर्द भी राखी भेजते हैं।'

'नही हुजूर।' रामदयाल ने कपड़ो मे से रेशम की एक छोटी-सी पोटली निकालकर दृढ़ता के साथ कहा—'यह राखी दलीपनगर की रानी ने भेजी है। ग्रहण करनी होगी। बुरी अवस्था में हैं।'

नफरत भरी निगाह से देखते हुये अलीमर्दान बोला—'तुम्हारा नया राजा इतना गिरकर रानी के ज़रिये क्यो शरण माँगता है ? छोटी-छोटी-सी दो शर्तें पूरी करने में कौन से पहाड खोदने पडेंगे ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'यह राखी राजा ने नही भिजवाई है !'

'उसका फल एक ही है, लौटा ले जाओ ।'

'यह राखी लौट नही सकती । मृत महाराज की छोटी रानी ने भेजी है, जो नये राजा के विरुद्ध आपसे सहायता चाहती हैं ।'

अलीमर्दान चौंक पडा । 'छोटी रानी की राखी मंजूर है ।' वह एक क्षण बाद बोला—'लाओ, आज से वह मेरी धर्म की बहिन हुई ।'

रामदयाल ने प्रसन्नतापूर्वक अलीमर्दान को राखी दे दी । उसने पगडी में रखली ।

फिर रामदयाल से उसने एक-एक करके रियासत सम्बन्धी सब वृत्त पूछ डाला ।

सब हाल सुनकर कालेखाँ से बोला—'तुम एक दस्ता लेकर कुञ्जरसिंह की मदद के लिये सिंहगढ जाओ । मैं दूसरे दस्ते से दलीपनगर पर धावा करता हूँ ।'

कालेखाँ ने स्वीकार किया ।

दूसरे दिन कालेखां एक दस्ता लेकर सिंहगढ की ओर रवाना हो गया । अलीमर्दान ने रामदयाल को अपने शिविर में एक-दो दिन के लिये रोक लिया ।

[२५]

कुञ्जरसिंह का दस्ता सिंहगढ़-विद्रोह अलीमर्दान को रामदयाल के मिलने से पहले ही मालूम हो गया था, परन्तु उस समय के सन्देह के वातावरण के कारण रामदयाल को एक-आध दिन के लिये रोक रक्खा। उसने सोचा—यदि राखी महज छल-कपट ही है, तो यह आदमी जल्दी दलीपनगर जाकर किसी तरह की ख़बर न दे सकेगा।

अपनी सेना का एक दस्ता पालर में छोड़कर दूसरे दिन उसने कूच कर दिया। जब दलीपनगर के राज्य मे कई कोस घुस गया, तब रामदयाल को विदा करते समय बोला—'रानी के पास कुछ सरदार हैं ?'

'है सरकार।' उसने उत्तर दिया।

'उन सबको लेकर सिंहगढ पहुँचो। अब रानी का दलीपनगर में रहना ठीक नही।'

'बहुत अच्छा। मैं अभी जाकर इसका प्रबन्ध करता हूँ।'

कुछ समय उसे और रोक कर अलीमर्दान ने कहा—'मन्दिर के विषय में तुम्हारा क्या ख्याल है कि मै तुड़वा दूँगा।'

'कभी नही।' रामदयाल ने आवेश मे आकर उत्तर दिया।'

जरा ठहर कर अलीमर्दान ने कहा—'मगर जिस लड़की ने यह फसाद करवाया था, उसे कुछ सजा दी जायगी।'

रामदयाल चुप रहा।

अलीमर्दान बोला—'रामदयाल, हम तुम्हारे देवतो की इज्जत करते है, मगर उन आदमियो की नही, जो देवता बनकर दुनियाँ को शरारत से न सिर्फ ठगते हैं, बल्कि बेकसूर सिपाहियो को मरवा डालते हैं।'

'यह दुरुस्त है हुजूर।' रामदयाल ने कहा।

अलीमर्दान हँसकर बोला—'मगर उस लड़की को जो सज़ा दी जायगी, वह किसी बड़े पुरस्कार से भी बढ़कर होगी।'

रामदयाल अलीमर्दान का मुह जोहने लगा।

अलीमर्दान कहता गया—'उसे मैं अपने महल मे जगह दूँगा। पालर की अपेक्षा शायद कालपी उसे शुरू-शुरू में कम पसन्द आवे। बस, इतने में ही सजा समझो। इसके बाद अगर वह सुखी न रह सकी, तो तुम मुझे दोष देना। क्या कहते हो रामदयाल ?'

उसने उत्तर दिया—'इसमें तो किसी प्रकार का हर्ज नही दिखलाई पडता हुजूर।'

अलीमर्दान ने आँख गड़ाकर पूछा—'उस लड़की का पता बतला सकोगे ?'

रामदयाल ने विश्वास दिलाकर कहा—'खोजकर बतलाऊगा।'

[२६]

अलीमर्दान दलीपनगर राज्य मे थोड़ा ही घुस पाया था कि उसे राज्य की सेना का सामना करना पड़ा।

राजा देवीसिह और लोचनसिंह के नायकत्व मे दलीपनगर की सेना को अलीमर्दान नुकसान नही पहुचा पाया। दलीपनगर की ओर उसकी बढ़ती हुई प्रगति को निश्चित रूप से रुक जाना पड़ा। लगभग हर समय नालो, जंगलों और पहाड़ियों मे लड़ते-लड़ते अलीमर्दान ने सोचा, बिना किसी अच्छे किले को हाथ में किये युद्ध आसानी से और विजय की पूरी आशा के साथ न हो सकेगा। इसलिये उसने देवीसिह की सेना को अटकाये रखने के लिये एक दस्ता जंगल में छोड़ दिया और उसी सेना के दूसरे दस्ते को लेकर होशियारी के साथ चुपचाप सिहगढ़ रवाना हो गया। बहुत चक्करदार मार्ग से जाना पड़ा, इसलिये वह सिंहगढ़ के निकट देर मे पहुचा।

राजा देवीसिंह को इस चाल की सूचना विलंब से मिली। उस समय पालर की छावनी से अलीमर्दान की इस नई योजना के अनुसार और सिपाही आ पहुँचे। देवीसिंह इस सेना का मुकाबला और पालर की छावनी पर धावा करने के लिये वही गया और लोचनसिह को सिंहगढ की ओर भेजा।

परन्तु इसके पहले ही रामदयाल ने छोटी रानी के पास पहुचकर राजधानी मे ही उपद्रव जाग्रत कर दिया था। जो लोग राजा देवीसिंह के अभिषेक से असतुष्ट थे, वे सब छोटी रानी के झडे के नीचे आ गये और उन्होने खास दलीपनगर मे गृह-युद्ध आरम्भ कर दिया। छोटी रानी ने एक सरदार के नीचे थोड़ी-सी सेना राजधानी को तग करने के लिये छोड दी और एक बड़ी तादाद मे लेकर सिहगढ की ओर चल पड़ी। उसे यह नहीं मालूम था कि अलीमर्दान सिंहगढ़ की ओर गया है। मालूम भी हो जाता, तो वह न रुकती।

जनार्दन ने इस विद्रोह का समाचार राजा के पास, जहाँ वह लड़ रहा था, भेजा । पत्र-वाहक लोचनसिह को बीच ही मे मिल गया। तब लोचनसिंह सिहगढ की ओर न जाकर सीधा दलीपनगर पहुचा। राजधानी के बलवे को दबाने के लिये लोचनसिंह को कई दिन लग गये।

इस बीच में रानी और अलीमर्दान की सेनाएँ सिंहगढ के मुहासिरे पर पहुँच गई। तब वहाँ राजा देवीसिंह की सेना को कुञ्जरसिंह, अलीमर्दान और छोटी रानी की सेनाओ से लोहा लेना पड़ा। परन्तु फल के निर्णय मे अधिक विलंब नहीं हुआ।

[२७]

राजा देवीसिंह की सेना सिंहगढ के घेरे मे हार गई और भागकर दलीपनगर पहुँची। विजय की अपेक्षा पराजय का समाचार ज्यादा जल्दी फैलता है। राज्य-भर के और आस-पास के लोग सुनकर घबराने लगे। अलीमर्दान के वे दस्ते, जो राजा देवीसिंह की सेना का सामना कर रहे थे, अधिक उत्साह के साथ लड़ने लगे।

देवीसिंह ने जनार्दन से कहलवा भेजा—'यदि लोचनसिंह से काम न चलता हो, तो किसी दूसरे सरदार को सिंहगढ़ भेजो। यहाँ उसे मत लौटाना। मै उसका मुँह नही देखना चाहता।'

जनार्दन ने सामयिक स्थिति पर बातचीत करते हुये लोचनसिंह से कहा—'यदि आप सीधे सिंहगढ चले जाते, तो अच्छा होता। राजा की आज्ञा का उल्लंघन करके अच्छा नही किया।'

'इधर आपकी राजधानी खाक मे मिल जाती। मै न आता, तो यहाँ कौन लड़ता?'

'राजा किसी-न-किसी को भेजते। परन्तु जो हो गया, सो हो गया। सिंहगढ को किसी तरह हाथ मे लेना चाहिये, नही तो इस राज्य की कुशल नही।'

'और यदि दलीपनगर भी हाथ से निकल गया, तो आपको आराम से बैठे-बैठे बातचीत करने के लिये जगह तक का ठिकाना न रहेगा।'

'महाराज की आज्ञा है कि आप सिंहगढ जायँ।'

'वह पुरानी बात है। यदि काम करना है, तो उसे तो यो ही मानूँगा और नही करना है, तो अपने घर चला जाऊंगा; परन्तु युद्ध के विषय में मैं पण्डितो की आज्ञा नही लिया करता।'

'महाराज ने क्या कहलवाया है, जानते हो?' जनार्दन ने उत्तेजित होकर कहा—'और युद्ध के दिनो मे घर बैठ जाना तो किसी भी सरदार को शोभा नही देता।'

लोचनसिंह ने पूछा—'महाराज ने क्या कहलवाया है जी ?'

सावधानी के साथ जनार्दन ने उत्तर दिया—'यह कि यहाँ न आकर सीधे सिंहगढ़ जावें ।'

लोचनसिंह ने कहा—'आपने वहाँ के विपय में लिख दिया था या नहीं कि क्या-क्या हुआ । किस-किस संकट मे राजधानी पड़ गई थी ।'

उत्तर मिला—'सब लिख दिया था ।'

'महाराज ने कुछ और कहला भेजा है ?' उसने पूछा ।

जनार्दन बोला—'और तो कुछ याद नही पडता । जब स्मरण हो आवेगा, बतला दूंगा । अभी तो अपना काम देखिये ।'

लोचनसिंह ने तड़ककर कहा—'तो अब राजा को सूचित कर दो कि जहाँ पौरुष की कदर नहीं, वहाँ लोचनसिह नही रहेगा ।' और जनार्दन के विनय-प्रार्थना करने पर भी वहा से उठ गया ।

[२८]

सिंहगढ़ मे कुजरसिह को छोटी रानी की सेना के आने का और उसके उद्देश्य का समाचार मिल गया था। इन दोनो का संयुक्त दल सिहगढ़ के फाटक खुलवाकर भीतर पहुच गया। कुञ्जरसिह को अलीमर्दान के दस्ते का हाल न मालूम था। रामदयाल अलीमर्दान के साथ-साथ था। डोले में रानी की सवारी सबसे पहले दाखिल होकर दूसरी ओर चली गई। कुञ्जरसिंह सबसे पहले रानी के पास गया। पैर छूकर खड़ा हो गया। परिश्रम और थकावट के सारे चिह्न उसके मुख पर थे, परन्तु हर्ष की भी रेखाएँ चमक रही थी जैसे धूल में सोना दमक रहा हो।

रानी ने कृतज्ञ कुञ्जरसिह से कहा—'खास दलीपनगर मे लड़ाई हो रही है। सैयद की फौज देवीसिंह से पालर की ओर लड़ रही है और स्वयं सैयद को रामदयाल यहाँ लिवा लाया है। उसकी सहायता न होती, तो तुमसे मिल पाना असम्भव होता।' और कुञ्जर के नत मस्तक पर हाथ फेरा।

हर्ष की रेखाएँ उसी थकावट की बाढ मे डूब गई। कुञ्जर की आँखों में तारे छिटक उठे। अलीमर्दान का नाम सुनते ही शरीर मे पसीना आ गया। जब उसका सिर उठा, रानी ने देखा, एक क्षण पहले का उत्फुल्ल मुख मुरझा गया है, जैसे कमल को पाला मार गया हो।

रानी इस परिवर्तन को न समझ सकी, परन्तु यह उन्हे भासित हो गया कि कृतज्ञता के स्थान पर उसके नेत्रो में रुखाई, उपेक्षा और घबराहट अधिक है।

'क्या है कुञ्जरसिह ? क्या कहना चाहते हो ?' रानी ने पूछा।

'कुछ नही कक्कोजू।' कुञ्जरसिह ने उत्तर दिया—'मुझ-सरीखे तुच्छ मनुष्य के लिये आपने जो कष्ट उठाया है, वह व्यर्थ गया-सा जान पड़ता है।'

इस रुखाई से रानी तिलमिला उठी। बोली—'तुम सदा से रोते-से ही बने रहे। क्या इस विजय से तुम्हे राजसिंहासन अपने अधिक निकट

नहीं दिखलाई पड़ रहा है? सेना एक-आध रोज़ विश्राम कर ले कि तुरन्त दलीपनगर के ऊपर प्रबल आक्रमण कर दिया जायगा और जनार्दन, देवीसिंह, लोचन इत्यादि बागियो को उनके किये का भरपूर बदला दे दिया जायगा।'

'महाराज—' कुञ्जरसिंह कहता-कहता रुक गया।

'बोलो, बोलो, कुञ्जरसिंह क्या कहते हो?' रानी जरा चिढ़कर बोली।

सामने से रामदयाल को और उससे थोड़े ही पीछे अलीमर्दान को देखकर कुञ्जरसिंह ने कहा—'अभी कक्कोजू विश्राम करें, बहुत परिश्रम किया है। अवकाश मिलने पर निवेदन करूँगा।' रानी का डोला किले के भीतर महलों में चला गया और कुञ्जरसिंह मुड़कर रामदयाल के पास पहुचा।

रामदयाल ने महत्त्वपूर्ण दृष्टि और मिठास-भरे स्वर मे जुहार किया, धीरे से बोला—'कालपी के नवाब साहब हैं। इन्होंने बात रख ली।'

कुञ्जरसिंह चुप-चाप चलती-फिरती पत्थर की मूर्ति की तरह बिना कोई भाव प्रदर्शित किये अलीमर्दान के पास पहुचा। अभिवादन किया।

अलीमर्दान को जान पड़ा, इस स्वागत मे अतिथि-पूजा की अनुभूति नहीं है। परन्तु उसने अपनी कुढ़न को तुरन्त दबा लिया। हँसकर और चिल्लाकर बोला—'सिंहगढ के बहादुर शेर राजा कुञ्जरसिंह का दर्शन हो रहा है न?'

कुञ्जरसिंह ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया। उसका आतरिक भाव जो कुछ भी रहा हो, परन्तु उसमे इतनी शिष्टता थी कि हर्ष का उत्तर खिन्नता से न दे।

अपने स्थान पर ले जाते हुये कुञ्जरसिंह ने मार्ग मे कहा—'आपका किसी तरह का कोई समाचार हम कैदियो को यहाँ मिलना भाग्य मे न बदा था। इसीलिये अकस्मात् सुनकर उचित रूप से आपकी आगवानी न हो सकी।'

'सिपाही की आगवानी सिपाही और किस तरह करता है राजा साहब ?'

कुञ्जरसिह की रुखाई मे कुछ कमजोरी आई। बोला—'नवाब साहब, यदि आगवानी की त्रुटियो को अच्छे भोजन-पान आदि से दूर कर सकता, तो भी मेरे लिये कुछ कृतकृत्य होने की बात थी, परन्तु हम लोगों के पास रूखे-सूखे के सिवा यहाँ और कुछ नही है। इसीलिये और भी लज्जित हूँ।'

रामदयास ने, जो पीछे-पीछे चला आता था, कहा—'महाराज, नवाब साहब बड़े कट्टर सैनिक हैं। इन्हे लड़ाई की धुन मे खाना-पीना कुछ नही सूझता।'

कुञ्जरसिंह सबसे पहले अपने जीवन मे अपने को 'महाराज' शब्द से सम्बोधित पाकर एक क्षण के लिये चकित और रोमाचित हो गया। कुछ कहना चाहता था, न कह सका।

अलीमर्दान हँसकर बोला—'राजा साहब, रामदयाल ने बड़ी सहायता की है। आपके शुभचिन्तको में ऐसे कुशल मनुष्य का होना गर्व की बात है। एक छोटी-सी सेना के बराबर इस अकेले का काइयाँपन है।'

कुञ्जरसिंह ने संयत शब्दो मे उसकी प्रशंसा की परन्तु उनमे काफ़ी कृपणता थी और रामदयाल को वह खटकी। कुञ्जरसिंह के स्थान पर पहुचकर अलीमर्दान ने तय किया कि रात को आनन्दोत्सव मनाया जाय।

[२६]

कड़ी लडाई के वाद सिपाही जब अवकाश पाकर आनन्द मनाते हैं, तव उनका वेग पाठशाला से छूटे हुये छोटे-छोटे विद्यार्थियो के हुल्लड से कही अधिक वढ जाता है। इस शोर-गुल को एक ओर छोड कर अलीमर्दान, कुञ्जरसिह और रामदयाल एकान्त स्थान मे जा बैठे।

उमङ्ग के साथ अलीमर्दान ने कहा—'जिस दिन राजा साहब का तिलक होगा, उस दिन जश्न और भी जोर-शोर के साथ मनाया जायगा। आज तो वेचारे थके-माँदे सिपाही केवल थकावट दूर कर रहे हैं।'

'वड़ी-वडी कठिनाइयाँ सामने हैं।' कुञ्जरसिह ने गम्भीरता के साथ कहा—'मैने तो समझा था कि सिहगढ के भीतर ही रण-क्षेत्र और श्मशान दोनो हैं।'

रामदयाल बोला—'अब उतनी कठिनाइयाँ हमारे सामने नही हैं, जितनी देवीसिह इत्यादि के सामने हैं। राजा, ऐसी मनगिरी बाते न करनी चाहिये।'

'आप राजा साहव।' अलीमर्दान स्वाभाविक गति के साथ बोला—'राज्य प्राप्त करते ही रामदयाल को बडा सरदार बनाइयेगा। मै इनके लिये सिफारिश करता हू, निवेदन करता हूँ।'

उसके स्वर मे अनुरोध की विशेष मात्रा कल्पित करके कुञ्जर को रामदयाल का कुछ उन सेवाओं का स्मरण हो आया, जिनका सम्बन्ध मृत राजा नायकसिह के साथ था।

'परन्तु।' भाव को छिपाकर बोला—'शुभ घडी आने पर किसी सेवक की कोई सेवा नही भुलाई जा सकती नवाब साहब। यथोचित पुरस्कार सभी को मिलेगा।'

रामदयाल के मन में इस बचन से किसी उमग का संचार न हुआ। बोला—'महारानी साहब और राजा की कृपा बनी रहे नवाब साहब हमारे ऊपर, हमें तो चरणो मे पड़े रहने में ही सुख है, सरदारी लेकर क्या करेंगे?'

अलीमर्दान की समझ में न आया। अधिक रोचक विषय की ओर मनोवृत्ति को फेरने के प्रयोजन से बोला—'भविष्य मे आपकी क्या कार्य-विधि होगी राजा साहब ? अभी तक तो मैंने सैन्य-संचालन किया है, अब सेनापतित्व का भार आपको लेना होगा।'

इसके उत्तर के लिये कुजरसिंह तैयार था। बोला—'मेरी गति-मति के ऊपर रानी साहबा को अधिकार है। उनकी इच्छा मालूम करके आपसे प्रार्थना करूँगा।'

'बहुत अच्छा।' अलीमर्दान ने कहा—'सवेरे तक बतला दीजियेगा। परंतु एक सम्मति है, उसे ध्यानपूर्वक सुन लीजिये और रानी साहबा से अर्ज कर दीजिये। वहय ह कि सवेरे तुरंत कुछ फौज दलीपनगर पर हमला करने के लिये रवाना करवा दी जाय और एक टुकड़ी पास-पड़ोस के छोटे-मोटे किलों पर कब्जा करने के लिये भिन्न-भिन्न दिशाओं मे भिजवा दी जाय।'

कुँजरसिंह बोला—'सेना को इस तरह कई भागों में विभक्त कर देना ठीक रणनीति होगी या नहीं, कक्केजू से पूछकर बड़े भोर निवेदन करूँगा।'

अनमुनी-सी करते हुये अलीमर्दान ने कहा—'और किले में हमारी और आपकी फौज का एक काफ़ी बडा हिस्सा हर तरफ मदद भेजने के लिये बना रहेगा।'

[३०]

आनन्दोत्सव वाली उसी संध्या के बाद रामदयाल ने अलीमर्दान से बात करने का अवसर निकाला। वह भी रामदयाल की टोह मे था।

परंतु अनुकूल अवसर न होने से उसने बातचीत आरम्भ नही की, वार्तालाप के सिलसिले को भारी-भर कर दिया।

'गद्दी मिलने के बाद राजा साहब दीवान किसको बनायेंगे रामदयाल ? अलीमर्दान ने पूछा।

'हुजूर या वह जिसे उस पद पर बिठलायें।' रामदयाल ने उत्तर दिया।

'मैं तो उन्हें गद्दी पर बिठलाकर कालपी चला जाऊँगा। वही के मामलों से फुरसत नही। न मालूम दिल्ली जाना पडे, न-मालूम मालवे की तरफ।'

'तब जिसे वह चाहेगे; परन्तु राज्य, इस तिलक के बाद भी बिना आपकी सहायता के किस तरह चलेगा, सो जरा मुश्किल से समझ में आता है। यदि महारानी के हाथ मे शासन की बागडोर रहने दी जायगी, तो निस्सदेह कठिनाइयाँ कम नजर आवेगी।'

अलीमर्दान हँसकर बोला—'यदि रामदयाल को दीवान बना दिया जायगा, तो शायद ज्यादा गडबड न हो।' फिर तुरंत गम्भीर होकर कहने लगा—'तुम क्या इसे असम्भव समझते हो ? दिल्ली की सल्तनत मे छोटे-छोटे आदमी बहुत बडे-बडे हो गये हैं। दिमाग और होशियारी की कद्रदानी की जाती है रामदयाल।'

रामदयाल चुप रहा।

अलीमर्दान ने कहा—'तुम्हे अगर दीवान मुकर्रर किया, तो महारानी साहब को तो कोई एतराज़ न होगा ?'

उसने उत्तर दिया—'उनके चरणो की कृपा से तो मैं जीता ही हूं।' कुछ और कहना चाहता था, झिझक गया।

अलीमर्दान ने कहा—'राजा साहब तो बेचारे बड़े नेक और सीधे आदमी मालूम होते हैं।'

'रामदयाल ने कोई मन्तव्य प्रकट नहीं किया।'

'हमारा कुछ काम किया रामदयाल ?' उसने पूछा।

'रामदयाल बोला—'आज्ञा ?'

'मैने तुमसे पालर मे कुछ कहा था ?'

'याद है।'

'इस बीच मे तुम बहुत उलझनो मे रहे हो। अगर अब पता लगा सको, तो अच्छा है, नही तो खैर।'

'लगा लिया।' रामदयाल ने कहा।

उत्सुकता के साथ अलीमर्दान ने पूछा—'कहाँ है ?'

खबर लगी है कि वह बिराटा के जङ्गलो में किसी गुप्त किले की अदृश्य गुफा मे है।' रामदयाल ने उत्तर दिया।

अलीमर्दान हँसकर बोला—'यह पता तो तुमने ऐसा बतलाया कि शायद तुम खुद वहाँ जाकर भूल जाओ।'

उसने कहा—'जब इतना पता लग गया, तो शेष भी लग ही जायगा।'

अलीमर्दान अपनी सहज सावधानता के वृत्त को उल्लंघन करके बोला—'रामदयाल, बड़ा काफी पुरस्कार मिलेगा।'

'हुजूर, मै उसे ढूँढूँगा और उसके सम्मुख कर दूँगा। इसका बीड़ा उठाता हूँ।'

'और अगर रामदयाल तुमने इस काम में मेरी मदद की, तो इस राज्य की दीवानी तो तुम्हे मिलेगी ही, मैं अपने पास से भी बहुत बढिया इनाम दूँगा।'

रामदयाल ने नम्रतापूर्वक कहा—'मुझे तो आप लोगों की कृपा चाहिये और क्या करना है।'

जरा दबी जबान से अलीमर्दान ने पूछा—'तुम उसे देवी का अवतार तो नही समझते ? वह देवी का अवतार नही हो सकती—'

'जरा भी नही।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'यह तो मूर्खों का ढकोसला है।'

'उसका नाम क्या है ?'

'कुमुद।'

[३१]

जिस समय अलीमर्दान और रामदयाल की बातचीत हो रही थी, करीब-करीब उसी समय कुञ्जरसिंह छोटी रानी के पास था।

छोटी रानी उससे कह रही थी—'तो तुम्हारा यह तात्पर्य है कि यहाँ हम लोग कोई न आते, तुम्हे यही लड़ने-सडने और मरने दिया जाता। ठीक है न कुञ्जरसिंह ?'

'आपके दर्शनो से तो मेरे पाप कटते हैं।' कुञ्जरसिंह ने कहा—'परन्तु अलीमर्दान को नही बुलाना चाहिये था।'

'अलीमर्दान को न बुलाया होता, तो सर्वनाश हो गया होता। उसने तो वैसे भी चढाई कर दी थी। उसे रोक ही कौन सकता था ? और दलीपनगर के पूर्व राजा इस तरह की सहायता का आदान-प्रदान पहले से भी करते आये हैं।'

'परन्तु जिस प्रयोजन से वह आया है, वह आपको मालूम है ?'

'वह जनार्दन और लोचनसिंह को सूली देने आया है। यदि वह इसमें सफल हो जाय, तो मै कहूँगी कि बहुत अच्छा हुआ। और अधिक जानने की मुझे जरूरत नही।'

'वह पालर की देवी और उनका मन्दिर नष्ट करने आया है। आपको यह बात स्मरण रखनी चाहिये।'

रानी ने झल्लाकर कहा—'मुझे क्या बात स्मरण रखनी चाहिये। मैं इसे बहुत अच्छी तरह जानती हूं। इसे सुझाने के लिये मुझे तुम जैसे लोगों की आवश्यकता नही पडती। यदि तुम साथ रहकर लड़ाई करना चाहो, तो अच्छा है। यदि तुम्हारे मन को न भावे, तो जिस तरह चाहो लडो या उस धर्म-द्रोही, स्वामिघाती जनार्दन की शरण चले जाओ और हम लोगो का अशुभ चिंतन करो।'

कुञ्जरसिंह का कलेजा हिल गया। नम्रतापूर्वक बोला—'महाराज रुष्ट न हो। आप राज्य करे, मुझे राज्य की उतनी अधिक पर्वाह नही।

यदि होगी भी, तो जनार्दन इत्यादि को दण्ड देने के उपरान्त जो कुछ भाग्य में होगा, पाऊँगा।'

इस नम्रता में दृढ़ता की गूँज सुनकर रानी कुछ नरम पड़ी। बोली—'अलीमर्दान का वह प्रयोजन नहीं, जो तुम समझ रहे हो। उसने मेरी राखी स्वीकार की है, मुझे बहिन की तरह माना है। हिन्दुओं का धर्मनाश उसका कदापि उद्देश्य नहीं है। ऐसी हालत मे तुम्हे व्यर्थ के सन्देहों में माथापच्ची नही करनी चाहिये।'

इतने में वहां रामदयाल आ गया। रानी के पास किसी समय भी आने की उसे मनाही नहीं थी।

रानी ने उससे कहा—'रामदयाल, आगे के लिये क्या ढङ्ग सोचा गया है?'

कुञ्जरसिंह की ओर संकेत करके उसने उत्तर दिया—'जैसा निश्चय किया जाय, वैसा होगा।'

'अभी तक कुछ निश्चय नहीं हुआ?' रानी बोली।

कुञ्जरसिंह ने कहा—'अलीमर्दान की राय सेना को टुकड़ियों में विभक्त करके इधर-उधर बिखेरने की है। सेना का अधिक भाग वह सिंहगढ में रखना चाहते हैं। यदि देवीसिंह की सेना ने किसी ओर से प्रचण्ड वेग के साथ चढाई कर दी, तो सिंहगढ हाथ से चला जायगा और बिखरी हुई टुकड़ियाँ कभी संयुक्त न हो पायेगी।'

रानी झुँझलाकर बोली—'रामदयाल, क्या इसी तरह का युद्ध करने की बात अलीमर्दान ने कही है?'

उसने उत्तर दिया—'ठीक इसी तरह की तो नहीं कही है। नवाब साहब दलीपनगर को अधिकृत करने के लिये पर्याप्त सेना भेजना चाहते हैं।'

रामदयाल की बात कुञ्जरसिंह को कभी अच्छी नहीं लगती थी। इस समय और भी प्रखरता के साथ गड़ गई। बोला—'तो कक्कोजू रामदयाल को सेना-नायक बना दे। बस, प्रधान सेनापति अलीमर्दान

और सहकारी सेनाध्यक्ष रामदयाल । इसे यदि इन बातो के दखल से दूर रक्खा जाय, तो कुछ हानि न होगी।'

अपने इस क्षोभ पर कुञ्जरसिंह को तुरंत पछतावा हुआ। कुछ कहना ही चाहता था कि रामदयाल ने बहुत विनीत भाव के साथ कहा—'कक्कोजू ने पूछा था, इसलिये मैंने निवेदन किया । यदि कोई अपराध किया हो, तो क्षमा कर दिया जाऊँ । मै तो सदा भगवान् से यह मनाया करता हूँ कि आप ही लोगो के चरणो में पड़ा रहूँ ।'

रानी ने कहा—'कुञ्जरसिंह, तुम प्राय रामदयाल पर क्यो रोप प्रकट करते रहते हो ?'

ठडे स्वर मे कुञ्जरसिंह ने उत्तर दिया—'यह कभी-कभी ज़रा अपने दायरे के बाहर निकल जाता है, इसलिये चिडचिडाहट हो जाती है । परन्तु मैं वैसे इससे नाराज नही हूँ ।'

कुञ्जरसिंह ने नही देखा, परन्तु रामदयाल की नीची निगाहो मे उपेक्षा का भाव था ।

रानी ने पूछा—'तब क्या कार्य-क्रम स्थिर किया ?'

कुञ्जरसिंह ने उत्तर दिया—'हमारी कुछ सेना सिंहगढ मे रहे, बाकी दलीपनगर पर धावा कर दे और अलीमर्दान अपनी सेना लेकर देवीसिंह पर छापा मारे ।'

रानी ने रामदयाल की ओर देखते हुये कहा—'अलीमर्दान को पसन्द आवेगा ?'

'नही आवेगा महाराज ।' रामदयाल ने उत्तर दिया ।

कुञ्जरसिंह ने कहा—'मैं नवाब से बात करूँगा ।'

दूसरे दिन सवेरे कुञ्जरसिंह ने अलीमर्दान से अपने संकल्प के अनुरूप कराने की चेष्टा की, परन्तु सफल न हुआ । अलीमर्दान सिंहगढ को अपने अधिकार से बाहर नही होने देना चाहता था और कुञ्जरसिंह अलीमर्दान को प्रबलता के किसी विस्तृत कोण पर स्थित नही देखना चाहता था । दो-तीन दिन इसी विषय को लेकर वाद-विवाद होता रहा ।

इसका फल वह हुआ कि महज निर्णयशीला रानी कुञ्जरसिंह को किले के बाहर निकाल देने की कल्पना करने लगी।

अलीमर्दान को रानी का यह भाव कुछ-कुछ अवगत हो गया। उसका व्यवहार कुञ्जरसिंह के साथ कड़ुआ होने की अपेक्षा दो-तीन दिनों मे अधिक शिष्ट हुआ। उन दो-तीन दिनो में कोई सेना कही नही भेजी गई। अलीमर्दान ने मुस्तैदी के साथ खाद्य-सामग्री इकट्ठी कर ली। परन्तु तीन दिन के उपरांत भी रण की योजना अनिश्चित ही थी।

[३२]

उसी दिन लोचनसिंह के रुष्ट होकर चले आने पर जनार्दन बहुत चिन्तित हुआ। वह उसके हठी स्वभाव को जानता था। इसलिये उस समय मनाने के लिये नही गया।

देवीसिंह को सूचित नही कर सकता था, क्योंकि वह जानता था कि बात और बिगड जायगी।

राजधानी का बलवा ऊपर से देखने में दब गया था, परन्तु शान्त नही हुआ था। जिन लोगो ने यह विश्वास करके उपद्रव किया था कि देवीसिंह यथार्थ मे राज्य का अधिकारी नही है, बडी रानी अनुचित रूप से देवीसिंह का साथ दे रही हैं और छोटी रानी अन्याय-पीडित हैं, उन लोगो के कुचल दिए जाने से भावो की तरग नही कुचली जा सकी, प्रत्युत वह भीतर-ही-भीतर और भी प्रबल और प्रचड हो उठी। जनार्दन इस बात को जानता था, इसलिये लोचनसिंह-सदृश योद्धा और सेनापति को ऐसे गाढे समय मे हाथ से नही खो सकता था।

परन्तु लोचनसिंह की प्रकृति में ऐसी बातो के सोचने के लिये बहुत ही कम स्थान था। जनार्दन कुछ समय का अन्तर देकर बिना किसी ठाट-बाट के अकेला लोचनसिंह के घर गया।

जाते ही हाथ बाँधकर खडा हो गया। बोला—'आज एक भीख माँगने आया हूँ।'

सैनिक लोचनसिंह ने बँधे हुये हाथ छुडा दिये। कहने लगा—'पंडितजी, मुझे हाथ जोड़कर पाप मे मत घसीटो।'

'भीख माँगने आया हूँ। इससे तो आप ब्राह्मणो को वर्जित नही कर सकते?'

'मैं आपकी सब करामात समझता हूँ। आप जो कुछ माँगे दे डालूँगा, परन्तु बात न दूँगा, मैं सिंहगढ न जाऊँगा।' परन्तु लोचनसिंह के स्वर में निश्चय की ऐंठ न थी।

जनार्दन ने तुरन्त कहा—'उसके विषय मे जो आपको उचित दिखलाई पडे, सो कीजिये। मै और एक भीख माँगने आया हूँ।'

लोचनसिंह ने गंभीर होकर पूछा—'और क्या पडितजी ?'

जनार्दन ने राज्य की मुहर लोचनसिंह के सामने डालकर कहा—'सिंहगढ मत जाइये। कही न जाइये। यह मुहर लीजिये और दीवानी का काम कीजिये। मेरे बाल-बच्चों की रक्षा का भार लीजिये और मुझे बिदा दीजिये। मैं बदरीनारायण जाता हूँ। ग्रीष्म-ऋतु आने तक वहाँ पहुंच जाऊँगा। यदि कभी लौटकर आ सका और दलीपनगर को बचा-खुचा देख सका, तो बाल-बच्चों का भी मुह देख लूँगा, अन्यथा ब्राह्मणों को तीर्थ मे प्राण-त्याग करने का भय नही है।'

लोचनसिंह ने अचम्भे के साथ कहा—'मैं दीवानी करूँगा। दीवानी मे क्या-क्या करना होता है, इसे जानने की मैंने आज तक कभी कोशिश नही की। यह मुझसे न होगा।'

आतंक के साथ ब्राह्मण बोला—'यह भी न होगा, वह भी न होगा, तब होगा क्या ? बात देकर बदलना आपको आज ही देखा, अभी-अभी आपने क्या कहा था ?'

लोचनसिंह की आँख के कोने में एक छोटा-सा आँसू झलक आया। बोला—'मैं हार गया।'

'क्या हार गये ? भीख न दोगे ?' जनार्दन ने पूछा।

'सिंहगढ़ जाऊँगा। या तो सिंहगढ राजा को दे दूँगा या कभी अपना मुँह न दिखाऊँगा।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'अभी सेना लेकर रवाना होता हूँ।'

जनार्दन ने मन मे कहा—'अब राजा के पास लोचनसिंह के इस प्रण का समाचार भेजूँगा।'

[३३]

अलीमर्दान को खबर लगी कि राजा देवीसिंह का सामना करने के लिये जिस फौज को वह छोड आया था, उसे मैदान छोड़ना पडा और पालर की सेना को देवीसिंह ने इस तरह आक्रांत किया कि दूसरी टुकडी उससे नही मिल सकी। वह चक्कर काटकर सिंहगढ की ओर आ रही है। इस सूचना को पाकर अलीमर्दान ने एक बडे दस्ते के साथ दलीपनगर पर धावा कर देने का निश्चय किया।

वह सिंहगढ को भी नही भूला। अच्छी तरह कालेखाँ के सेनापतित्व में सैनिको को छोड़ने का उसने प्रबन्ध कर लिया।

रानी को भी खबर लगी। उन्होंने कुञ्जरसिंह को उसी समय बुलाकर कहा—'अब क्या करने की ठानी है मन मे, अब भी परस्पर लडते-झगडते ही रहोगे ?'

'मैंने तो कोई झगडा नही किया कक्कोजू। गँवार लोग गाली-गलौज आपस में करते हैं क्या उसी को झगडा कहा जाता है। कक्कोजू ?'

'कह डालो। सकोच मत करो।'

कुञ्जरसिंह ने जरा रुखाई के साथ कहा—'मै यदि किले मे ही लड़ते-लडते मर जाता, तो बहुत अच्छा होता।'

रानी ने कहा—'वह अब भी हो सकता है कुञ्जरसिंह। मौत के लिये किसी को भटकना नही पडता। जो लोग कहते हैं कि मौत नही आती, वे असल मे मौत चाहते नही, मुँह से केवल बकते हैं। तुम्हे यदि क्षत्रियो की मौत चाहिये, तो योजनाओ मे मीन-मेख मत निकालो। जो कहा जाय, करो।'

'मैंने अपनी नीति निश्चय कर ली है।' कुञ्जरसिंह ने निर्णय-व्यंजक स्वर मे कहा—'मैं इस गढ को अलीमर्दान के अधिकार मे न जाने दूँगा। वह हमारी सहायता सेंत-मेंत करने नही आया है। सिंहगढ़ का परगना और किला सदा के लिये हथियाना चाहता है, क्योंकि कालपी की भूमि

इसके पास पड़ती है। मैं इस बपौती को प्राण रहते न जाने दूँगा। केवल आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है और किसी की नही—'

रानी ने वाक्य पूरा नही होने दिया। बोली—'तुम कदाचित् यह समझते हो कि यहाँ न होते तो प्रलय हो जायगी। मै भी सैन्य-संचालन कर सकती हूं। लड़ना, मरना और राज्य करना भी जानती हू।'

असदिग्ध भाव से कुञ्जर ने कहा—'आप राज्य करे, मैं आडे नही हू। कोई राज्य करे, पर मै सिहगढ को दूसरो के हाथ मे न जाने दूँगा।'

'मूर्ख।' रानी प्रचण्ड स्वर मे बोली—'सदा मूर्ख रहा और सदा मूर्ख ही रहेगा। मैने अलीमर्दान को सेनापति नियुक्त किया है। उसकी आज्ञा माननी होगी। जो कोई उल्लघन करेगा, वह दण्ड का भागी होगा।'

कुञ्जरसिह क्रोध के मारे काँपने लगा। काँपते हुये स्वर में उसने कहा—'आप स्त्री हैं, यदि किसी पुरुष ने यह बात कही होती, तो अपने खड्ग से उसका उत्तर देता।'

रानी का हाथ अपने हथियार पर गया ही था कि दौड़ता हुआ रामदयाल आया। यकायक बोला—'हम लोग घिर गये है।'

'किनसे ?' कुञ्जरसिह और रानी दोनो ने पूछा।

उसने उत्तर दिया—'लोचनसिह की सेना का एक भाग सिधु-नदी के उस पार वन मे उत्तर की ओर बहुत निकट आ गया है। दक्षिण और पश्चिम की ओर से भी एक बडी सेना आ रही है।'

दाँत पीसकर बोली—'कुञ्जरसिह, कुञ्जरसिह जाओ। अब मेरे सामने मत आना।'

कुञ्जरसिह यह कहता हुआ वहाँ से चला गया—'मै क़िला छोड़कर बाहर नही जाऊँगा।'

रानी ने रामदयाल से विस्तारपूर्वक हाल सुना। उसे इस बात पर बड़ी कुढन हुई कि दो-तीन दिन यो ही नष्ट करके लोचनसिह को इतने

निकट चले आने का मौका दिया। कदाचित् सारा कोप कुञ्जरसिंह के ऊपर केन्द्रित हो गया।

अपने विश्वास-पात्र रामदयाल से बोली--'तुझे अपना प्रण याद है?'

'हाँ, महाराज।'

'कब पूरा करेगा?'

'सिंहगढ के युद्ध के उपरान्त अवसर मिलते ही तुरन्त।'

'अभी चला जा। जैसे बने, राजधानी मे उसका गला काट डाल। यदि सब मारे जायँ और अकेला जनार्दन बचा रहे, तो शान्ति न होगी।'

'चरणो को अकेला नही छोड सकता। कुञ्जरसिंह राजा के स्वार्थ का मुझे बहुत भय है।'

रानी इस उत्तर को सुनकर कुछ देर चुप रही, फिर बोली—'अच्छा, अभी यही बना रह। कुञ्जरसिंह के ऊपर निगरानी रखने के लिये सेनापति से कह दे।'

रामदयाल ने स्वीकार किया।

[३४]

कुञ्जरसिंह ने अपने सब आदमी इकट्ठे करके सिन्धु नदी की ओर उत्तरवाले छोटे फाटक के आस-पास फैला दिये और उन्हे अपनी स्थिति समझा दी। वे लोग बहुत नही थे, परन्तु आज्ञाकारी थे।

इतना करके अलीमर्दान के पास गया। 'नवाब साहब' कुञ्जरसिंह ने साधारण शिष्टाचार के बाद कहा—'लोचनसिंह का विरोध बडी सावधानी और कडाई के साथ करना पड़ेगा। उस-सरीखा रण-शूर और रण-चतुर कठिनाई से कही और मिलेगा।'

'जरूर होगा।' अलीमर्दान ने रुखाई के साथ कहा—'जब दुश्मन उसको बखान करते है, तो ऐसा ही होगा और इसमे कोई सन्देह नही कि देवीसिंह की सेना मे हम लोगों-जैसे काहिल बहुत कम होगे।'

कुञ्जरसिंह इस प्रकट व्यंग से पीड़ित नहीं हुआ—कम-से-कम ऐसा उसकी आकृति से जाहिर नही होता था। बोला—'यह अच्छा हुआ कि हम लोगों ने अपनी सेना को अनेक भागों में खण्डित नही किया।' कुञ्जरसिंह ने कहा—'अन्यथा इस समय हाथ मे कुछ भी न रहता, पर खैर, अब गई-गुजरी बातें छोड़कर लोचनसिंह के मुकाबले की तैयारी कीजिये।'

अलीमर्दान ने कहा—'वह अच्छी तरह हो गई है। आप, कालेखाँ और रानी साहबा किले के भीतर से लड़े और मैं बाहर से लड़ूँगा। सब लोग भीतर बैठकर लड़ेंगे, तो एक तरह से कैदियोंकी-सी हालत हो जायगी।'

'मुझे यह सलाह पसंद है।' कुञ्जरसिंह ने एक क्षण सोचने का भाव दिखलाते हुये कहा।

वह बोला—'आप किले की लड़ाई बहुत पसंद करते हैं, इसलिये मैंने यही तय किया है।'

अलीमर्दान ने 'यही तय किया है,' इस बात को सुनकर कुञ्जरसिंह को बहुत सुख नही मिला।

वह अपने स्थान पर चला गया। थोड़े ही समय में उसे ज्ञात हो गया कि गढ का नायकत्व उसके हाथ मे नही है और रानी के नाम की ओट में अलीमर्दान सेनापतित्व कर रहा है।

उसके छोटे से दल को भी यह बात विदित हो गई। अपनी प्रभुता के मद, अपनी आजादी के नशे मे वह।पहले जिस आने वाली मौत को दोनो हाथो झेलने के लिये तैयार था, अब उसके साक्षात्कार में उस उन्माद का अनुभव न कर सका।

[३५]

लोचनसिंह एक बड़ी सेना लेकर तूफान की तेजी की तरह सिंहगढ़ पर चढ आया। चक्कर दिलवाकर उसने अपनी सेना का एक भाग सिंधु उस पार किले के ठीक उत्तर मे भेज दिया।

अलीमर्दान ने गढ से बाहर निकलकर उसका सामना किया। दो दिन की लडाई मे दोनों ओर के बहुत आदमी मारे गये। बार-बार लोचनसिंह विरोधी दल को गढ़ मे भगा देने की चेष्टा करता था और अलीमर्दान उसे विफल-प्रयत्न कर डालता था। तीसरे दिन लोचनसिंह ने निरंतर आक्रमण जारी रखने के लिये अपनी सेना के अनेक दल बनाये, जो बारी-बारी से जागते, सोते और युद्ध करते थे। यद्यपि यह योजना बिलकुल सही तौर से अमल मे न आ सकी, परंतु बहुत अंशों मे सफल हुई और एक दिन रात की लड़ाई में उसका प्रभाव अलीमर्दान की पीछे हटती हुई सेना पर पड़ा हुआ दिखलाई देने लगा। गढ अभी लोचनसिंह से दूर था। थोड़ा-सा पीछे हटकर अलीमर्दान खूब ज़मकर लड़ने लगा। दिन-भर बहुत जोर की लड़ाई हुई। संध्या से जरा पहले उसकी कुल सेना दाएँ-बाएँ कटकर बहुत तेजी के साथ लड़ते-लडते भाग गई। आध-आध मील पश्चिम और पूर्व दिशाओं मे भागने के बाद दूर पर एक जगह इकट्ठी होने लगी।

इस आकस्मिक दौड़-धूप मे लोचनसिंह की सेना भी तितर-बितर हो गई। अन्धेरा हो जाने के कारण दूर तक पीछा न कर सकी और लौट पड़ी। अलीमर्दान की सेना ने थोड़ी दूर पर सामने इकट्ठे होकर गोला-बारी शुरू कर दी, परतु घड़ी-दो-घड़ी बाद शांत हो गई।

लोचनसिंह की समझ मे यह रहस्य न आया। थोड़ी देर सोचने के बाद उसने निश्चय किया कि अलीमर्दान क़िले मे जा घुसा है, परंतु सामने कही-कही आग का प्रकाश देखकर उसका भ्रम दूर हो गया। विश्राम-प्राप्त दल को लेकर उसने तुरंत हमला करने का निश्चय किया। लोचनसिंह के निश्चय को मिटाने या ढीला करने की सामर्थ्य सेना मे

किसी को न थी, यद्यपि विश्राम-प्राप्त सैनिक भी और अधिक विश्राम-प्राप्त करने के आकांक्षी थे।

घुड़सवारो ने आक्रमण किया। आक्रमण का वेग पहले कम फिर प्रचड हो उठा। जो घुड़सवार आगे थे, एक स्थान पर जाकर यकायक रुक गये। एकबारगी चिल्लाये—'मत बढो, धोखा है।' और बहुत-से सवारों का चीत्कार और घोड़ों के मर्माहत होने का स्वर सुनाई पडा। तुरंत ही बन्दूको की बाढ-पर-बाढ दगने लगी।

गोलियो की भनभनाहट के बीचोबीच लोछनसिह अपना घोड़ा दौडाता हुआ उसी स्थान पर पहुचा। देखा, सामने एक बडी गहरी और चौडी अंधी खाई है, जिसमें पडे-पडे घोडे अपने टूटे सिर-पैर फडाफडा और घायल सिपाही कराह रहे हैं।

घोड़े का लगाम हाथ में पकड़े हुये, घुटने टेके हुये एक सैनिक से लोचनसिह ने पूछा—'इसमे कितने खप गये होगे?'

'सैकडो।' उत्तर मिला।

'इसी स्थान पर?'

'इसी स्थान पर।'

'मैं लोचनसिह हूँ।'

'चामुंडरायजू, जुहार।'

'मेरे पीछे आओ। सब आओ।'

'मौत के मुँह मे?'

'नही, मौत के मुँह से बचाने के लिये। अभागे, सब खाई में कूद पडो।'

लोचनसिंह की आज्ञा पर कोई सैनिक खाई मे नही कूदा।

लोचनसिंह के शरीर मे मानो आग लग गई। परन्तु वह अपने सैनिकों को प्यार करता था, इसलिये उसने अपने कोप का किसी को लक्ष्य नही बनाया। परन्तु शीघ्र कुछ करना था, इसलिये अपने पास तुरंतु थोडे-से सैनिक इकट्ठे कर लिये।

बोला—'साफा मेरी कमर में बाँधकर नीचे लटका दो। मै वहाँ की दशा देखता हू। उसके बाद घोड़ों को छोड़कर और लोग भी इसी तरह

उतर आओ। घोड़ों की लोथों और आदमियों की लाशों को इकट्ठा करके गड्ढा पाट दो, और मार्ग बनाकर खाई को पार कर लो। एक घंटे के भीतर सिंहगढ़ हाथ में आ जायगा। मैंने निश्चय किया है कि आज वही सोऊँगा।'

लोचनसिंह को नीचे अकेले न जाना पड़ा। कई सैनिक इसके लिये तैयार हो गये, परन्तु लोचनसिंह सबसे पहले नीचे उतरा। नीचे जाकर, इन लोगों ने लाशों का ढेर लगाकर खाई में एक सकरी रास्ता बना ली, पर वह इतनी बड़ी थी कि दो-तीन सवार एक साथ निकल सकते थे। दूसरी ओर से बदूकें चल रही थी, परंतु लोचनसिंह आगे और उसके सवार पीछे-पीछे खाई पार करके दूसरी ओर पहुँच गये। अलीमर्दान ने कल्पना नही की थी कि लोचनसिंह की सेना खाई पार करके इतनी शीघ्र आ जायगी। उसने इस खाई के पश्चिमी तथा पूर्वीय सिरो पर ब्यूह बना लिया था और बीच की पाँत को जरा पीछे हटाकर जमा किया था। सिरे वाली टुकड़ियो ने उसके बँधे हुये इशारे पर काम नही कर पाया; नही तो जिस समय आरंभ मे ही लोचनसिंह के बहुत से योद्धा खाई मे गिरे और शोर हुआ, सिरेवाली टुकड़ियाँ इन पर दोनों ओर से हमला कर देती और लोचनसिंह की सेना का एक बहुत बड़ा भाग बहुत थोड़ी देर मे नष्ट हो जाता। लोचनसिंह की सेना व एक बड़े दल ने खाई पार करके तुमुल-ध्वनि के साथ जय-जयकार किया। खाई के उसी तरफ़ पीछे जो लोग रह गये थे, उन्होने भी जयकार किया। किले के ऊपर से तोपे गोले उगलने लगी। खाई के दोनो सिरो की टुकडियाँ क़िले की ओर भागी। इस गोल-माल में अलीमर्दान की बीच की पाँत भी पीछे हटी। क़िले की तोपो ने शत्रु और मित्र का भेद न पहचाना। दोनों दलो के अनेक लोग इन गोलो से चकनाचूर हो गये।

अलीमर्दान ने क़िले के भीतर घुसकर युद्ध करना पसन्द नही किया। वह पूर्व की ओर दूरी पर अपनी सेना लेकर चला गया। यद्यपि वह चतुराई के साथ पीछे हटने में बड़ा दक्ष था, परंतु इस लड़ाई मे उनका नुकसान हुआ।

[३६]

लोचनसिंह की विजयिनी सेना किले की ओर बढती गई। खाई के सिरों की अलीमर्दान की जो टुकड़ियाँ किले की ओर भागी, उनके लिये द्वार न खुल पाया। उत्तर की ओर से लोचनसिंह के दूसरे दस्ते ने ज़ोर का धावा किया। कुञ्जरसिंह के दल ने यथाशक्ति उत्तर की ओर से आनेवाली बाढ़ का प्रतिरोध किया, परतु कुछ न बन पडा वह दल उस ओर से किले के भीतर घुस आया। कुन्जरसिर ने अपने साथियो सहित लड़कर मर जाने की ठानी।

उसी समय रामदयाल कुञ्जरसिंह के पास आया। बोला—'राजा, महारानी के महलो पर चलकर लडो। यह स्थान घिर गया है। कालेखाँ फाटक पर लड़ रहे हैं। उस तरफ से दुश्मन की फौज दाबे चली आ रही है। यदि फाटक खोलते हैं, तो भीतर-बाहर सब ओर वैरी का लोहा बज जायगा।'

कुञ्जरसिंह ने कहा—'महारानी जितने सिर कटवा सकती हैं, उतने बचा नही सकती, इस जगह लडना व्यर्थ है; मैं तो बाहर जाकर लड़ूंगा।'

'स्त्री की पुकार ? और वह आपकी माँ भी होती हैं।'

'उन्होने हम सबको इस दुर्दशा को पहुचाया।'

'फिर भी माँ हैं। राजा नायकसिह की रानी हैं। याद कर लीजिये। माँ के ऋण से उऋण होना है। अन्य सब बातो को भूल जाइये।'

'जो कुछ कहना है, वह तुमसे कह दिया। जाकर कह दो। वह स्त्री नही हैं। स्त्री वेश में प्रचण्ड पुरुष हैं। यदि उन्हे अपनी रक्षा की चिंता हो, तो मेरे साथ चलें। जाओ।'

यह कहकर कुञ्जरसिंह अपने आदमियो को लेकर चलने को हुआ—इतने मे कालेखाँ आ गया। बोला—'कुञ्जरसिंह, तुमने हमारा सत्यानाश किया। कहाँ जाते हो ?'

'जहाँ इच्छा होगी, वहाँ ?'

'यह नही हो सकता। मैं कोटपाल हूँ। मेरा हुकुम मानना होगा, न मानोगे सजा पाओगे।'

कुञ्जरसिंह नंगी तलवार हाथ में लिये था। बोला—'दण्ड-विधान मेरे हाथ मे है। जाओ, अपना काम देखो। गढ और राज्य का मालिक मैं हू और कुछ फिर कभी बतलाऊँगा।'

कुञ्जरसिंह चला गया। कालेखाँ चिल्लाया—'पकड़ो, पकड़ो।'

रामदयाल ने भी वही पुकार लगाई। लोचनसिंह की सेना के जो सैनिक गढ़ के भीतर आ गये थे, वे कालेखाँ की ओर झपटे। वह तो लडता हुआ किले की दक्षिण ओर निकल गया, परन्तु रामदयाल पकड़ा गया। उसने घिघियाकर प्राण-रक्षा की प्रार्थना की—'मैं तो नौकर हूँ, सिपाही नही हूँ, मुझे मत मारो।'

सिपाहियों ने उसे कैद कर लिया।

उधर से हल्ला कर के लोचनसिंह की सेना ने गढ का सदर फाटक तोड़ डाला। कालेखाँ की सेना घमासान युद्ध करने लगी, परंतु लोचनसिंह को पीछे न हटा सकी। कालेखाँ कुछ सिपाहियो को लेकर किले से बाहर निकल गया। उसकी शेष सेना का अधिकांश मारा गया, जो नहीं लड़े, वे कैद कर लिये गये।

रामदयाल पहले ही कैद कर लिया था। लोचनसिंह ने रानी को भी कैद कर लिया।

मशालो की रोशनी में किले का प्रबन्ध करके लोचनसिंह ने किले के भीतर और बाहर सेना को नियुक्त किया। एक दल कालेखां का पीछा करने के लिये भी भेजा। अलीमर्दान भी स्थिति को समझकर वहाँ से दूर चला गया। कालेखा अपने बचे-खुचे आदमी लेकर उससे जा मिला और दोनों अपने पालर वाले दस्ते से कई कोस के फासले पर कुछ समय उपरांत जा मिले। उस रात लोचनसिंह सिंहगढ़ मे तो पहुंच गया, परंतु सो नही सका।

[३७]

राजा देवीसिंह ने अलीमर्दान के पालर वाले दस्ते को हटाकर ही चैन नही लिया, बल्कि इस बात का प्रबन्ध करने की भी चेष्टा की कि वह लौटकर फिर उपद्रव न करे। राजधानी सुरक्षित थी। सिंहगढ़ विजय का समाचार पाकर उसने दलीपनगर की सीमा को बचाव के लिये दृढ करना आरम्भ कर दिया। उधर लोचनसिंह को उचित धन्यवाद देते हुये आदेश भेजा।

लोचनसिंह ने इसे पाकर रामदयाल को बुलाया। कैद मे था, पहरेदारों के साथ आया। लोचनसिंह ने कहा—'छोटी रानी से मिलना चाहता हूं। थोड़ी देर मे आता हूँ। कागज़ कलम-दावात तैयार रक्खे।'

रामदयाल लौटा दिया गया। थोड़ी देर बाद लोचनसिंह गया। पर्दे में बैठी हुई रानी से बातचीत होने लगी।

रानी ने कहा—'जो हुकुम तुमने अपने डेरे पर मेरे नौकर को बुलाकर दिया, उसे किसी से यही कहलवा भेजते, क्यो मेरा हल्कापन करते हो ?'

'मैं नौकरों के डेरो पर नही जाता। और क्या ठीक था, जो कुछ किसी के द्वारा कहलवा भेजता, उसे माना जाता या नही ?'

'यह नौकरो का डेरा है लोचनसिंह ?'

'यह न सही, वह तो है। अब मैं जिस काम से आया हूं, वह सुन लीजिये।'

'क्या ? सिर काटने के लिये।'

'यह काम मेरा नही और न मैं इसके लिये आया ही हूँ। कलम, दावात, कागज़ मौजूद है ?'

'नही है। काहे के लिये चाहिये ?'

लोचनसिंह ने बहुत शिष्टाचार के साथ बतलाने की कोशिश की, परंतु फिर भी उसके स्वर में काफी कठोरता थी। बोला—'आपको कागज़ पर यह लिखना होगा कि दलीपनगर-राज्य से आपको कोई वास्ता नही।'

'किसकी आज्ञा से ?' रानी ने कांपते हुये स्वर में पूछा।

'राजा की आज्ञा से।' उत्तर मिला।

'राजा की आज्ञा से।' बड़ी घृणा के साथ रानी बोली—'उस भिखमंगे की आज्ञा से! जाओ, उससे कह दो कि मैं रानी हूं, राज्य की स्वामिनी हूँ। वह लुटेरा और जनार्दन विश्वासघाती हैं, चोर हैं, मैं तुम सबों की दण्ड की व्यवस्था करूँगी।'

'तुम अब रानी नही हो।' लोचनसिंह ने उत्तेजित होकर कहा—'स्त्री हो, नहीं तो—" लोचनसिंह वाक्य पूरा नही कर पाया। अपने आवेश में डूबकर रह गया।

रानी बोली—'लोचनसिंह, लोचनसिंह, कोई स्त्री तुम्हारी भी माँ रही होगी परतु तुम किसी के न होकर रहे। मेरे स्वामी के लिये तुम अपना सिर दे डालने की डीग मारा करते थे। झूठे, घमंडी, इस छिछोरे का अञ्जलि-भर अन्न खाते ही तू अपने पुराने स्वामी को भूल गया! हट जा मेरे सामने से।'

लोचनसिंह ने इस तरह के कुवचन अपने जीवन में कभी न सुने थे। तिलमिला गया।

बोला—'सच मानो रानी, अपने पूर्व राजा की याद ही मेरे खड्ग को इस समय रोके हुये है, नही तो ऐसा अपमान करके कोई भी स्त्री-पुरुष मेरे हाथ से नही बच सकता था। तुम कैद मे हो, इसलिये भी अवध्य हो और इसीलिये तुम्हारी जबान इतनी तेज़ चल रही है। राजा को सब हाल लिखे देता हूं। वह यदि तुम्हे प्राण-दण्ड भी देंगे, तो मैं कोई निषेध नही करूँगा।'

लोचनसिंह बहुत खिन्न, बहुत क्लांत वहाँ से चला गया; परन्तु रानी कहती रही—'देखूँगी, देखूँगी, कैसे देवीसिंह राजा बना रह सकता है ? सबको सूली न दी या कतर न डाला, तो मेरा नाम नही। इन नमकहरामो का माँस यदि कुत्तो से न नुचवा पाया, तो जान लूँगी कि संसार से धर्म बिलकुल उठ गया।'

उस दिन से लोचनसिंह ने रानी का पहरा बहुत कड़ा कर दिया ?

[३८]

लोचनसिंह से खबर पाकर राजा देवीसिंह ने रानी को रामदयाल समेत दलीपनगर बुलवा लिया और लोचनसिंह को सिंहगढ की रक्षा के लिये वहीं रहने दिया।

देवीसिंह अपनी सेना को एक सरदार की मातहती मे छोडकर दलीपनगर आ गया। उस दिन जनार्दन के साथ बातचीत हुई।

राजा ने कहा—'लोचनसिंह ने रानी के साथ बहुत कड़ाई का बर्ताव किया है, परन्तु इसमें दोष मेरा है, मुझे लिखा-पढी कराने का काम लोचनसिंह के हाथ में न देना चाहिये था। तुम्हारे हाथ में होता, तो सुभीते के साथ हो जाता।'

'नही महाराज।' जनार्दन बोला—'मुझी पर तो रानी का पूरा कोप है। उन्होने मुझे मरवा डालने का प्रण किया है। मेरे द्वारा वह काम और भी दुष्कार होता।'

राजा ने हँसकर कहा—'वह तो इस समग्र संसार को दूसरे लोक में उठा भेजने की धमकी देती हैं। मैं ऐसे पागलो की बहक की कुछ भी परवा नही करता। मैं चाहता हूं, रानी का अब किसी तरह का अपमान न किया जाय और पहरा बहुत हल्का कर दिया जाय। वह राजमाता हैं। आदर की पात्री हैं। केवल इतनी देखभाल की जरूरत है, जिसमें संकट उपस्थित न कर सके।'

'यह बात जरा कठिन है महाराज! पहरा कठोर न होगा, किसी दिन पूर्ववत् महल से निकल भागकर विद्रोह खडा कर देंगी।' जनार्दन दृढता के साथ बोला।

राजा ने एक क्षण सोचकर कहा—'तब उन्हे बड़ी रानी के महलो मे एक ओर रख दो। वहाँ पहले ही से बहुत नौकर-चाकर और सैनिक रहते हैं। पहरा काफी बना रहेगा और रानी को खटकने न पावेगा।'

इस प्रस्ताव को ध्यानपूर्वक न सोचकर जनार्दन ने स्वीकार कर लिया।

राजा बोले—'और यदि वह लिखा-पढ़ी न कराई जाय, तो क्या होगी ? सब जानते हैं, मैं राजा हूँ। एक रानी के मानने या न मानने से क्या अन्तर पडेगा ?'

'जो लोग महाराज !' जनार्दन ने उत्तर दिया—'भीतर-ही-भीतर राज्य से फिरे हुये हैं, उनके लिये लिखा-पढ़ी अमोघ अस्त्र का काम देगी। डाँवाडोल तबियत के आदमियो के लिये इतना ही सहारा बहुत हो जायगा।'

राजा ने कुछ उत्तर नही दिया। इसके बाद दोनो छोटी रानी के पास गये। वहाँ पहुंचने के पहले देवीसिंह ने कहा—'पंडित जी, बात-चीत आपको करनी पड़ेगी। मै बहुत कम बोलूँगा।'

जनार्दन को कुछ कहने का मौका न मिला। दोनो रानी के पास पहुँच गये। रानी पर्दे में थी। राजा ने देहरी पर माथा टेककर प्रणाम किया। रानी ने आशीर्वाद नही दिया।

बोली—'जनार्दन को यहाँ से हटा दो।'

देवीसिंह इस तरह के अभिवादन की आशा नही रखता था। सन्नाटे मे आ गया। उसे अवाक् होता देख जनार्दन आगे बढा। कहने लगा—'मेरे ऊपर आपका जो रोष है, सो उचित ही है, परन्तु यदि आप विचार करें, तो समझ में आ जायगा कि वास्तव में मेरा अपराध कुछ नहीं और मान लिया जाय कि मैं अपराधी ही हूं, तो भी आपको माता के बराबर मानता हूं, इसलिये क्षमा के योग्य हूं। मैंने जो कुछ किया है, राज्य के उपकार के लिये किया है—'

रानी ने टोककर कहा—'हम जो दर-दर मारे-मारे फिर रहे हैं, हमारे साथ जो छोटे-छोटे आदमी पशुओं-जैसा बर्ताव कर रहे हैं, हमें जो बन्दी-गृह में डाल रक्खा है, वह सब राज्य का उपकार ही है न पण्डित जी ? स्मरण रखना, इस लोक के बाद भी कुछ और है और देर-सवेर वही जाओगे।'

'सो मुझे सब मालूम है।' जनार्दन ने कहा—'आपकी मेरे ऊपर जैसी कुछ दया-दृष्टि है, वह भली-भाँति प्रकट है, परन्तु प्रार्थना है कि अब ऐसा निर्देश कीजिए, जिसमें राज्य का कुशल-मगल हो।'

राजा ने जनार्दन से पूछा—'रामदयाल कहाँ है ?'

रानी ने तुरन्त उत्तर दिया—'कैदखाने मे पैकरे डाले हुए और मुझे जितनी स्वतन्त्रता दे रक्खी है, उसका बडप्पन इससे नापा जा सकता है कि स्नान करते समय भी दो-तीन बाँदियाँ नंगी तलवार लिये सिर पर तनी रहती हैं। एक शूरवीरता का काम तुम लोगो के लिये रह गया है—मुझे विष दिलवा दो, या तलवार से काटवाकर फिकवा दो।'

जनार्दन कुछ कहना चाहता था, परन्तु राजा ने आँख के संकेत से मना कर दिया और स्वय बोला—'रामदयाल को मैं इसी समय मुक्त करता हूँ। वह सदा आपकी चाकरी मे रहेगा और आप बडी कक्कोजू वाले महल में चली जायँ।'

'न।' रानी ने कहा—'मैं इसी कैदखाने में अच्छी, जो पहले मेरा ही महल था, आज यातना-गृह हो गया है। इसी मे बने रहने से तुम लोगो की शुभ कामना अच्छी तरह पूर्ण हो सकेगी। मैं यहाँ से नही जाऊंगी।'

'जाना होगा।' राजा बोले—'कक्कोजू, यदि तुम यहाँ से उस महल में न जाओगी, तो मैं सेवा करने के लिये इसी स्थान पर आ रहूगा।'

रानी कुछ देर चुप रही।

जनार्दन ने कहा—'आप इसे भी हम लोगों के किसी स्वार्थ की प्रेरणा समझेंगी। परतु कृपा करके आप शाति के साथ रहियेगा। सोचिये, आपने इस राज्य के नाश करने में कोई कसर उठा नही रक्खी। अलीमर्दान को बुलवाया, जो पालर के मदिर का नाश करने के लिये कटिवद्ध रहा है, जो दुर्गा के अवतार को भ्रष्ट करने का निश्चय करके आया था। आप यदि यही रहना पसंद करती हैं, तो बनी रहे, किया ही क्या जा सकता है ?'

'झूठ, झूठ, सब झूठ।' रानी ने कड़ककर कहा—'यह सब जनार्दन का रचा हुआ माया-जाल है। किसी तरह तुम्ही ने मेरे स्वामी को दवा दे-देकर अधोगति को पहुंचाया, न जाने क्या लिखा-लिखाकर फिर रोग-मुक्त न होने दिया, और अंत मे प्राण लेकर ही रहे और फिर—' रानी का गला रुंध गया।

राजा बीच मे पड़ना चाहते थे, पर यह समझ मे न आता था कि इस अवसर पर किस तरह बात को टालकर सांत्वना दी जाय।

जनार्दन ने कहने का निश्चय कर लिया और बोला—'और फिर क्या रानी? राजा ने जो कुछ आज्ञा दी, उसका मैंने पालन किया। जिसके भाग्य मे भगवान ने राज्य लिखा था, उसे मिला; आप यों ही हम लोगों की जान की गाहक बन बैठी हैं। महाराज आपके सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करने की योजना करते हैं, तो आप व्यर्थ अपने कष्टों को बढ़ाने की चिन्ता में निरत हो जाती हैं।'

राजा ने कहा—'मैंने रामदयाल को मुक्त कर दिया है। आप उसे तुरन्त यहाँ भेजे।'

जनार्दन रामदयाल को लेने के लिये गया।

राजा ने कहा—'कक्कोजू, आप पण्डित जी पर क्रोध न करें। राज्य सम्भालने के लिये उन्हे अपना काम करना पड़ता है।'

'कक्कोजू मुझे मत कहो।' रानी ने रोते हुये कहा—'मैं राजा की रानी हूँ और तुम्हारी कोई नही। यदि कोई होती, तो क्या लोचनसिंह इत्यादि मेरा ऐसा अपमान कर पाते?'

जो कुछ हुआ, वह अनिवार्य था कक्कोजू। राजा बोले—'जो कुछ हुआ, उसका स्मरण छोड़ दीजिये। आगे जो कुछ करूँगा, आपकी आज्ञा से।'

'जिसमे मैं तुम्हे लिखा-पढी कर दूँ कि राज्य का हक छोड़ दिया।' रानी ने रोना बन्द करके, चमककर कहा—'यही है न तुम्हारी दयालुता के मूल में?'

राजा ने इसका कुछ उत्तर नही दिया। बांदियो से रानी के आराम के विषय में बातचीत करने लगे। इतने मे रामदयाल को लेकर जनार्दन आ गया।

राजा ने रामदयाल से कहा—'कक्कोजू को बडी कक्कोजू वाले महल मे पहुँचा दो। उन्हें यदि किसी तरह का कष्ट हुआ, तो तुम्हे संकट मे पड़ना होगा।'

रानी बोली—'तुम उसकी खाल खिचवाओ और जनार्दन मेरी खाल खिचवाये।'

इस व्यंग्य का कोई प्रतिवाद न करके दोनो वहाँ से चले गये।

[३९]

बड़ी रानी के महल में छोटी रानी को रखने के बाद जनार्दन ने सोचा, अच्छा नही किया। एक तो यह कि छोटी रानी शायद उन्हे भी विचलित करने की कोशिश करे, और दूसरे यह कि वहाँ निकल भागने का अधिक सुभीता था। उसे इस बात का पछतावा था कि राजा की भावुकता का नियत्रण न कर पाया और स्वयं भी एक छोटे-से कष्ट से बचने के लिये दूसरे बड़े सकट में जा पड़ा।

राजा ने छोटी रानी को बड़ी रानी के भवन में भेज देने के बाद पहरा शिथिल कर दिया और रामदयाल को उनकी सेवा मे बने रहने की अनुमति दे दी। जो लोग बड़ी रानी की टहल मे रहते थे, उन्ही से छोटी रानी पर निगरानी रखने के लिये चुपचाप कह दिया।

परंतु निगरानी नही हुई। राजा के साथ उस दिन जो वार्तालाप छोटी रानी का हुआ था, वह लोगो पर प्रकट हो गया। उसी के बाद पहरा ढीला कर दिया गया था। किसे क्या पड़ी थी कि प्रकट व्यवहार को भूलकर गुप्त आदेश का अक्षरशः अनुसरण करे। जिन लोगों को यह काम सौपा गया था, उन्हे यह भी भय था कि यदि कोई बात राजा की मर्जी के खिलाफ़ हो गई, तो जान पर बन आवेगी और राजा की मर्जी कब क्या है, इस बात का पता लगा लेना किसी साधारण टहलुये या सिपाही के लिये संभव नही था।

इस गलती को जनार्दन ने राजा को सुझाया भी, परंतु उन्होने यह कहकर जनार्दन को शान्त करने की चेष्टा की कि विश्वास करने से विश्वास उत्पन्न होता है। जनार्दन ने ऊपर से तो कुछ नही कहा, परन्तु विश्वस्त गुप्तचर नियुक्त कर दिये। महल के टहलुओ में से इन्हे कोई-कोई पहचानते थे। गुप्तचरों के विषय ने परस्पर काना—फूसी हुई, वास्तविक स्थिति का अनुमान करने के लिये इधर-उधर के अटकल लगे, चर्चा बढ़ी। रामदयाल को भी मालूम हो गया। दोनो रानियों के लिये भी वह भेद रहस्य न रह गया। छोटी रानी को विश्वास हो गया कि देवीसिंह इस

क्रूरता के लिये जिम्मेदार नही है, बल्कि जनार्दन--पुराना शत्रु जनार्दन—है। बड़ी रानी को अपने भवन में छोटी रानी का आगमन अच्छा नही मालूम हुआ। राजा ने क्यों ऐसा किया? जनार्दन का इसमें क्या मतलब है? मेरे ही महल में क्यो इस विपद् को रक्खा? इत्यादि प्रश्न बड़ी रानी के मन मे उठने लगे।

बडी रानी का स्वभाव गिरती पाली का साथ देने का न था, परन्तु अपने पूर्व वैभव की स्मृति को जाग-जाग पड़ने से रोकना किसकी सामर्थ्य में है? छोटी रानी के लिये उनके हृदय मे शायद ही कभी प्रेम रहा हो, परन्तु उनके कष्टो और अपमानो की बढी हुई, बहुत बढाई हुई, गाथा सुनकर मन खीझने लगा। उस क्षोभ का वह किसी को भी लक्ष्य नही बनाना चाहती थी। राजा देवीसिंह की ओर उनके मन की प्रवृत्ति सधि की तरफ हो चुकी थी और उन्होने अपनी वर्तमान अनिवार्य स्थिति के ऊपर क़रीब-क़रीब काबू कर लिया था। परन्तु उजड़े हुये गौरव को लुटा हुआ बतलाने वालों की कमी न थी। दलित महत्वाकाँक्षा का पुरा हुआ घाव कभी-कभी हरा होकर निःश्वास के रूप मे गल-गलकर बाहर आ जाता था।

छोटी रानी की उपस्थिति ने खीझ, क्षोभ और दलित हृदय की आहों का सिलसिला जारी कर दिया। मन की इस अवस्था में जनार्दन के गुप्तचरो की चिनगारी के समाचार ने उन्हे इस बात के सोचने पर विवश किया कि छोटी रानी को जैसा थोथा, आश्वासन, बिना किसी विघ्न-बाधा के जीवन-यापन कर लेने का दिया है, उसी तरह का मुझे भी दिया गया है, क्योंकि जिस तरह चुपचाप उनके ऊपर चौकसी रहती है, उसी तरह अवश्य ही मेरे ऊपर भी रहती होगी।

दो ही तीन दिन के बाद छोटी रानी से सलाह कर के रामदयाल बड़ी रानी के पास पहुचा। जब तक दासिया पास रही, तब तक वह केवल शिष्टाचार की बाते करता रहा। रानी समझ गई कि किसी गुप्तचर की उपस्थिति के कारण रामदयाल हृदय-तल की बात कहने से

झिझक रहा है। अपनी निज की दासियो मे भी कोई गुप्तचर नियुक्त हैं, इस कल्पना पर रानी का जी जल उठा। दासियों को हटाकर रानी ने रामदयाल के साथ अधिक स्वतन्त्र वार्तालाप की आशा की।

रामदयाल ने दासियो के चले जाने पर कहा—'वह आपसे छोटी हैं। आप क्या उनके किये न किये को क्षमा कर देगी ? जो दुःख आपको है, वही उन्हे भी है।'

ठण्डी साँस लेकर रानी ने कहा—'उनमे और सब गुण हैं, केवल एक वाणी उनके कावू मे होती, तो वृथा का झंझट आपस मे कभी न होता। उनके कष्ट और अपमान की वात सुनकर हृदय वैठ जाता है।'

रामदयाल ने इधर-उधर की वाते करने के सिवा उस समय और कुछ नही कहा।

जाते समय वोला—'यदि कक्कोजू आपके पास आये, तो क्या आपको अखरेगा ?'

बड़ी रानी की पूजा उनके स्वाभिमान के माप से अधिक हो गई। आँखे छलक पड़ी। रुद्ध कण्ठ से कहा—'वह क्या कोई और हैं ? अवश्य आवे।'

'वहुत अच्छा महाराज।' कहकर रामदयाल चला गया।

'महाराज' शब्द के सम्बोधन में खोखलेपन की पूरी झाईं अवगत करके बड़ी रानी को अपनी असमर्थ अवस्था पर परिताप हुआ।

[४०]

नियुक्त समय पर छोटी रानी बड़ी रानी के पास आई। बड़ी का चरण-स्पर्श द्वारा अभिवादन किया। बड़ी ने आशीर्वाद देना चाहा। क्या आशीश देती? कोई गुप्त वेदना हृदय मे जाग पड़ी और मुख पर आँसुओं की बूँद ढलक आई। छोटी रानी भी घूँघट मारे रोई, परन्तु बड़ी रानी को यह नही मालूम हुआ कि उनके आँसुओ ने घूँघट को भिगो पाया या नही।

बड़ी रानी की समझ मे जब कुछ समय तक यह न आया कि कौन सी बात पहले कहूँ, तब छोटी रानी बोली—'जो कुछ मुझसे बुरा-भला बना हो, उसे बिसार दिया जाय क्योंकि अब यह सोचना है कि इतने बड़े जीवन को कैसे छोटा किया जाय।'

बड़ी ने कहा—'मैं तो आज ही जीवन को समाप्त करने के लिये तैयार हू, अब और क्या देखना है, जिसके लिये जियूँ।'

छोटी रानी ने जरा घूँघट उघारा। बोली—'मैं केवल एक अनुष्ठान के लिये अब तक जीवन बनाये हुये हूँ। बात फैल भी गई है, परन्तु मुझे उसकी चिन्ता नही। आज्ञा हो, तो सुनाऊँ?'

'अवश्य, अवश्य।'

'जनार्दन हम लोगो के सर्वनाश की जड़ है।'

'अब उसकी चर्चा व्यर्थ है।'

'अब चर्चा अमिट है। क्या भूल गई, किस तरह से उसने महाराज के हस्ताक्षर का जाल किया? किस तरह उसने एक अनजान लड़के को अपना खिलौना बनाकर सारे राज्य की बागडोर अपने हाथ में रक्खी है?'

इन प्रश्नो का बड़ी रानी ने कोई उत्तर नही दिया। नीचा सिर कर लिया। छोटी रानी ने जरा धीमे होकर कहा—'असल में हम लोग राज्य के अधिकारी हैं। बिराने को अपनी संपत्ति भोगते देखकर छाती सुलग जाती है। यही मेरा दोष है, यही मेरा पाप है।'

'पर इसका प्रतिकार ही क्या हो सकता है ? जो भाग्य मे लिखा है, सो होकर रहेगा ?'

'हमारे भाग्य मे यह सब दुःख और जनार्दन के भाग्य मे हमारा अपमान करना ही लिखा है, यह अभी कैसे कहा जा सकता है ?'

बड़ी रानी छोटी का मुह ताकने लगी।

छोटी रानी ने उत्तेजित होकर कहा—'हमारे भाग्य मे राज्य लिखा है, प्रजा-पालन लिखा है और जनार्दन के भाग्य मे प्राण-वध का दड वदा है। मुझे देवी ने सपना दिया है।'

देवी के सपने की बात सुनकर बड़ी रानी बोली—'अलीमर्दान को तुमने क्यो निमन्त्रण दिया ? इसे लोग अच्छा नही कहते।'

'न कहे अच्छा।' छोटी ने कहा—'कष्टो से पार पाने के लिये मैंने उसके पास राखी भेजी थी। और क्या करती ?'

'वह देवी का मन्दिर तोड़ने आया है।'

'नही।'

'और मन्दिर की पुजारिन को, जो देवी का अवतार भी मानी जाती है, नष्ट करने।'

'इसमे बिलकुल तथ्य नही। हमारे विरुद्ध प्रजा को उभाड़ने के लिये ही जनार्दन इत्यादि ने यह षड़यन्त्र खड़ा किया है।'

'लोचनसिंह सौगन्ध खाकर कहता है।'

'ओह ! उस नीच, नराधम पशु की बात मत कहो। उस जैसी हृदय-हीनता पत्थर की शिलाओं मे भी न होगी। ऐसा मूर्ख, ऐसा अभिमानी—'

बड़ी रानी ने धीरे से छोटी रानी की उग्रता के बढ़ते हुये वेग को रोकने के लिये टोककर कहा—'अपने स्वभाव को अपने हाथ मे रक्खो। जो कुछ करो, समझ-बूझ कर करो। हमारे निर्बल हाथों मे कोई शक्ति नही। जो सरदार किसी समय तरफदार थे, उनके जी मुरझा गये हैं। अब कदाचित् कोई साथ न देगा।'

'यह सब पाजीपन जनार्दन का है।' छोटी रानी ने धारा-प्रवाह में कहा—'जिस समय सरदार मुझे नंगी तलवार लिये घोडी की पीठ पर देखेंगे, उस समय उनके बाहु फड़क उठेंगे। न्याय और धर्म का साथ देने में मनुष्यों को विलम्ब नही होता। बिखरी हुई, सोई हुई शक्तियाँ, मुर्झाई हुई अचेत आत्मायें धर्म के लिये सिमटकर प्रचण्ड रूप धारण करती हैं और—'

उद्दण्ड प्रबलता के इन काल्पनिक चित्रों से ज़रा भयभीत होकर बड़ी रानी बोली—'तुम ठीक कहती हो, परन्तु इस विषय पर फिर कभी शान्ति के साथ बातचीत होगी, तब तक सावधानी के साथ अपने मन मे रक्खो।'

'मैं किसी से नही डरती।' छोटी रानी ने कहा—'मन की बात मन में ही बन्द कर लेने से वह वही की होकर रह जाती है। आपको सीधा पाकर ही तो इन लोगो की बन आई है। आप कैसे इन लोगो की करतूतो को सहन करती हैं?'

इसका उत्तर बड़ी रानी ने एक लम्बी सांस लेकर दिया। थोड़ी देर में छोटी रानी चली गईं। बड़ी रानी ने सोचा—'यदि मैं छोटी के साथ अपनी शक्ति को मिला देती, तो ये दिन सिर पर न आते। मैं अपने को निस्सहाय, निराश्रय समझकर ही इस हीन दशा को पहुची हूँ।'

[४१]

कुञ्जरसिंह अपने साथियों को लेकर अँधेरे में सिंहगढ से निकल आया था। सिंधु-नदी के उत्तर ओर कई कोस तक दलीपनगर का राज्य था—वन और पर्वतो से आकीर्ण; परन्तु कोई दृढ़ किले उस ओर नही थे। जहाँ दलीपनगर की सीमा खत्म हुई थी, वहाँ से कालपी का सूवा शुरू हो गया था। उस ओर चले जाने पर दलीपनगर के दीर्घक्षेत्र से संबंध टूट जाता और कोई पक्का आश्रय मिलता नही। ऐसी दशा में उसने पूर्व की ओर पहूज और बेतवा नदियो के आस-पास ठहरकर अपनी टूटी हुई शक्ति को फिर से जोड़ने का निश्चय किया। उसके संगी भी राज़ी हो गये, परन्तु साथ बहुत थोड़ो ने दिया। गिरती हुई अवस्था मे भी आशा के बल पर साथी बलिदान करने के लिये अनुप्राणित रहते हैं, परन्तु निराशा की दशा मे बलिदान लगभग असंभव हो जाता है। इसलिये कुञ्जरसिंह के साथियो की संख्या क्रमशः कम होती चली गई।

सिंहगढ़ से निकलने के उपरांत दो-एक दिन भटकने में लग गये। शीघ्र किसी निश्चय पर पहुँच जाने का अभ्यास न होने के कारण कभी उत्तर और कभी पूर्व की ओर भटकते गये। पहूज के निकट की उर्वरा शस्य-श्यामला भूमि शीघ्र त्यागकर वन मे पहुचे। वहाँ भी एक आध दिन ही रह पाये। अंत मे २५-३० कोस की उद्देश्य-हीन यात्रा समाप्त करके इन लोगों ने बेनवा-किनारे के घोर वन और सुरक्षित गढ़ों की ओर दृष्टि डाली।

कुछ ही समय पहले प्रसिद्ध चपतराय ने बेतवा के जंगल-भर को और इन छोटे-छोटे किलों के आश्रय से मुगल-सम्राट् औरंगजेब की नाकों दम करके बुन्देलखंड की स्वाधीनता का अनुष्ठान किया था। अभी लोगों को वे दिन याद थे। कुञ्जरसिंह की धारणा और विचार पर भी उस स्मृति का प्रभाव पड़ा। उसने विराटा और रामनगर के पड़ोस मे अपनी योजना सफल करने की ठानी। इन गढ़ो के पड़ोस में वह पहुंच चुका था।

झाँसी से पूर्वोत्तर-कोण में बिराटा की गढी, जिसका अवशेष अब एक मंदिर-मात्र है पच्चीस मील की दूरी पर है। रामनगर और बिराटा में केवल कोस-भर का अंतर है। दोनों बेतवा के किनारे भयंकर वन में छिपे-से अर्द्ध-भग्नावस्था मे अब भी पडे हैं।

बिराटा से दो कोस दक्षिण-पश्चिम की ओर मुसावली एक छोटा-सा उजड़ा गाँव है। उन दिनो भी वह बडी जगह न थी। परंतु छिपाव और रक्षा का साधन वहाँ सदा रहा है। नालो और काँटेदार पेड़ो की विस्तृत भरमार है। मुसावली की पहाड़ी इस जंगल की ओट का काम करती है।

उन दिनो बिराटा मे दाँगी राजा राज्य करता था और रामनगर में एक बुन्देला सरदार रहता था। ये दोनो कभी पूर्ण स्वतंत्र नही रहे, परन्तु इनकी अधीनता भी नाम-मात्र की थी। कभी कालपी को कर देते थे, कभी ओरछा को और कभी किसी को भी नही।

औरंगज़ेब के काल तक ये लोग भाडेर या कालपी के मुगल-सूबेदार की मार्फत मुगल सम्राटो को कर चुकाते रहे। औरंगज़ेब की दक्षिण चढाइयों के समय शासन शिथिल हो गया। उसके मरने के उपरात जो राजनीतिक भूकंप आया उसमें ये लोग करीब-करीब स्वाधीन हो गये। स्वाधीनता-यज्ञ के बडे यजमानो का ये लोग साथ देते रहते थे, परन्तु स्वयं खुल्लमखुल्ला किसी शक्ति के कोप को उत्तेजित नही करते थे। इसीलिये इतने दिनो बचे रहे।

चपतराय ने ऐसे लोगो का खूब उपयोग किया था। कुञ्जरसिंह ने भी इनके उपयोग को ही अपना एक मात्र आश्रय निर्धारित किया।

परन्तु एकाएक इनमें से किसी के पास सहायता माँगने के लिये पहुँचना उसने उचित नही समझा।

उसने सोचा, मुसावली में पहुचकर स्थिति का निरीक्षण और बिराटा तथा रामनगर के सरदारो से मिलकर अपने बल की पुनः स्थापना करूँगा। यदि यह संभव न हुआ, तो बिराटा-वन के किसी अदृश्य स्थान

में भगवती दुर्गा का स्मरण करते-करते जीवन समाप्त कर दूँगा और अलीमर्दान इस स्थान पर किसी मतलब से चढ़ाई करे, तो उसके निरोध में शरीर त्याग करना राज्य-प्राप्ति से भी बढ़कर होगा। उसे मालूम था कि कुमुद कही बिराटा के आस-पास ही है।

परन्तु इस योजना मे कुञ्जरसिंह के बचे-खुचे सरदार ऊपर से ही सहमत हुये, भीतर से उन्हे इस योजना की अन्तिम सफलता पर कोई विश्वास न था। दो-तीन दिन बाद यह लोग भी अपने घरों को चले गये और समय आने पर सहायता करने का बचन दे गये।

अलीमर्दान को इस तरह की कठिनाइयों का सामना नही करना पड़ा। पालर वाले दस्ते को उसने झाँसी के उत्तर मे १०–१५ कोस के फासले पर पहूज के किनारो पर पा लिया। वहाँ से वह भांडेर चला गया। कालेखाँ भी उसे भांडेर में आकर मिल गया। वही से अलीमर्दान आगे की कतर ब्योंत का हिसाब लगाने लगा।

[४२]

कुञ्जरसिंह मुसावली मे एक अहीर के घर ठहर गया था। घर से लगा हुआ काँटो की विरवाई से घिरा एक बेडा था। उसमे कुञ्जरसिंह घोडा बाँधकर स्वय घर के एक कोने मे अकेला जा बसा।

विरवाई से लगे हुये ३-४ महुए के पेड थे। महुओ के पीछे से एक चक्करदार नाला निकला था। दूसरी ओर वह पहाडी थी, जो मुसावली-पाठा कहलाती है। एक ओर वीहड जगल। कुञ्जरसिंह महुओ के नीचे गया। अहीर की कुछ भैसे नाले के पास चर रही थी, कुछ महुए के नीचे ऊँघ रही थी। एक लडका कुछ धूप कुछ छाया मे सोता हुआ जानवरों की देख-भाल कर रहा था।

घास आधी हरी, आधी सूखी थी। करधई के पत्ते पीले पड-पडकर गिरने लगे थे। नाले का पानी अभी नही सूखा था—कुछ भैसे उसमे लोट-लोटकर शब्द कर रही थी। चिड़ियाँ इधर-से-उधर उडकर शोर कर रही थी। सूर्य की किरणो मे कुछ तेजी और हवा मे थोडी उष्णता आ गई थी। कुञ्जरसिंह अपने घोडे के सामने घास डालकर महुए के नीचे आया। जो भैसे दूर पर बैठी ऊँघ रही थी, यकायक उठ खडी हुईं। चरवाहे की आँख खुल गई। पास मे कुञ्जरसिंह को देखकर लडके ने उठाई हुई लाठी को नीचा कर लिया। बोला—'दाउजू, सीताराम।' प्रणाम का उत्तर देकर कुञ्जरसिंह पेड की जड़ से टिककर बैठ गया। लड़का बिना किसी संकोच के एकटक कुञ्जरसिंह की ओर देखने लगा। उस चरवाहे के शरीर पर फटी हुई अँगरखी थी। घुटन्ना चढाये मैला अंगौछा पहने था, आँखो मे एक निर्मल, निर्भय दृढता थी।

कुछ देर टकटकी लगाने के बाद बोला—'दाउजू, अबै दर्शन नई भये का ?'

लडके की सहज, सरल निर्भयता और प्रश्न की विचित्रता से जरा आकृष्ट होकर कुन्जरसिंह ने प्रश्न किया—'किसके दर्शन भाई ?'

'एल्लो ! हमई से टिटकरी करन आये ! दर्शन खों नई आये, इतै तौ कायके लानै आये इत्ती दूर से ? संसार-भर के राजाराव नित्त आउत रहत ।'

लड़ने के वेधडक सम्बोधन से कुञ्जरसिंह जरा चकराया, क्योंकि महल और किले के वातावरण में इस तरह की स्वच्छता उसने नही देखी थी। उसकी समझ में प्रश्न नही आया था, परन्तु उस प्रश्न ने किसी गुप्त कौतूहल को जागृत किया। कुजरसिंह उपेक्षा के भाव को छोड़कर बोला—'हम कितनी दूर से आये हैं, तुम्हे मालूम है ?'

'पालर सें ।'

'अच्छा, बतलाओ, हम किसके दर्शन के लिये आये हैं ?'

'जीके दर्शन खो हमाओ दद्दा कभउँ-कभउँ जात। कओ दाउजू, हमने जान लई कै नई ? हमखों कौन काऊ ने वताई, पै हम तो जान गये ।'

कुञ्जरसिंह चौक पडा। पालर से आना तो उसने ही चरवाहे के पिता को बतलाया था, परन्तु आने का प्रयोजन उसने कुछ और ही जाहिर किया था। कुञ्जरसिंह को अनुमान करने मे विलम्ब नही हुआ कि किसके दर्शन की ओर लड़के का भोला सकेत था। उससे कहा—'तुम्हारे साथ चलेंगे, कब जाओगे ?'

लड़ने ने उत्तर दिया—'जब चाये, तब। कौन दूर है ? इतै से दो कोस तो हैई। हमाई एक भैंस के दूध नई निकरत, सो बिनती के लाने कालई-परौं जैहैं। तुम जौ कछू माँगो, सौ तुमें सोऊ मिल जैय ।'

कुञ्जरसिंह के हृदय मे गुदगुदी पैदा हुई । उसने कल्पना की कि पूजा और बरदान का स्थान एक कोस पर बिराटा ही है। पूरा पता लगाने के प्रयोजन से पूछा—'रास्ता क्या बहुत बीहड़ मे होकर है ? यहाँ तो मन्दिर दिखाई नही देता।'

'पाठे पै होकें सब दिखात है ।' लड़का बोला—'बिराटा की गढी दिखात और देवी कौ मन्दिर दिखात। ठीक नदी के बीच मे विराजमान

हैं। ए दाउजू, हमने जब पैलउँपैल देखी, तब आँखें मिच गई हती। उनके नेत्रन में से झार-सी निकर रई हती।'

कुञ्जरसिंह को विश्वास हो गया कि यह वर्णन कुमुद का ही है। तो भी और अधिक जानकारी पाने की गरज से कहा—'कब से आई हैं यह देवी ?'

'सदा से।' लडके ने चकित होकर जवाब दिया—'उनकौ कछू आद-अन्त थोरक सौ है।'

इसके बाद उस सीधे लड़के ने देवी की करामातो की गिनती का ताँता बाँध दिया।

वह कहता गया। कुञ्जरसिंह कुछ और सोचने लगा—'सदा से ही यहाँ पर हैं ? यह असम्भव है। यदि वही हैं, तो कुछ ही दिन आये हुये होगे। परन्तु यदि नही होती, तो लडका सदा से यही रहने की बात न कहता। शायद कोई और हो। शायद यह और ही कोई अवतार हो। जो कुछ भी हो। एक बार दर्शन अवश्य करूँगा।'

कुञ्जरसिंह ने लडके से उक्त देवी के विषय में और भी अनेक प्रश्न किये, परन्तु उसे कोई अभीष्ट उत्तर न मिला।

निदान उसने लड़के के पिता से पूछ-ताछ करने का निश्चय किया। चिडियों की विभिन्न चहचहाहट और अपनी दुर्दशाओ की विश्रृङ्खल गणना मे कुञ्जरसिंह ने सन्ध्या तक का समय किसी तरह व्यतीत किया। सूर्यास्त के पहले दूर के खेत पर से गृह-स्वामी जब आया, तब कुञ्जरसिंह ने अवसर प्राप्त होते ही उससे कहा—'देवी के दर्शन करके मै यहा से दो-चार दिन मे चला जाऊँगा।'

कृषक बोला—'सौ काए ? ऐसी का जल्दी परी दाउजू ? जो कछू लटौ- दूबरौ कनूका हमाये गाँठ में है, सो नजर है। हमसे ऐसी का बिगरी कि अबई जावौ हो जैय ?'

कृषक के इस सरल और सच्चे आतिथ्य-हठ से कुञ्जरसिंह का जी भर आया। घर पर चढ़ी हुई कदुये की बेलों को देखते हुये कुञ्जरसिंह ने कहा—'माते हम तो सिपाही हैं, न जाने अभी कहाँ-कहाँ भटकना पड़े। देवी के दर्शन करके कार्य-सिद्धि के पीछे यदि बचे रहे, तो फिर तुमसे आकर मिलेंगे।'

'जैसी मर्जी।' अहीर ने कुछ उदास होकर कहा। एक क्षण के बाद बोला—'मैं परों दर्शन करबे जैहों, तबई चलबौ होए। आजकल बड़ौ हूला-चालौ मचौ है। कछू दिना इतै बनौ रैबो हुईये, तौ मड़ैया बची रैय।'

किसान के इस प्रकट स्वार्थ पर कुञ्जरसिंह क्षुब्ध नहीं हुआ। उसने विश्वास दिलाते हुये कहा—'अच्छा।'

[४३]

छोटी रानी की वाग्मिता बड़ी रानी को अधिक आकृष्ट करने लगी और दोनो एक दूसरे से बहुधा मिलने-जुलने लगी। थोड़ी ही दिनो में दोनो के बीच का बहुत दिनो से चला आने वाला अंतर कम हो गया। राजा को इस मेल-जोल पर संतोष हुआ, परन्तु जनार्दन को इसमे श्रद्धा के योग्य कुछ न दिखाई दिया।

एक दिन बहुत लगन के साथ छोटी रानी बड़ी रानी से बाते कर रही थी। बातचीत के सिलसिले में छोटी रानी ने कहा—'जब तक हम लोग इस बन्दीगृह में बैठी-बैठी दूसरो का मुँह ताकती रहेगी, तब तक कोई सरदार मैदान मे नही आवेगा। बाहर निकलते ही बहुत से सरदार साथ हो जायँगे।'

बड़ी रानी थोड़ी देर पहले कही हुई एक बात को दुहराते हुये बोली—'इसमे कोई सन्देह नही कि इस राज्य के असली अधिकारी कैद में हैं और जिसे कैद में होना चाहिये, वह राजदंड हाथ मे लिये है।'

परन्तु उसके छीनने की शक्ति अब भी हमारे हाथ मे है।' छोटी रानी ने उत्तर दिया।

बड़ी रानी ने पूछा—'मुझे केवल एक बात का भय है कि यदि तुम्हारी योजना असफल हुई, तो रक्षा का यह एक स्थान भी हाथ से निकल जायगा।'

'रक्षा का! इस बन्दी-गृह को आप रक्षा का स्थान बतलाती हैं। मेरे लिये तो सबसे बड़ी रक्षा का साधन घोड़ा, तलवार और रण-क्षेत्र है।'

'मैं भी मानती हूं और यदि काफी तादाद में सरदार लोग सहायता के लिये आ गये, तो सब काम बन जायगा। परन्तु यदि ऐसा न हुआ, तो प्रलय की आशंका है।'

'जरा भी नही। दृढ निश्चय के साथ जो काम किया जाता है, वह कभी असफल नही होता, थोड़ी देर के लिये मान लीजिये, असफल भी

हो गये, तो इस अवस्था की अपेक्षा स्वतन्त्र विचरण फिर भी बहुत अच्छा होगा।'

'तो यहाँ लौटकर नही आवेंगी, यह निश्चित है।'

'असफलता का कोई कारण नही मालूम होता। असफलता ही हुई, तो इस जीवन से मरण अच्छा। आप किसी बात से डरती है?'

बड़ी रानी ने निश्चय पूर्ण स्वर मे कहा—'मुझे कोई डर नही, मैं डरती किसी से भी नही। परन्तु यह कहती हूं कि जो कुछ करो, सोच-समझकर।'

छोटी रानी अधिक निश्चय पूर्ण स्वर मे बोली—विलकुल सोच समझ लिया है। रामदयाल अपने पक्ष के सरदारो से मिल चुका है। वे लोग नये राजा से असन्तुष्ट हैं, परन्तु जब तक हम लोग महलो मे बन्द है, तब तक वे लोग अपनी निज की प्रेरणा से कुछ नही कर सकते। बाहर निकल पडते ही ठठ के ठठ सरदार आ पहुचेगे।'

'यहाँ से चलकर ठहरोगी कहाँ?' बड़ी रानी ने जरा संकोच के साथ पूछा।

'कही भी, दलीपनगर के बाहर कही भी। सिह की गुफा मे, नदी की तली मे, पहाड़ के शिखर पर, कही भी।' छोटी रानी ने उत्तेजित होकर उत्तर दिया—'हमारे स्वामिधर्मी सरदार कही भी हमारी सहायता के लिये आ सकते हैं।'

बड़ी रानी ने प्रतिवाद करते हुये कुछ रुखाई के साथ कहा—मैं इस तरह की यात्रा के प्रस्ताव से सहमत नही हो सकती। व्यर्थ मारे-मारे फिरने से यही अच्छे।'

छोटी रानी तुरन्त रुख बदलकर बोली—'रामनगर के राव के यहां ठिकाना रहेगा। वहां से अलीमर्दान की भी सहायता सहज हो जायगी। सिंहगढ पर चढ़ाई उसी ओर से अच्छी तरह हो सकती है।'

छोटी रानी के ढले हुये स्वर ने बड़ी रानी को नरम कर दिया। कहा—'रामनगर के राव के पास बड़ा बल तो नही, परन्तु स्थान-रक्षा

के विचार से अच्छा है। अलीमर्दान की सहायता बिना काम न चलेगा ?'

'वह हमारा राखी-बन्द भाई है।' छोटी रानी ने उत्तर दिया—'उसकी ओर से जी मे कोई खटका मत कीजिये। किसी भी मन्दिर के विध्वन्स करने की कोई इच्छा उसके मन मे नही है।'

इसी समय एक दासी ने बड़ी रानी को खबर दी कि दीवान जनार्दन आशीर्वाद देने के लिये आना चाहते हैं।

बड़ी रानी उसका नाम सुनते ही चौंक पडी ! छोटी रानी ने कहा—'इस समय इसका यहाँ आना बुरा हुआ। न मालूम किस टोह को लगाकर आया है।'

छोटी ने आश्चर्य प्रकट किया—'बुरा हुआ ! क्या वह इस कैदखाने का दारोगा है, जो आप भयभीत सी मालूम पड़ती हैं ? क्या बुरा हुआ ?'

बडी रानी को चोट-सी लगी। उन्होने दासी से पूछा—'और क्या नही कहते थे ?'

छोटी रानी की ओर देखकर दासी ने जवाब दिया—'और क्या कहते थे, महाराज !'

छोटी रानी ने कडाई के साथ पूछा—'क्यो डरती है ? बोल, कुछ कहते थे !'

बडी रानी ने समाधान के स्वर मे कहा—'डर मत। कह, क्या कहते थे ?'

उसने उत्तर दिया—'केवल यह पूछते थे कि छोटी महारानी भी यहाँ हैं या नही ?'

'तूने क्या कहा ?' बडी ने पूछा।

छोटी रानी बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये हुये बोली—'इसने कह दिया होगा कि हैं। मै कोई बाघिनी या तेंदुनी तो हू नही, जो इसी समय दीवान जी को फाड डालूँगी ?'

दासी ने उत्तर दिया—'नही महाराज, मैंने कहा था कि नही हैं।' छोटी रानी ने कडककर प्रश्न किया—'क्यो ? तूने क्यो यह झूठ बोला ?'

दासी काँपने लगी ।

बड़ी रानी ने शाँति स्थापित करने के प्रयोजन से कहा—'यह वेचारी साधारण स्त्री है । मुह से निकल गया होगा । कोई बुराई मत मानो । वह मुझे चाहती है और मेरा इसपर स्नेह है । यहा की और स्त्रिया तो दुष्ट हैं।'

छोटी रानी कुछ नही बोली । कुछ सोचती रही । बड़ी रानी ने कहा—'तुम जरा छिपकर देखो न, जनार्दन क्या कहता है, किस प्रयोजन से आया है ?'

'व्यर्थ है ।' छोटी रानी ने उत्तर दिया—'वह इस बात को जानता है कि आप मेरे ऊपर कृपा करती हैं, इसलिये मेरे छिपकर सुनने लायक कोई बात न कहेगा ।'

'तो भी क्या हर्ज है ।'बड़ी रानी ने कहा–सुन लो । तमाशा हीसही ।'

छोटी रानी बड़ी को प्रसन्न करने की नियत से बोली—'छिपने की क्या जरूरत है । मै एक कोने मे बैठी जाती हू । डयोढी के बाहर से वह बातचीत करेगा । मे अपने को प्रगट न होने दूँगी । आप उसे बुलवा ले ।'

बड़ी रानी ने जनार्दन को लिवा लाने के लिये सकेत किया और छोटी रानी से कहा—'यह उन स्त्रियो मे से है, जो मेरे लिये अपना सिर कटाने को तैयार रहती है ।' इस पर छोटी रानी केवल मुस्कराई । कोई मतव्य प्रकट नही किया ।

थोड़ी देर में जनार्दन आगया । आशीर्वाद और कुशल-मङ्गल पूछने के पश्चात् उस दासी द्वारा जनार्दन और बड़ी रानी का वार्तालाप होनेलगा ।

जनार्दन ने पूछा—'छोटी महारानी न मालूम मुझसे क्यो रुष्ट हैं ? महाराज इस बात को जानते हैं कि मैं उनका कोई अहित-चितन नहीं करता ।'

बड़ी रानी ने जवाब दिलवाया—'इस बात से मेरा कोई सम्बन्ध नही । आप इस विषय पर उन्ही से कहे सुने ।'

'मै आपकी सहायता चाहता हूँ । उन्हे इस राज्य मे जो स्थान पसन्द हो, उसमें आनन्द-पूर्वक रहे, जिससे इस लाँछन से बचूँ कि दलीप-नगर में मैंने उन्हे बरबस रोक रक्खा है ।'

'इसे तो वह अवश्य पसन्द करेगी।' और जवाब देने वाली ने रानी की ओर से कहा—'बडी महारानी भी कुछ दिनो के लिये बाहर यात्रा कर आवेगी।'

जनार्दन को यह प्रस्ताव पसन्द न आया। बोला—'आजकल अवस्था जरा खराब हो रही है और वैसे भी यह स्थान तो आपको बहुत प्यारा रहा है। आपने कभी शिकायत नही की कि—'

बीच मे टोक दिया गया। बडी रानी की तरफ से कहा गया—'जरूर जाऊँगी। कैदी नही हैं, जो उन्हे तो जाने दिया जाय और इन्हे रोक रक्खा जाय।'

जनार्दन बोला—'मैं महाराज से अनुमति के लिये कहूँगा। परन्तु जिस काम से मै आया था, वह यदि यहाँ नही हो सकता, तो छोटी रानी के ही पास जाकर अपने अपराधो की क्षमा मागूँगा।'

'वहाँ आने की कोई आवश्यकता नही।' छोटी रानी ने दासी का आश्रय लिये बिना ही पर्दे के भीतर से कहा—'हम दोनो अत्याचार पीडित स्त्रियाँ एक स्थान मे शाति के साथ रहना चाहती हैं, वह भी तुम्हे सहन नही। हमारा राज्य-पाट ले लिया और दोनो को एक दूसरे से अलग करके क्या किसी एकात गढी मे हमारा सिर कटवाओगे?'

जनार्दन चौंका नही। थोडी देर तक स्तब्ध, निश्चल बना रहा। कुछ ही क्षण पश्चात् बोला—'मैंने तो ऐसी कोई बात नही कही, जिससे आपके इस निष्कर्ष की पुष्टि होती हो। आपसे क्षमा-प्रार्थना करने की ही बात कह रहा था। वह न रुची। जाता हूँ।'

यदि ठहरता, तो उसे और प्रलाप भी सुनना पडता।

छोटी रानी ने सन्नाटे मे आई हुई बडी रानी से कहा—'देख लो इसकी चाल! हम लोगों को अलग करना चाहता है और अलग कर के हमारा नाश। हम लोग अलग नही हो सकती।'

बड़ी रानी ने जोश के साथ कहा—'कभी नही। मै तुम्हे कदापि न छोडूँगी।'

(४०)

जनार्दन दोनो रानियो को एक दूसरे से अलहदा करना चाहता था। इसी प्रयोजन से वहाँ गया भी था, परन्तु अपनी साधारण सावधानी से काम न लेने के कारण और छोटी रानी के ताड लेने से उसका मनोरथ निष्फल हो गया। छोटी रानी के कुवाक्य का उसे वहुत थोड़ी देर ध्यान रहा होगा। उसके मन में इस बात की वहुत ग्लानि थी कि चतुराई के साथ बातचीत नही की।

राजा के पास गया। चतुर मन्त्री के लिये समय से वढकर मूल्यवान और कोई चीज नही हो सकती थी। इसलिये उसने राजा से तुरन्त भेंट की। दोनो रानियो की परस्पर बढती हुई घनिष्ठता मे किसी भयंकर विपद की विभीषिका, किसी विकट षड्यत्र की जनन-शक्ति की आशंका का चित्र जनार्दन ने खीचा।

राजा ने ज़रा खीझकर कहा—'तब क्या करूँ? जब तक कोई बड़ा अपराध सिद्ध न हो जाय, दण्ड तो दिया नही जा सकता।'

राजा की खिझलाहट से जरा भी न घवराकर जनार्दन बोला,—न तो किसी अपराध के सिद्ध करने की जरूरत है और न किसी दण्ड के विधान की। इन्हे तो अन्नदाता दो अलग-अलग स्थानो में सम्मानपूर्वक रख दे।'

'इससे वैमनस्य और बढेगा। जो सरदार अभी पीछे-पीछे और शायद दबी जवान यह कहते है कि हम लोगो ने रानियो को महल में कैद कर रक्खा है, वे भड़ककर खुल्लम-खुल्ला बुराई करेंगे। रानियों को यहाँ से हटाकर मैं अपने लिये व्यर्थ का विरोध नही खड़ा करना चाहता था।'

'अन्नदाता, वे यहाँ बैठी-बैठी सम्मिलित शक्ति से राज्य को उलटने-पलटने की तरकीबे सोचा करती हैं, सरदारो को अराजकता के लिये उभाड़ा करती हैं। एक दूसरे से दूर रहने पर दोनो निर्बल हो जायँगी।'

'मै इस बात को नही मानता।'

'जैसी महाराज की मर्जी हो, परन्तु छोटी रानी की हरकतों के मारे मेरी तो नाक में दम आ गया है। यह तो अन्नदाता को मालूम ही है कि मेरा सिर काटने या कटा लेने का रानी ने प्रण ठान रक्खा है—'

राजा ने हँसकर जनार्दन की बात काट दी। कहा—'डरो मत। तुम्हारी उम्र अभी बहुत है। चाहे ज्योतिषियो से पूछ लेना।' फिर एक क्षण बाद गम्भीर होकर राजा बोला—'शर्माजी, तुम्हे तलवार चलाना सीखना चाहिये था। राजनीति के गणित लगाते लगाते बहुत से व्यथ भय के भूत तुम्हे सताने लगे हैं। स्त्रियाँ बात काटती हैं, सिर नही काटती। अपना काम-काज देखो। राज्य की बहुत सी समस्यायें तुम्हे उलझाने के लिये यो ही बहुत काफी हैं। इधर का खयाल जरा कम कर दो। कुछ मेरा भी भरोसा करो।'

विनीत भाव से दीवान ने कहा—'महाराज का भरोसा न होना, तो एक घड़ी भी बचना करीब-करीब असम्भव था, परन्तु—'

'किन्तु-परंतु कुछ नही।' राजा ने कहा। फिर हँसकर बोला—'तुम्हारा सिर सही-सलामत है घबराओ नही, मौज करो।'

जनार्दन चला आया। अकेले मे एक आह भरकर मन मे बोला—'अब तो मेरा सिर राजा को इतना सस्ता मालूम पडना ही चाहिये।'

[४५]

अलीमर्दान अपनी फौज लिये भांडेर मे पड़ा था। दलीपनगर-दमन की प्रबल आकांक्षा उसके मन मे थी। परन्तु दिल्ली की अस्थिर अवस्था और इलाहाबाद के सैयद भाइयों की प्रबल हलचल उसे उग्र रूप धारण करने से वर्जित कर रही थी। कालेखाँ पालर की पुजारिन की बीच-बीच में काफ़ी याद दिला देता था। उस विषय के लिये भी अलीमर्दान के हृदय में एक बड़ा-सा लालसा-युक्त स्थान था। परन्तु इस सम्बन्ध में भी उसकी इच्छाओं पर एक बड़ा बन्धन कसा हुआ था। वह यह था कि अलीमर्दान और उस-सरीखे अन्य मनचले सूबेदार, जो सिर से दिल्ली का बोझ हल्का होते ही, स्वतंत्र हो जाने के मनोहर स्वप्नो में डूबे रहते थे, अपने सूबे की और पड़ोस की हिन्दू जनता पर साधनो और सैनिको के लिये बहुत निर्भर रहते थे, इसलिये यथासम्भव उसे व्यर्थ नही चिढ़ाते-छेडते थे। जिस समय दिल्ली में कमजोर नरेश और प्रान्तो मे महत्त्वा-कांक्षी सूबेदार होते थे, उस समय यह बात बहुत स्पष्ट रूप में दिखलाई पड़ती थी।

धीरे-धीरे भांडेर में भी यह खबर पहुँच गई कि बिराटा में एक देहधारिणी देवी हैं, जो अपने वरदानों से निस्सहायों को समर्थ कर देती है। यदि अलीमर्दान चढ़ाई के साथ अनुसंधान करता, तो पालर और बिराटा की देवी की समानता उसे कदाचित् शीघ्र मालूम हो जाती। उसने इस विषय को किसी शीघ्र आने वाले अनुकूल समय की आशा से प्रेरित होकर स्थगित कर दिया और केवल ऐसी साधारण ढूँढ़-खोज की, जो आसानी से दूसरो पर प्रकट न हो पाय, जारी रक्खा। इस साधारण ढूँढ़-खोज से शीघ्र पता इसलिये और न लगा कि लोग सहज और स्पष्ट का शीघ्र विश्वास नही करते, दूर के कारणों का आविष्कार करने में निकट की वस्तुस्थिति दृष्टि से लोप होने लगती है। विराटा में पालर की सुन्दरी-भांडेर के इतने नज़दीक! असंभव!! अनुसं-धानकर्ता उस देवी की उपस्थिति को भांडेर के इतने पास भान नही कर

सकते थे । इसके अतिरिक्त अलीमर्दान की इस विषय की ओर कोई प्रबल रुचि प्रकट न होती देखकर भी उन लोगो ने ढूँढ-खोज का सिलसिला ढीला रक्खा ।

भांडेर के आस-पास के राजा और राव अलीमर्दान की भाडेर में उपस्थिति देखकर जरा चौकन्ने थे, किसी भी प्रबल व्यक्ति का अपने पड़ोस मे जरा देर तक टिका रहना देखकर उन्हे मन-ही-मन अखरता था । उनका अपना स्वच्छन्द वन-पर्वत किसी अस्पष्ट आतक के विरुद्ध-सा दिखाई पडता था और वे उससे शीघ्र छुटकारा पाने के लिये व्याकुल से थे । उदाहरणो की उनके सामने कमी न थी ।

रामनगर का राव पतराखन इस बीच मे कई बार भाडेर गया-आया । वह यह बात जानना चाहता था कि अलीमर्दान क्यो यहाँ पड़ा हुआ है और कब तक इस तरह पडा रहेगा । साथ ही वह अलीमर्दान को मौका मिलने पर यह विश्वास दिलाना चाहता था कि भाडेर मे और अधिक ठहरना बेकार है । एक दिन अलीमर्दान से अकेले मे बात-चीत हुई । अलीमर्दान ने पूछा—'सुना है राव साहब, आपके पड़ोस मे देवी का कोई अवतार हुआ है ।'

'जी हाँ । कोई नई बात नही है, हमारे धर्म मे ऐसा होता रहता है ।'

'कब हुआ था ?'

'बरसो हो गई हैं । हमेशा से उसकी बाबत सुनता आया हूँ ।'

'हाँ साहब, अपने-अपने मजहब की बात है । मुझे उसमे दख़ल देने की कोई जरूरत नही है । वैसे ही पूछा है ।'

परन्तु बिराटा लौट आने के कई रोज़ पीछे भी पतराखन ने सुना कि अलीमर्दान भाडेर मे ही है ।

[४६]

सध्या हो चुकी थी। रामनगर की गढी के फाटक बंद होने में अधिक विलब न था। पहरेवालो ने फाटकों को अधमुँदा रख छोडा था। उनका कोई साथी गाँव मे तवाकू लेने गया था। इतने मे गढी के नीचे, जो बेतवा-किनारे एक ऊंची टौरिया पर बनी थी, दस-बारह घुडसवार आकर रुक गये। और सवार तो वही रहे, एक उनमे से फाटक पर आया। पहरेवाले ने फाटक को जरा और खोलकर पूछा—'आप कौन हैं ?'

'दलीपनगर से आ रहा हूँ। महारानी और कुछ सरदार नीचे खड़े हैं, बहुत शीघ्र और आवश्यक काम से मिलना है।' आगंतुक ने उत्तर दिया।

पहरेवाले ने नम्रता-पूर्वक कहा—'आपका नाम ?'

'राव साहब को मेरा नाम रामदयाल बतला देना।' उत्तर मिला।

पहरेवाला भीतर गया। राव पतराखन आ गया। अँधेरा था, नहीं तो रामदयाल ने देख लिया होता कि पतराखन के चेहरे पर इस आगमन के कारण प्रसन्नता के कोई चिह्न न थे। रामदयाल से प्रयास-पूर्वक मीठे स्वर में बोला—'महारानी को ऐसे समय यहाँ आने की क्या आवश्यकता पडी ?'

रामदयाल ने कहा—'कालपी के नवाब अलीमर्दान को कर्त्तव्य-पथ पर सजग करने के लिये आई है। दलीपनगर की दूरी से यह काम नहीं बन सकता था। इस समय नवाब साहब भाडेर मे है। यहाँ से सब काम ठीक हो जायगा।'

पतराखन ने पूछा—'महारानी कहाँ हैं ?'

रामदयाल ने इशारे से वतला दिया।

कुछ सोचता विचारता पतराखन गढ़ी से उतरा और नीचे से दलीपनगर के सवारो को गढी पर लिवा लाया। कुशल-मंगल के बाद जव सब लोगो को डेरा दे दिया, तब रामदयाल से बातचीत हुई।

पतराखन ने कहा—'अब की बार बड़ी रानी ने भी छोटी रानी का साथ दे दिया।'

रामदयाल ने जवाब दिया—'साथ तो वह सदा से हैं, परन्तु कुछ लोगो ने बीच मे मनमुटाव खडा कर दिया था।'

'परन्तु बड़ी रानी के साथ हो जाने पर भी फौज-भीड तो कुछ भी नही दिखाई पडती। इतने आदमियो से देवीसिंह का क्या बिगडेगा ?'

'ये सब सरदार हैं। इनके साथ की सेना पीछे है और फिर नवाब साहब की मदद होगी। आप भी सहायता करेंगे ?'

'सो तो है ही। इसमें संदेह ही क्या है यदि। नवाब साहब ने सहायता कर दी, तो बहुत काम बनने की आशा है। मैं भी जो कुछ सहायता बनेगी, करूँगा ही। बिराटा का दाँगी भी अपने भाईबन्दो को लायेगा। आजकल उसे जरा घमड हो गया है।'

'किस बात का ?'

'अपनी सख्या का। उसके गाँव मे देवी का अवतार हुआ है। उसका भी उसे बहुत भरोसा है।'

'देवी का अवतार! हाँ, हो सकता है। होता ही रहता है। उसका पालर में हुआ था, परन्तु—'

'परन्तु क्या ? सुनते हैं, वही यहाँ चली आई हैं। एक दिन अली-मर्दान ने मुझसे पूछा था। लोग कहते थे, उनके कारण ही देवी को पालर से भागना पडा। यह सब गलत है। नवाब कहता था कि अवतार सब कौमो मे होते हैं और उसे किसी के धर्म मे दखल देने की ज़रूरत नही है और मैं इन विषयो पर बहुत कम बहस करता हूँ।'

'नवाब साहब कहते थे!' रामदयाल ने प्रकट होते हुये आश्चर्य को रोककर कहा—'जरूर कहते होगे। वह तो बड़े उदार पुरुष हैं। उन्होने पालर में जाकर देवी की पूजा की थी। मूर्तियों को छुआ तक नही, तोडने की तो बात क्या।'

किसी कल्पना से विकल पतराखन बोला—'हमारी गढी की बहुत दिनो से मरम्मत नही हुई है। दीवारे गोलाबारी नही सह सकती। फाटक भी नये चढवाने हैं, गोला-बारूद की भी कमी है। इस गढी में होकर युद्ध करना बिलकुल व्यर्थ होगा। वैसे मैं और मेरे सिपाही सेवा के लिये तैयार हैं।'

रामदयाल समझ गया। बोला—'यहाँ से युद्ध कदापि न होगा। आप गढी की मरम्मत चाहे कल करा ले, चाहे दस वर्ष बाद। यह स्थान छिपा हुआ है और सुरक्षित है, इसलिये महारानी को पसन्द आया—'

पतराखन ने रोककर कहा—'सो तो उनका घर है, चम्पतराय कई बार ठहरे हैं, परन्तु ठहरे वह थोड़े-थोडे दिन ही हैं। खैर, उसकी कोई बात नही है। बिराटा की गढ़ी देखी है?'

'नही तो।'

'बहुत सुरक्षित है। दाँगी को उसी का तो बड़ा गर्व है।'

'मै कल ही जाकर देखूँगा।'

'परन्तु मेरी ओर से वहाँ कुछ मत कहना।'

'नही, मैं तो क़िला देखने और देवी के दर्शनों को ज़ाऊँगा, किसी से वहाँ बातचीत करने का क्या काम? इसके पश्चात परसो नवाब साहब के पास ज़ाऊँगा। देवीसिंह से जो लड़ाई होगी, उसमे महारानी आपसे बहुत आशा करती है और आपको पुरस्कार भी बहुत देंगी।'

पतराखन ने उत्तर दिया—'वैसे तो मैं किसी का दबा हुआ नही हूं। दलीपनगर के राजा से कोई सम्बन्ध नही। कालपी के नवाब और दिल्ली के बादशाह से हमारा ताल्लुक है, इसलिये जिस पक्ष मे नवाब साहब होगे, उसी का समर्थन मैं भी करूँगा।'

पतराखन को रामदयाल रानियो के डेरे पर ले गया। दोनों आड़-ओट से वार्तालाप करने लगी।

छोटी रानी ने कहा—'बड़ी महारानी ने भी अबकी बार हम लोगों का साथ दिया है। चोर-डाकू एक अधर्मी ब्राह्मण की सहायता से हमारे

पुरखो के सिहासन पर जा बैठा है। कुछ दिनो तो वह बडी महारानी और क्षत्रिय सरदारो को भुलावे मे डाले रहा, परन्तु अन्त मे भडा-फोड हो गया। अबकी बार बहुत-से सामन्त हमारे साथ हैं। आशा है, विजय प्राप्त होगी। आपको हम धन-धान्य और जागीर से संतुष्ट करेंगे। टेढे समय मे जो हमारी सहायता करेगा, उसे सीधे समय मे हम कभी नही भुला सकेगी।

पतराखन ने बडी रानी के सिसकने का शब्द सुना।

बोला—'मुझसे शक्ति-भर जितनी सहायता बनेगी, करूँगा। यह टूटी-फूटी सी गढी आप अपनी समझे।'

बड़ी रानी ने करुण कण्ठ से कहा—'राव साहब, हम आपको इसका पुरस्कार देगे।'

राव पतराखन ने अदृष्ट को, अनिवार्य को सिर-माथे लेकर सोचा—'यदि इन दो निस्सहाय स्त्रियो की रक्षा मे इस गढी को धूल में मिलाना पडा, तो कुछ हर्ज नही। किसी और गढी को ढूँढ लूँगा।'

[४७]

कुञ्जरसिह मुसावली वाले कृषक और चरवाहे के साथ बिराटा की ओर पैदल गया। वह अपने को प्रकट नही करना चाहता था। मार्ग के भरको और वृक्षो के समूहो मे होकर जाते हुए उसने सोचा—'यदि वही हैं, तो शायद पहचान ले। न पहचाने, तो बुराई ही क्या है ? जिस संसार ने करीब-करीब त्याग दिया है, उसे देवता क्यो तिरस्कृत करने चला ? न पहचाने जाने मे एक सुख भी है। खोद-खोदकर लोग कुशल-वार्ता न पूछेंगे और उन्हे व्यथा न होगी। शाति-पूर्वक उनके दर्शन कर लूँगा। परन्तु यदि उन्होंने पहचान भी लिया, तो उन्हे व्यथा क्यो होने लगी ? मैं उनका कौन हू। केवल भक्त और फिर थोड़े से पलों का परिचय।'

कृषक और चरवाहे ने बातचीत करना चाही। कुञ्जरसिंह अन्य-मनस्क था। प्रोत्साहन न पाकर वे लोग आपस मे ही बातचीत करते चले।

थोडी देर मे नदी पार करके टापू के सिर पर स्थित मन्दिर मे पहुच गये। वह देवी के दर्शनों का खास समय न था। कृषक और उसके साथी को घर लौटना था, परन्तु कुञ्जरसिंह ने कहा—'क्यो जल्दी करते हो ? यदि किसी ने मना कर दिया, तो अपना-सा मुह लेकर रह जायँगे और ठहरना तो पड़ेगा ही।'

कृषक बोला—'कए से का बिगरत ? जो दर्सन हो जैएँ, तो अच्छोई है और न हूं हैं, तो आप ठैर जाइयो, हम भोर फिर आ जैएँ।' कुञ्जर के निषेध की परवा न करके कृषक आगे बढा। गोमती दिखलाई पडी। कृषक ने विनय के साथ कहा—'पालर से जे कोऊ ठाकुर आए है, दर्सन करन चाउत हैं। का अबै दर्सन न हुईएँ ? कोई बहुत बड़े आदमी हैं।'

गोमती पालर का नाम सुनकर जरा पास आई। कुञ्जरसिह को पहचानने की चेष्टा की, न पहचान पाया।

कृषक से बोली—'यह तो पालर के नही जान पड़ते। किसी और स्थान के हैं। मैं तो पालर के हर एक व्यक्ति को पहचानती हूँ।'

'परन्तु वे तो अपुन खों पालर को बताउत्ते।'

चरवाहे बालक ने कहा—'पालर के तो आहैं ई। झूठी थोरक सी बोलत। हमसें कही, हमाए दाऊ सें कही।

इस चर्चा ने कुमुद को भी उस स्थान पर आकृष्ट कर लिया। एक ओर से उसने आगन्तुको को बारी-बारी से देखा। कुञ्जरसिंह को उसने कई बार बारीकी से देखा। वहाँ से हटकर चली गई। नरपतिसिंह को भीतर से भेजा।

उसने आकर अधिकार के स्वर में कहा—'क्या है? आप लोग क्या चाहते हैं?'

'दर्शन।' क्षीण स्वर मे कुञ्जर ने उत्तर दिया।

'हो जायेंगे।' नरपति ने उसी स्वर में कहा—'जरा ठहरिये। हाथ-पैर धो लीजिये। आप पालर से आये हैं?'

'जी हाँ।' कुञ्जर ने बहुत क्षीण स्वर मे उत्तर दिया।

नरपति—'आपको पालर मे तो मैंने कभी नही देखा। आप वहाँ के रहने वाले नही हैं!'

कुञ्जरसिंह—'रहने वाला तो वहाँ का नही हू, परन्तु इस समय अर्थात् कुछ दिन हुए, तब—आया वही से था।'

नरपति ने पास आकर कुञ्जरसिंह को घूरा। कुछ सोचकर बोला—'आपको कभी कही देखा अवश्य है, परन्तु याद नही पडता। पालर के ऊपर कालपी के नवाब के आक्रमण के समय आप दलीपनगर की सेना मे या ऐसे ही किसी मेले मे उससे पहले कभी आये हैं।'

'आप ठीक कहते हैं।' कुञ्जर ने जरा सम्भलकर कहा—'मै एक मेले मे पालर गया था।'

नरपति ने अपनी स्मरण-शक्ति को जरा और दबाकर पूछा—'आप कालपी के सैनिको के उपद्रव के समय पालर मे नही थे। मुझे आपकी आकृति खूब याद आ रही है।'

कुञ्जरसिंह ने टौरिया से नीचे वहती हुई वेतवा की धारा और उस पार के जंगलों की हरियाली को देखते हुये कहा—'मुझे याद नही पड़ता। शायद आया होऊँ।'

कुमुद ने भी यह वार्तालाप सुनी। गोमती जरा उत्सुकता के साथ बोली—'आप दलीपनगर के रहने वाले होगे।'

'हाँ।' कहकर कुञ्जर ने सोचा, प्रश्नो की समाप्ति हो जायगी और हाथ-पाँव धोने के लिये नदी की ओर टौरिया से नीचे उतर गया। नरपतिसिंह सिर खुजलाता हुआ भीतर चला गया। गोमती कृषक से वातचीत करने लगी। बोली—'तुम इन ठाकुर को पहचानते हो?'

उसने उत्तर दिया—'मैं तो नई चीनत। मोसे तो कहत्ते कैं पालर के आहैं।'

'तुमसे इनसे क्या सम्बन्ध?'

'मोरे इतै डेरा डारौ है।'

'तव तुम्हे इससे ज्यादा जानने की अटक ही क्या पड़ी? पालर से आये, इसलिये पालर का वतलाया, परन्तु हैं यह असल मे दलीपनगर के रहने वाले। दलीपनगर का कुछ हाल इन्होंने वतलाया था?'

'हमें तो अपने काम से उकासई नई मिलत।'

और अधिक वातचीत करना उचित न समझकर गोमती कुमुद के पास चली गई। कुमुद कुछ व्यग्रता के साथ मन्दिर को साफ कर रही थी। पहले की अपेक्षा दोनो मे अब संबध कुछ अधिक घनिष्ठ हो गया था।

बोली—'दलीपनगर से एक ठाकुर आये हैं।'

किसी भाव से दीप्त होकर कुमुद का चेहरा एक क्षण के लिये रञ्जित हो गया। गोमती की ओर विना देखे ही उसने कहा—'हाँ, आये होगे। नित्य ही लोग आया करते हैं।'

'इनसे वहाँ का कुछ हाल पूछूँ?'

'पूछने मे तुम्हे लाज नही आवेगी ? और फिर इसका क्या निश्चय कि यह ठाकुर कोई सतोष-प्रद वृत्तात भी तुम्हे सुना सकेंगे या नही ।'

'तब क्या करूँ । दलीपनगर का तो बहुत दिनो से कोई यहाँ आया ही नही । यह एक आये हैं, सो प्रश्न करने में मुझे भी सकोच मालूम होता है । इसलिये आप से पूछा ।'

'मै क्या कह सकती हू ?'

'पूछूँ कुछ हाल ?'

'तुम्हारा मन न मानता हो, तो पूछ देखो, परन्तु मुझे विश्वास है, तुम्हे कोई सन्तोष-जनक उत्तर न मिलेगा । इस समय वह हारे-थके भी होंगे । यदि आज यहाँ बस जायें, तो सवेरे निश्चित होकर पूछ लेना; नही तो पिताजी द्वारा कहो, तो मैं बहुत-सा हाल पुछवा लूँ ?'

गोमती सहमत हो गई ।

थोडे समय के पीछे हाथ-पाँव धोकर कुञ्जरसिंह नदी से आ गया । उसने नरपतिसिंह से दर्शनों की इच्छा प्रकट की ।

नरपतिसिंह ने एकाएक कहा—'मैंने पहिचान लिया ।'

कुञ्जरसिह का बेतवा के जल से धुला हुआ मुँह जरा धूमरा पड गया । नरपति के मुह की ओर देखने लगा ।

नरपति ने कहा—'आप उस दिन पालर के दगा करने वालो में थे । अवश्य थे । वह दिन भुलाये नही भूलता । न वह दंगा होता और न हमें इतनी विपद झेलनी पडती । परन्तु, परन्तु—'

नरपति सोचने लगा । एक क्षण बाद बोला—'परन्तु एक लम्बा दुष्ट और था, सफेद दाढी-मूछ वाला उसी ने सब गोल-माल किया था ।'

कुमुद और इस वार्तालाप के बीच में केवल एक छोटी-सी दीवार थी । कुमुद ने तुरन्त पुकारकर कहा—'यहाँ आइये ।'

कुमुद की पुकार के उत्तर में नरपति 'हाँ' कहते हुये कुञ्जर से बोला—'आप शायद नही थे, शायद कोई और रहा हो; परन्तु वह बूढा अवश्य था ।'

कुञ्जरसिह कुछ उत्तर देना चाहता था, परन्तु नरपति के सदेह का निवारण करना इस समय उसका उद्देश्य न था, इसलिये जरा-सा खाँस कर चुप रहा।

नरपति भीतर से लौटकर तुरन्त आ गया। बोला—'चलिये, दर्शन कर लीजिये।'

कृषक और चरवाहा भी हाथ-पैर धोकर आ गये थे, परन्तु उन्हे नरपति ने टोका। कहा—'तुम लोग फिर दर्शन कर लेना। यह तुम्हारे समय लिये नही है।'

कुञ्जर लौट पड़ा। बोला—'उन्हे भी आने दीजिये। इन बेचारो को इसी समय लौट जाना है। मै तो दर्शनो के लिये रुक भी सकता हूं।'

कुञ्जर का प्रतिवाद शायद बेकार जाता, परन्तु कृषक और चरवाहा मन्दिर मे धँस पड़े। नरपति ने उन्हे रोक न पाया।

देवी की मूर्ति के पास एक किनारे पर कुमुद बैठी थी। वही मुख, वही रूप। आज केवल कुछ अधिक आतकमय दिखलाई पड़ा। भौहो के बीच मे सिन्दूर और भस्म का टीका अधिक गहरा था।

पुजारिन को एक बार चंचल दृष्टि से कुञ्जर ने देखा, फिर देवी को साष्टाग प्रणाम करके मन-ही-मन कुछ कहता रहा।

जब विभूति-प्रसाद की बारी आई, तब फिर कुमुद की ओर देखा। वह पीली पड़ गई थी।

काँपते हुये हाथ से कुमुद ने फूल और भस्म कुञ्जरसिह को दी। वह अँगूठी उसकी उङ्गली मे अब भी थी। कजर ने नीची दृष्टि किये हुये ही काँपते कंठ से कहा—'वरदान मिले। बहुत दुर्गति हो चुकी है।'

कुमुद देवी की ओर देखने लगी, कुछ न बोली।

कुञ्जर ने फिर कहा—'देवी के वरदान के बिना मेरा जीवन असंभव है।' कुञ्जर का गला और अधिक काँपा।

'देवी जो कुछ करेगी, सब शुभ करेगी।' कुमुद ने कुजर की ओर दृष्टिपात करने का प्रयत्न करते हुये उत्तर दिया।

इतने मे नरपति बोला—'आप पालर क्या अभी चले जायँगे ?'

कुञ्जर के मन में कोई जल्दी न थी। बोला—'अभी तो न जाऊँगा और कुछ ठीक नही, कहाँ जाऊँ।'

'तो क्या आप दलीपनगर जायँगे ?' नरपति ने पूछा।

'वहाँ का भी कुछ ठीक नही।' कुञ्जर ने सयत् निःश्वास के साथ उत्तर दिया।

कुमुद अपने सहज स्वाभाविक धैर्य को पुनः प्राप्त-सा करके भर्राये कण्ठ से बोली—'इनके भोजनो का प्रबन्ध कर दीजिये।'

गोमती ने एक कोने से कहा—'और विश्राम का भी, क्योकि लौट कर कल जायँगे, सन्ध्या होने वाली है।'

[४८]

मन्दिर का विस्तार थोडे-से स्थान में था। उसकी कोठरियाँ भी छोटी-छोटी थी। नरपति ने अपनी कोठरी में कुञ्जरसिंह को स्थान दिया। भोजन के उपरात नरपति कुञ्जर के पास बैठ गया। दोनों एक दूसरे के साथ बातचीत करने के इच्छुक थे, परन्तु नरपति दिमाग के किसी दोष के कारण और कुजर किसी सकोच के वश यह निश्चय नही कर पा रहे थे कि चर्चा का आरम्भ किया किस तरह जाय।

इतने मे पास ही कोठरी मे गोमती ने ज़रा आह खीचकर कुमुद से कहा—'काकाजू को आज जल्दी नीद आ गई!'

नरपति ने सुन लिया। किसी कर्तव्य का स्मरण करके कुजर से बोला—'मैं बड़ी देर से सोच रहा हू कि आपको उस दगे के अवसर पर पालर मे देखा था या नही। आप थे या आपके साथ राजकुमार था। था कोई अवश्य। बहुमूल्य वस्तु देवी को भेट की थी, परन्तु और याद नही पडता। दिन बहुत हो गये हैं। बूढा हूँ और देवी की रट के सिवा मन मे अब कुछ उठता भी नही।'

'मैं क्या हूँ।' कुँजर ने कहा—'इसे जानकर आप क्या करेंगे? किसी दिन मालूम हो जायगा। आपके लिये इतना जान लेना बहुत होगा कि आफतो का मारा हुआ हूँ।'

'क्या आप राजकुमार हैं?' कुछ जोर से और एकाएक नरपति ने पूछा।

कुञ्जर ने बहुत धीरे से जवाब दिया—'सैनिक हूँ। ससार का ठुकराया हुआ दरिद्र मनुष्य हूं और अधिक मत पूछिये।'

पास की कोठरी मे लेटी या बैठी हुई उन दोनों स्त्रियों ने नरपति का प्रश्न तो सुन लिया, परन्तु शायद उत्तर न सुन पाया।

नरपति ने पूछा—'आप दलीपनगर के रहने वाले हैं?'

'जी हाँ।'

'वहाँ का राजा कौन है? सुनते है, कोई देवीसिंह राज्य करते हैं।'

'आपको मालूम तो है।'

'कैसा राजा है ?'

कुञ्जर चुप रहा।

'नरपति ने जिद करके पूछा—'कैसा राजा है ? प्रजा को कोई कष्ट तो नही देता ?'

'अभी तो सिंहासन को अपने पैरो के नीचे बनाये रखने के लिये खून-ख़राबी करता है।'

'यह राज्य तो उन्हे महाराज नायकसिंह ने दिया था ?'

'बिलकुल झूठ बात है।'

नरपतिसिंह ने पाडित्य प्रदर्शित करते हुये कहा—'हमें भी ख्याल होता है कि महाराज ने राज्य न दिया होगा, क्योकि उनके एक कुमार थे। उनका क्या हुआ ? आप क्या वह राजकुमार नही हैं ? सच-सच बतलाइये। आपको कसम है।'

कुञ्जरसिंह ने एक क्षण सोचकर कहा—'नही, मै इस समय वह नही हूँ, परन्तु जो राजकुमार है, वह किसी समय प्रकट अवश्य होगा।'

नरपतिसिंह अपनी उसी धुन को जारी रखते हुये बोला—'राजकुमार बड़ा सुशील और होनहार था। मैंने उसके लिये देवी से प्रार्थना की थी। उस बेचारे को राज्य तब नही मिला, तो कभी-न-कभी मिलेगा।'

'स्वार्थियो की नीचता के कारण।' कुञ्जर ने उत्तर दिया—'दलीप-नगर मे जनार्दन शर्मा एक पापी है। उसके षड्यन्त्रो से देवीसिंह राजा बन बैठा है। वास्तविक राजकुमार वञ्चित हो गया है और रानियो की मूर्खता के कारण भी उसे नुकसान पहुंचा है—'

नरपति ने टोककर कहा—'देवी की कृपा हुई, तो असली हकदार को फिर राज्य मिलेगा और नीच, स्वार्थी, पापी लोग अपने किये का फल पावेंगे।'

गोमती को दूसरी कोठरी मे बडी जोर से खाँसी आई।

उसकी खाँसी के समाप्त होने पर कुञ्जर ने पूछा—'बिराटा के राजा के पास फ़ौज-फांटा कैसा है ?'

'अच्छा है।' नरपति नें उत्तर दिया -- 'रामनगर के राव साहव की अपेक्षा यह बहुत जन और धन-सम्पन्न हैं। वह अपने को छिपाते वहुत है, नही तो उनमें इतनी शक्ति है कि किसी भी राजा या नवाव का मुकावला कर सकते हैं। हमारी जाति के वह गौरव हैं।'

कुन्जर ने नरपति के जाति-गर्व को मन-ही-मन क्षमा करते हुये कहा—'यदि किसी समय दलीपनगर के राजकुमार उनसे मिलने आवे, तो अच्छी तरह मिलेगे या नही ?'

'अवश्य।' नरपति ने उत्तर दिया—'राजा राजों के साथ बराबरी का ही वर्ताव करते हैं। आपसे उस राजकुमार से कोई सम्वन्ध है ?'

'जी हाँ।'

'क्या ?'

'मै उनकी सेना का सेनापति रहा हूं।'

'वही तो, वही तो।' नरपति ने दम्भ के साथ कहा—'मेरी स्मरण-शक्ति ने धोखा नही खाया था। मुझे देखते ही विश्वास हो गया था कि आप राजकुमार या राजकुमार के साथी या दलीपनगर के कोई व्यक्ति अवश्य है।'

स्मरण-शक्ति का यह प्रमाण पाकर कुन्जरसिंह को अपनी उस दशा मे भी मन मे हँसी आ गई। बोला—'राजकुमार आपके राजा से पीछे मिलेंगे, मैं उनसे पहले मिल लूँगा। आप कुछ सहायता करेंगे ?'

नरपति ने पूछा—'उस दंगे के दिन राजकुमार के साथ आप किस समय आये थे या शुरू से ही साथ थे ?'

कुञ्जर ने अँधेरी कोटरी में दृढता के साथ उत्तर दिया—'मै शुरू से ही साथ था। आपको अवश्य याद होगा।'

कुन्जरसिंह ने अपने पहले प्रश्न को फिर दुहराया—'आप राजकुमार की कुछ सहायता कर सकेंगे ?'

नरपति बोला—'अवश्व। मैं आपके कुमार के लिये देवी से प्रार्थना करूँगा और राजा सवदलसिंह से भी कहूँगा। अपने साथ आपको ले चलूँगा।

[४६]

नरपति और कुँजर शायद जल्दी सो गये होगे, परन्तु उन दोनों युवतियो को देर तक नीद नही आई। धीरे-धीरे बाते करती रही।

गोमती ने कहा—'यह तो उनके बैरी का आदमी निकला। क्या इसका यहाँ अधिक टिकना अच्छा होगा?'

'यह मन्दिर है।' कुमुद ने उत्तर दिया—'यहाँ कोई भी ठहर सकता है। किसी को मनाही नही।'

'चाहे जितने दिन।'

'इसके विषय मे मैं कुछ नही कह सकती। काकाजू जाने।'

'काकाजू ने तो उसे वचन-सा दिया। यहाँ के राजा यदि महाराज के विरुद्ध हथियार उठावे भी, तो उनका कुछ बिगडा नही। देवी का वरदान उनके लिये है। परन्तु काकाजू का साथ देना मुझे भयभीत करता है।'

'अपनी-अपनी-सी सभी करते हैं। काकाजू ने इस सैनिक को यहाँ के राजा के पास पहुचा देने की सहायता के लिये अनुरोध-मात्र का वचन दिया है; इससे आगे और बात से उन्हे प्रयोजन ही क्या है?'

गोमती की घबराहट इससे शात न हुई। विनय-पूर्वक बोली—'परन्तु वह देवी से भी प्रार्थना करेगे। इससे उन्हे क्या कोई रोक सकेगा?'

'देवी से प्रार्थना वह नही करते।' कुमुद ने रूखेपन के साथ कहा—'जो कुछ कहना होता है, मेरे द्वारा कहा जाता है।'

गोमती चुप हो गई। थोडी देर सन्नाटा रहा। फिर बोली—'क्या सो गई?'

'अभी नही।' उत्तर मिला।

'अपराध क्षमा हो, तो एक बात कहूँ?'

'कहो।'

'न मालूम क्यों मेरे मन मे रह-रहकर यह खटका उत्पन्न हो रहा है कि यह मनुष्य मेरे अनिष्ट का कारण होगा।'

'तुम्हारा भय भ्रम से उत्पन्न हुआ है, जैसे सब तरह के भयो का मूल-कारण किसी-न-किसी प्रकार का भ्रम होता है।'

'तो आप एक बार फिर कह दें कि महाराज का इस व्यक्ति के द्वारा कोई अनिष्ट न होगा।'

'उस दिन सब कुछ कह दिया था। अब और कुछ नहीं कहूँगी।'

[५०]

सवेरे कुन्जरसिह नरपति के साथ बिराटा के राजा सबदलसिह के पास गया। राजा ने स्पष्ट इनकार तो नही किया, परन्तु नरपति के बहुत हठ करने पर कहा—'देवीजी की कृपा से काम बनने की आशा करनी चाहिये, परन्तु भरोसा पक्का उस समय दिला सकूँगा, जब यह निश्चय हो जाय कि कालपी के नवाब की सहायता बिना आपके कुमार दलीपनगर के राजा की शक्ति का सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं। यदि दिल्ली का पाया लौट गया और कालपी की नवाबी खतम हो गई, तो मुझे आपके राजा का साथ देने मे बिलकुल सकोच न होगा। अथवा यदि आप लोग किसी तरह कालपी के नवाब को अपने पक्ष मे कर ले, तो कदाचित मुझे अपना सिर खपाने मे ऊँच-नीच का विचार न करना पड़ेगा।'

कुजरसिह बोला—'कालपी का नवाब दलीपनगर पर धावा अवश्य करेगा, परन्तु वह अपने स्वार्थ के लिये करेगा।'

'तब ऐसी दशा मे आपका कुछ दिन बल एकत्र करने और चुपचाप अवस्था देखने में बिताने पडेगे। अनुकूल स्थिति होने पर हम और आप दोनो मिल-जुलकर काम कर सकते हैं।'

नरपति बोला—'हाँ, ठीक है। जरा देश-काल को परखकर काम करने मे ही लाभ है। फिर दुर्गा सहायता करेगी। आप तब तक रहेगे कहाँ?

'कुछ निश्चय नही।' कुन्जर ने सोचकर कहा—'चाहे कुमार कुजरसिंह के पास चला जाऊँ, चाहे इधर-उधर सैन्य-संग्रह के लिये दौड़-धूप करता फिरूँ। आजकल हम लोगो के ठौर का कुछ ठिकाना नही।'

नरपति ने आग्रह-पूर्वक कहा—'तब आप हमारे राजा के यहाँ ठहर जाये।' और, जरा निहोरे के साथ सबदलसिंह की ओर देखने लगा।

सबदल ने पूछा—'आप का नाम ?'

बिना किसी हिचकिचाहट के कुञ्जर ने उत्तर दिया—'अतवर्नसिंह।'

सबदल ने कहा —'आप यहाँ ठहर सकते हैं, यदि आपकी इच्छा हो तो। परन्तु आपको रहना इस तरह पड़ेगा कि आपका पता किसी को न लगे, अर्थात् जब तक आपका अभिप्राय सिद्ध न हो जाय।'

कुञ्जर बोला—'यह जरा मुश्किल है। ऐसा स्थान कहाँ है, जहाँ मैं बिना टोका-टाकी के बना रहूं, स्वेच्छा-पूर्वक जब चाहे जहाँ आ-जा सकूँ।'

'ऐसा स्थान है।' नरपति ने बात काटकर कहा—'ऐसा स्थान देवी का मन्दिर है। एक तरफ कहीं जब तक चाहो तब तक, पड़े रहो। तैरना जानते हो ?'

'हाँ।' कुन्जर ने उत्तर दिया।

'तब।' नरपति बोला—'तब डोंगी की सहायता बिना भी स्वेच्छा-पूर्वक चाहे जहाँ आ-जा सकते हो।'

'परन्तु।' सबदलसिंह ने जरा जल्दी से कहा—'डोंगी मिलने में अधिक अड़चन न हुआ करेगी। हाँ, किसी समय उसका प्रबन्ध न हो सके, तो आप यों भी तैरकर पार जा सकते हैं। इस ओर की धार भी छोटी-सी ही है। मन्दिर में आने-जाने वाले लोग आपकी रोक-टोक भी न करेंगे।'

एक धीमी, अस्पष्ट आह भरकर कुन्जर बोला—'देखें, कब तक वहां इस तरह टिका रहना पड़ेगा।' फिर तुरन्त भाव बदलकर उसने कहा—'सैन्य-संग्रह शीघ्र हो जायगा और देवीजी की कृपा होगी, तो बहुत शीघ्र सफलता भी प्राप्त हो जायगी।'

[५१]

गोमती को मालूम हो गया कि दाँगी राजा ने सहायता-प्रदान का पक्का वचन न देकर भी अपने को कुञ्जरसिंह का सेनापति बतलाने वाले व्यक्ति को आश्रय-दान दिया है। गोमती को अखरा। यद्यपि वह स्वयं दूसरो के आश्रित थी, परन्तु अपने को धीरे-धीरे दलीपनगर की रानी समझने लगी थी और राजा देवीसिंह के सब प्रकार के शत्रुओ के प्रति उसके जी मे घृणा उत्पन्न हो गई थी। यदि दाँगी राजा ने बिलकुल 'नाही' कर दी होती, अथवा स्पष्ट रूप से पूरी सहायता देने का वचन दिया होता, तो वह भयभीत भले ही बनी रहती, किन्तु उस अवस्था में घृणा के भयकर भाव उदय न होते।

सबदलसिंह के यहाँ से लौट आने पर गोमती की इच्छा कुजर को दो खोटी बाते सुनाने को हुई, परन्तु मन में उसके यथेष्ट रूप को निश्चित और परिमित न कर पाया। नरपतिसिंह साफ तौर पर उस देवीसिंह के द्रोही का पक्षपाती जान पड़ता था। कुमुद देवी का अवतार या देवी की अद्वितीय पुजारिन होने पर भी लडकी तो नरपति की थी। गोमती को रोप हुआ, कष्ट हुआ, परन्तु उसने नरपति के उस अनधिकार कृत्य पर उत्पन्न हुये अपने उद्‍ड रोष को कुमुद के सामने प्रकट न करने का निश्चय कर लिया। भीतर ही भीतर असंतोष और ग्लानि बढने लगी और किसी सुपात्र के सम्मुख प्रकट न कर पाने के निषेध और बन्धन के कारण हृदय जलने लगा।

इसी समय उस मन्दिर में एक व्यक्ति और आया। गोमती को उसके पुष्ट, भरे हुये चेहरे पर सतर्कता के चिह्न मालूम हुये, परन्तु इससे अधिक वह उस समय और कुछ न देख सकी, क्योकि उसने जरा आँख गडाकर गोमती की ओर देखा था। वह व्यक्ति रामदयाल था।

रामदयाल ने बहुत थोडी देर के लिये कुमुद को पालर मे देखा था, गोमती को उसने देखा न था। इसीलिये पहले उसकी धारणा हुई कि

यही पुजारिन कुमुद है। गोमती भी सौन्दर्य-पूर्ण युवती थी। रामदयाल को उसके नेत्र अवश्य बहुत मादक जान पड़े।

ज़रा सिर झुकाकर गोमती से नीची आँखे किये हुये ही बोला—'दूर से दर्शन करने आया हूँ।'

'कहाँ से ?' गोमती ने बिना कुछ सोचे-समझे पूछा।

'दलीपनगर से।' तुरन्त उत्तर मिला।

गोमती के मन मे कुछ और पूछने की प्रबल इच्छा हुई, परन्तु उसने एक ओर कुमुद को देखा। संकोच हुआ। दूसरी ओर जाने लगी। सोचा—'यह आदमी शीघ्र यहाँ से नही जायगा। यदि यह कुन्जरसिंह के पक्ष का या राजा के किसी वैरी का आदमी नहीं है, तो अवश्य इससे कुछ पता लगेगा।'

रामदयाल ने कुमुद को न देखा था। गोमती को हाथ के सकेत से रोकता हुआ-सा बोला—'मै दूर से दर्शन करने आया हूँ, क्या इस समय दर्शन हो जायँगे ?'

'मै पूछकर वतलाती हूं।' गोमती ने उत्तर दिया।

रामदयाल ने प्रश्न किया—'किससे ?'

गोमती बोली—'यदि तुम्हे इस समय दर्शन न हो, तो सवेरे तो हो ही जायेंगे।'

उसने कहा—'मै तो दर्शनों के लिये चार दिन तक पड़ा रह सकता हूँ। आप—' वडी नम्रता और विनय का नाट्य करता हुआ रामदयाल रुक गया।

'क्या कहना चाहते हो, कहो ?' गोमती ने वार्तालाप करने की इच्छा से पूछा।

'आप ही तो हम भूले-भटकों और भवसागर के कष्ट-पीड़ितों की वात को दूर तक पहुचाती है। आपको किससे पूछना पडेगा ?'

गोमती ने कहा—'मैं वह नही हूँ।'

रामदयाल ने सिर ज़रा ऊँचा करके पूछा—'तव वह कहाँ हैं ? आप कौन हैं ?'

'वह यही पर हैं और मै दलीपनगर के...की...' आगे गोमती से कुछ कहते न बन पडा। मुख पर लज्जा का रंग दौड आया। द्रुत गति से वह जहाँ कुमुद थी, वहाँ चली गई। रामदयाल उस ओर देखने लगा।

कुमुद कोठरी से निकल कर एक दो कदम आँगन मे आई। पीछे-पीछे गोमती थी।

कुमुद के दिव्य सौदर्य की एक झलक रामदयाल ने पालर मे देखी थी। यद्यपि उसके स्मृति-पटल पर उस सौदर्य के यथार्थ रूप की रेखाएँ अंकित न थी, परन्तु यह धुँधला स्मरण था कि विचित्र सौदर्य है। देखते ही पालर का स्मरण जाग पड़ा और उसने समझ लिया कि जिस युवती से पहले-पहले संभाषण हुआ था, वह कुमुद नही है।

तब वह कौन थी ?

रामदयाल के मन मे यह प्रश्न उठा, परन्तु उस समय इसकी विवेचना के लिये रामदयल को आवश्यकता प्रतीत नही हुई। वह कुछ स्त्रियों के स्वभाव से परिचित था। उसने सोचा थोडी देर मे उसका परिचय भी मिल जायगा।

कुमुद से विनय-पूर्वक कहा— दूर से आया हूँ। क्या इस समय दर्शन हो जायँगे ? यदि न हो सके, तो सवेरे तक के लिये ठहर जाऊँगा और फिर कदाचित् एक अनुष्ठान के लिये यहाँ कई रोज ठहरना पडेगा।'

कुमुद बोली—'दर्शन इस समय भी हो सकते हैं, परन्तु यदि तुम सवेरे तक के लिये ठहर सकते हो, तो प्रात.काल का समय सबसे अच्छा है।'

'बहुत अच्छा।' रामदयाल ने कहा—'मैं तब यही कही या किसी पेड़ के नीचे ठहर जाऊँगा।' उसने अंतिम बात को प्रस्ताव के रूप मे कहा।

'हमारी कोई हानि नही।' कुमुद बोली—'चाहे जहाँ ठहर जाओ, मंदिर है। तुम कौन हो ?'

उसने उत्तर दिया—'मैं दलीपनगर का रहने वाला हू। महलो से मेरा सबन्ध रहा है। तीर्थ-यात्रा और एक विशेष अनुष्ठान के लिये यहाँ आया हूँ।'

गोमती ने कुमुद के कान मे पीछे से कुछ कहा। उस पर विशेष ध्यान न देकर कुमुद बोली—'मन्दिर में तो कोई खास स्थान ठहरने के लिये है नही। यह दालान खाली है। चाहो, तो इसमे पड़ रहना। यदि वाहर ठहरने की इच्छा हो, तो वैसा कर सकते हो।'

गोमती किसी आग्रह की दृष्टि से रामदयाल की ओर कुमुद के पीछे से देख रही थी। रामदयाल ने कहा—'मै दालान मे ही ठहर जाऊगा। बाहर अकेले ज़रा बुरा मालूम पड़ेगा।'

इसके बाद वे दोनों लड़कियाँ मन्दिर के एक दूसरे भाग में चली गईं।

वहाँ जाकर कुमुद ने गोमती से कहा—'तुम्हे कभी-कभी वड़ी उतावली हो जाती है। इस समय उस हारे-थके आदमी से दलीपनगर के विषय मे कुछ नही पूछना चाहिये। फिर किसी समय देख लेना।'

'मै पूछ लूँ उससे किसी समय ?'

'पूछ लेना। मुझे उसमें कोई आपत्ति नही।'

उधर रामदयाल ने दालान के एक अँधेरे से कोने मे अपना डेरा लगा लिया।

उस समय मन्दिर में नरपतिसिंह नही था। परन्तु कुँजरसिंह अपनी कोठरी में था।

उसने रामदयाल के कंठ को पहिचान लिया। सन्नाटे मे आकर अपनी कोठरी में ही बैठा रहा। थोड़ी देर मे अपने को सम्भालकर बाहर निकला। उस समय रामदयाल दालान के उस कोने में अपना डेरा लगा रहा था। पहचान लिया। रामदयाल नही देख पाया। कुञ्जर अपनी कोठरी मे लौट आया।

[५२]

सन्ध्या के उपरान्त—जब बेतवा की अस्पष्ट कल्लोल के साथ-साथ पश्चिम तटवर्ती बिराटा-ग्राम से लोगो की आहट आ रही थी और देवी के मन्दिर मे कुञ्जर और नरपति देवी की आरती की तैयारी मे लगे हुये थे—गोमती किसी काम के करने की इच्छा से आँगन मे आई, परन्तु किसी काम को सामने न पाकर वहाँ बैठ गई, जहाँ से रामदयाल का डेरा पास पड़ता था। रामदयाल की ओर न देखती हुई बोली—'दलीपनगर का कोई और विशेष समाचार नही है?' बात कोमलता का प्रयत्न करके कही गई थी और रामदयाल को कोमल जान भी पडी, परन्तु उस पर अधिकार की भी छाप थी। यह रामदयाल की परख में न आई।

उसने अपने आसन से जरा-सा खिसककर उत्तर दिया—'विशेष समाचार तो कुछ नही है। राजा सैन्य-सग्रह मे लगे हुये हैं। उन्हे और किसी बात की धुन नही है।'

'सुना है, पालर की किसी लडाई मे बहुत घायल हो गये थे?'

'हाँ, बहुत बाल-बाल बचे।'

'अब अच्छी तरह हैं?'

'हाँ, अब अच्छी तरह हैं। बहुत दिन हुये, तब चोट लगी थी। तब से तो वह कई लड़ाइयाँ लड़ चुके हैं, उस चोट की अब उन्हे याद भी न होगी।'

'दलीपनगर की सेना मे एक लम्बा, कठोर, कठिन आदमी था। वह मर गया या महाराज की सेवा मे है?'

'उन्ही की सेवा मे है। आपको पालर की घटना कैसे मालूम है?'

जरा अधिकार-व्यञ्जक स्वर मे गोमती बोली—'मैंने पालर मे उस व्यक्ति को देखा था। राजा ने उस पाषाण हृदय को कैसे अपनी सेवा में फिर रख लिया?'

रामदयाल के मन में गोमती का कुछ अधिक परिचय प्राप्त करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई।

बोला—'आप दलीपनगर मे किस की बेटी हैं ?'

'मै दलीपनगर में किसी की बेटी नही हूं।'

'परन्तु दलीपनगर मे आपका कोई न कोई तो अवश्य है। आपने ही थोडी देर पहले बतलाया था।'

गोमती ज़रा गर्व-पूर्ण स्वर मे बोली—'पहले तुम यह बतलाओ कि राजा से तुम्हारा कोई सम्बन्ध है या नही ?'

'है और नही है।' रामदयाल ने उत्तर दिया।

'राजा अपने सेवकों को सेवाओ का कैसा पुरस्कार देते हैं ?'

'जैसा उनके मन मे आता है। दानी हैं।'

गोमती ने धीरे से, परन्तु स्पष्ट कोमलता के साथ, किन्तु अधिकार युक्त स्वर में कहा—'तुम्हे मुँह माँगा पुरस्कार मिलेगा।'

रामदयाल सावधान हुआ। ज़रा और आगे खिसका।

गोमती से बोला—'मेरे योग्य जो सेवा होगी, अवश्य करूँगा।'

'यहाँ कुञ्जरसिंह का सेनापति ठहरा हुआ है।' गोमती ने भी धीरे से कहा—'वह राजा के विरुद्ध कुछ कार्य कर रहा है। तुम पता लगा कर राजा की सहायता करो।'

'कहाँ ठहरा हुआ है ?'

'इसी मन्दिर मे।'

'कब से ?'

'हाल ही मे आया है।'

'किस प्रयोजन से ?'

'बिराटा के राजा से महाराज के विरुद्ध सहायता की याचना करने के लिये। इससे अधिक मुझसे कुछ न पूछो, क्योंकि मै नही जानती : तुम्हे राजा का सेवक समझकर मैंने बतलाया है।'

रामदयाल कुछ क्षण तक सोचता रहा।

'आप कौन हैं ?' रामदयाल ने एकाएक पूछा।

'मैं दलीपनगर के राजा की' गोमती ने शीघ्र उत्तर दिया—'रानी हूं।'

'रामदयाल ने तुरन्त खडे होकर मुजरा किया। खडा रहा।'

गोमती मन-ही-मन प्रसन्न हुई। बैठने का सकेन किया। वह बैठ गया।

रामदयाल ने विनीत भाव से कहा—'उस दिन महाराज की जो बारात पालर को आ रही थी, परन्तु बीच मे ही युद्ध हो पडा। क्या।'

गोमती ने अभिमान के साथ उत्तर दिया—'हाँ, मैं वही हूँ। मुझे इस बात का बडा दुःख रहा करता है कि इस चिन्ता-पूर्ण समय में महाराज का कुशल समाचार मुझे बहुत कम मिल पाता है।'

'वह समाचार मैं कभी-कभी आपको दिया करूँगा।' रामदयाल ने प्रस्ताव किया।

गोमती बोली—'महाराज के स्वामिभक्त सेवक का नाम तो मुझे मालूम हो।'

'मेरा नाम।' रामदयाल ने बतलाया—'रामदयाल है। मै बडी कठिनाइयो मे हूँ और बडे कठिन कर्तव्य का पालन कर रहा हूँ। आपने शायद सुना होगा कि मृत राजा की दो रानियाँ थी। मै उनकी सेवा मे था। वे बागी हो गईं। जासूस बनकर मुझे कभी एक के पास, कभी दूसरे के पास और कभी दोनो के पास रहना पडा। बडा नाजुक काम है। भेद खुलने पर पूरी विपद् की आशंका है। इस समय भी उन रानियो की जासूसी के लिये दलीपनगर के बाहर हुआ हूँ।'

'रानियाँ कहाँ हैं?'

'वे दलीपनगर से बाहर हैं, तभी तो मै बाहर हूँ। उनका ठीक-ठीक पता मालूम होने पर बतलाऊँगा। एक प्रार्थना है।'

'क्या?'

'कोई बात कही प्रकट न हो, अन्यथा महाराज के हित की हानि होगी।'

'कभी किसी प्रकार प्रकट न हो सकेगी।'

'इस मन्दिर मे मैं कभी-कभी आना-जाना चाहता हूं। आपकी बात से मुझे एक और काम का पता लग गया।'

गोमती बोली—'ठहर तो यहाँ सकोगे, परन्तु शायद बाहर रहना पड़ेगा। पुजारिन के पिता नरपति कुञ्जरसिह के पक्ष मे मालूम होते हैं। उन्हे अपने पक्ष मे करने का प्रयत्न करना चाहिये।'

'वह सब मैं धीरे-धीरे देखूंगा।' रामदयाल बोला—'चढौती के विषय मे यहाँ क्या नियम हैं?'

'कोई विशेष नियम नही है। परन्तु कुजरसिंह ने उस बार पालर में एक बहुमूल्य आभूषण नरपति को भेंट किया था। इसलिये शायद वह कुञ्जरसिंह के नाम का पक्ष करते हैं। कुमुद अवश्य बहुत धीरे, शांत तेजस्विनी हैं उनमे अवश्य देवी का अंश है।'

'मेरे लिये तो।' रामदयाल ने स्वर मे सचाई की खनक पैदा करके कहा—'संसार भर की सब स्त्रियो मे सबसे अधिक मान्य आप हैं।' अंधकार में रामदयाल ने नही देखा। परंतु इसमे कोई संदेह नही कि उसके गालो पर मंतव्य के प्रकट होने पर गहरी लाली छा गई। इतने मे देवी की आरती के लिये गोमती को कुमुद ने पुकार लिया।

[५३]

दूसरे दिन सवेरे रामदयाल दर्शनो के लिये मूर्ति के सामने पहुँचा। कुमुद मूर्ति के पास बैठी हुई थी और नरपति उससे जरा हटकर। रामदयाल ने बड़ी श्रद्धा दिखलाते हुये मूर्ति पर जल चढाया और वेले के फूल अर्पण किये। उसने कपडे की ओर कुछ निकालने के लिये हाथ बढाया। नरपति ने एक बार उस ओर देखकर दूसरी ओर मुँह कर लिया। इतने मे कुञ्जरसिह भी आ गया। कुमुद की आँखे मूर्ति की ओर देखने लगी। रामदयाल ने बगल से कुञ्जरसिह को देखा, फिर मुडकर। पहचान मे सदेह न रहा। एक क्षण के लिये सकपका-सा गया। गोमती पास थी। उसने रामदयाल का यह शारीरिक व्यापार ताड लिया। उसे वह बहुत स्वाभाविक जान पड़ा और रामदयाल के प्रति सहानुभूमि और कुञ्जरसिह के प्रति घृणा का भाव कुछ और गहरा हो गया। रामदयाल ने अपने को सयत कर लिया। कपड़ो मे से सोने का वहुमूल्य गहना निकालकर मूर्ति के चरणो मे चढा दिया।

नरपति विस्फारित लोचनो से इस व्यापार को देखने लगा।

गहना अपने हाथ मे उठाकर नरपति ने कहा - 'आप कहाँ के कौन हैं?'

'मै दलीपनगर का हूँ।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'इससे अधिक कुछ और बतलाना मेरे लिये इस समय असभव है। आफत मे हूं। दुर्गा के दर्शनों से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये आया हूँ। मेरी प्रार्थना है कि मेरे स्वामी का भला हो।'

गोमती ने उसी समय आँखे मूँदकर रामदयाल की प्रार्थना स्वीकार की जाने के लिये देवी से प्रार्थना की और वडे अनुनय की दृष्टि से कुमुद की ओर देखा।

नरपति बोला—'आपके स्वामी का कल्याण होगा।'

गोमती किसी उमडे हुये भाव के वेग को सहन न कर सकने के कारण बोली—'जीजी के मुख से यह आशीर्वाद और अच्छा मालूम होगा।'

कुमुद कुछ नही बोली ।

नरपति ने तुरन्त कहा—'दुर्गा का प्रसाद इन्हें दिया जाय—फूल और भस्म ।'

कुमुद ने भस्म उठाकर रामदयाल को दे दी । पुष्प नही दिया ।

गोमती के हृदय को बड़ी पीड़ा हुई । नरपति बोला—'यदि उचित समझा जाय, तो पुष्प भी दे दिया जाय । यह दुर्गा के अच्छे सेवक जान पड़ते हैं ।'

कुमुद मूर्ति को प्रणाम करके वहाँ से मन्दिर के दूसरे भाग मे धीरे से चली गई । गोमती ने कुमुद के नेत्रों मे इतनी अवज्ञा पहले कभी नहीं देखी थी ।

बड़ी कठिनाई से गोमती ने नरपति से कहा—'इन्होने क्या कोई अपराध किया है ?'

उदास स्वर में नरपति बोला—'कोई अपराध नही किया और न देवी इनसे रुष्ट हैं । रुष्ट होती, तो भस्म का प्रसाद क्यों देती ? जान पड़ता है, अभी इनके कार्य मे कुछ विलंब है, इसलिये पुष्प प्रसाद नहीं मिला ।'

'तब इनके यहाँ थोडे दिनों ठहरे रहने मे आपकी कोई हानि तो होती नही ?' गोतमी ने कहा ।

नरपति ने उत्तर दिया—'जरा भी नही । चैन से ठहरे रहे । एक दिन ऐसा अवसर अवश्य आयगा, जब देवी प्रसन्न होकर मनचाहा वरदान भी देगी ।'

रामदयाल कुञ्जरसिंह को देखकर सकपकाया था, परन्तु इस घटना से विचलित नही जान पड़ा ।

मुस्कराकर बोला—'एक दिन उसकी कृपा अवश्य होगी और मेरा तथा मेरे स्वामी का अवश्य कल्याण होगा ।'

'अवश्य ।' नरपति बोला ।

'अवश्य ।' रामदयाल ने कहा ।

नरपति ने रामदयाल से कहा—'आप यहाँ जब तक मन चाहे, बने रहिये, अर्थात जब तक आपको अभीष्ट आशीर्वाद न मिल जाय।'

इसके बाद रामदयाल वहाँ से उठकर मन्दिर के बाहर गया। कुञ्जरसिंह उसके पीछे-पीछे।

जब दोनो अकेले रह गये, कुञ्जरसिंह ने धीमे स्वर में, परन्तु तीखेपन के साथ कहा—'यहाँ किसलिये आये हो ?'

'दर्शनो के लिये।'

'तुम्हे ये लोग जानते नही हैं ?'

'जानते हैं।'

'ये लोग यह जानते हैं कि तुम्हारा नाम रामदयाल है और किस तरह के मनुष्य हो।'

'मैंने उन्हे स्वयं बतला दिया है।'

'तुम यहाँ से चले जाओ।'

क्रोध के मारे कुञ्जरसिंह कांपने लगा।

रामदयाल ठंडक के साथ बोला—'राजा, गुस्से से काम न चलेगा। मैंने अपना परिचय इन लोगो को दे दिया है, परन्तु आप यहाँ नाम और काम दोनो की दृष्टि से छिपे हुए हैं। आपका भेद खुलने से मेरी कोई हानि न होगी।'

'राजा देवीसिंह के आदमी आपके लिये घूम रहे हैं। कालपी का नवाब, जो भाडेर मे यहा से पास ही ठहरा हुआ है, आपसे शायद बहुत सन्तुष्ट नही है। रानियो से आपकी पटती नही। रियासत के सरदार आप लोगो के झगडो से अपने को बचाये हुये हैं। लोचनसिंह अभी जीवित है और मैंने कभी आपका कोई बिगाड नही किया, फिर न जाने राजा मुझसे क्यो रुष्ट हैं।'

कुञ्जरसिंह ने एक क्षण के लिये कुछ सोचा। बोला—'जानता हूँ, तुम घोर नास्तिक हो। तुम केवल दर्शनो के लिये यहा कदापि नही आये हो। बोलो, काहे के लिये आये हो ?'

'आप जानते हैं।' रामदयाल ने बनावटी विनय के साथ उत्तर दिया—'मै और कुछ नहीं, तो स्वामिधर्मी तो अवश्य हूं। मेरे स्वामी का विश्वास इस स्थान पर है। इसीलिये आया हूं।'

कुञ्जरसिंह जिस बात का सन्देह रामदयाल पर कर रहा था, उसे प्रकट करना उचित नही समझा, परन्तु भर्त्सना करने की प्रबल इच्छा जान पड़ी थी और भर्त्सना नही करवाई थी, इसलिये रामदयाल का गला घोट डालने का भाव तो मन मे उठा, परन्तु जीभ या हाथ ने कोई तैयारी नही दिखलाई।

रामदयाल कनखियो से देखकर धीरे से बोला—'यदि राजा क्षमा करे, तो एक बात कहू?'

कुञ्जरसिंह ने मुह से कुछ न कहकर सिर से हां का संकेत किया।

रामदयाल ने कहा—'इस बार दोनो रानियाँ देवीसिंह के विरुद्ध हैं। दोनो दलीपनगर छोड़कर चली आई हैं। आप उनके साथ अपनी शक्ति सम्मिलित कर दे और कालपी के नवाब के साथ घृणा न करे, तो दलीपनगर का सिंहासन आपके पाँव-तले शीघ्र आ जायगा।'

'मै सदा रानियो के सम्मान का ध्यान रखता आया हूं, परन्तु अनुचित कार्यों का सहायक नही हो सका। कालपी के नवाब के ऊपर भी कोई है, जानते हो?'

'हां, राजा। दिल्ली है। परन्तु वहा किसी की कोई कुछ भी सुनने वाला नही मालूम पडता, ऐसा मैं आप ही लोगो से सुना करता हूँ।'

'खैर, देखा जायगा; परन्तु मै एक बात से तुम्हे सावधान करना चाहता हूँ।'

'वह क्या है राजा?'

'तुमने जिसके प्रति अपना अशुद्ध प्रयत्न पालर मे किया था, उससे दूर रहना—बहुत दूर नही तो मैं सिंहासन प्राप्ति की अभिलाषा को एक ओर रख दूँगा और तुम्हे उस प्रयत्न के किये पर पछताने का भी समय न मिलने दूँगा।'

कुञ्जरसिंह ने अन्तिम बात बडे जोश के साथ कही थी।

रामदयाल हँसा। वह हँसी कुञ्जर के मन में छुरी की तरह चुभ गई।

रामदयाल बोला—'राजा, यदि मैंने कुछ किया था, तो अपने मालिक की आज्ञा से। जो कुछ करूँगा, अब अपने स्वामी की भलाई के लिये। परन्तु यह मै वचन देता हूँ कि आपका मार्ग लाँघने की चेष्टा न करूँगा। यदि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करे, तो मै यही विनती करूँगा कि यहां न पडे रहकर आप राज्य-प्राप्ति का कुछ और भी उपाय करे। पूजार्चा तो उन लोगो के लिये है, जो हथियार का भरोसा कम करते हैं और अन्य बातो का अधिक।'

सुनकर कुञ्जर विकल हो गया। बोला—'मैं तुम्हे स्वामिद्रोही नही कहता। परन्तु तुम नीच अवश्य हो।'

'यह तो राजा ;लोगो का कायदा ही है।' रामदयाल ने कुटिल मुस्कराहट के साथ कहा—'काम निकल जाने पर नौकरो को धता बता देते हैं। गरीब तो सदा से ही दोषी चला आया है और चाकर अनन्त काल से नीच।'

'मै पूछता हूँ, तुम उस लड़की से कल शाम को क्या घुल-घुलकर बाते कर रहे थे?' कुञ्जर ने एकाएक पूछा।

प्रश्न के आकस्मिक वेग से बिलकुल विचलित न होकर रामदयाल ने उत्तर दिया—'पुजारिन से तो मेरी कोई बातचीत नही हुई।'

'वह नही।' कुञ्जर जी कडा कर के बोला—'तुम उस दूसरी लड़की से घुल-घुलकर क्या बाते करते थे?'

'वह कौन हैं, आप जानते हैं?' रामदयाल ने दृढतापूर्वक पूछा। कुञ्जरसिंह ने अवहेलना की दृष्टि से उसकी ओर देखा।

रामदयाल ने कहा—'वह राजा देवीसिंह की रानी हैं।'

कुञ्जरसिंह सन्नाटे में आ गया। एक कदम पीछे हट गया, बोला—'झूठ, असम्भव?'

कोई उत्तर न देकर रामदयाल फिर मन्दिर मे चला गया।

[५४]

रामदयाल को मन्दिर मे घुसते हुये नरपति मिला। वह कही बाहर जा रहा था। कुञ्जरसिंह रामदयाल के पीछे-पीछे नही आया था। काना-फूसी-सी करते हुये नरपति बोला—'यहाँ के राजा से कुछ काम हो, तो मेरे साथ चलो।'

रामदयाल बोला—'अभी तो नही, किसी और समय चलूँगा। एकाध दिन यहां रहकर मैं काम से बाहर जाऊँगा। लौटकर फिर विनती करूँगा।'

नरपति चला गया।

कुमुद वहाँ दिखाई नहीं पड़ी। गोमती को एकान्त में देखकर रामदयाल ने एक ओर बुलाने का सम्मान-पूर्वक संकेत किया। वह आ गई।

रामदयाल ने कहा—'जिसे आपने कुञ्जरसिंह का सेनापति समझ रक्खा था, यह सेनापति नही है।'

'तब कौन है ?' गोमती ने जरा चिंतित होकर पूछा।

'स्वयं कुञ्जरसिंह।'

गोमती चौंकी। रामदयाल ने निवारण करते हुये कहा—'आप आश्चर्य न करें, वह महाराज को हानि पहुंचाने के लिये तरह-तरह के उपायो की रचना में सदा व्यस्त रहते हैं। परन्तु मै इसका उपाय करूँगा, आप चिंतित न हो। केवल एक भीख माँगता हूँ।'

स्नेहपूर्वक गोमती बोली—'क्या चाहते हो रामदयाल।'

'आप इस भेद को कदापि किसी के सामने प्रकट न करे।'

रामदयाल ने प्रस्ताव किया—'मेरी अनुपस्थिति में यहाँ जो कुछ हो, उस पर अपनी दृष्टि रक्खे और मेरे ऊपर विश्वास। मैं एक-आध रोज़ के लिये बाहर जाऊँगा। वहाँ से लौटकर अपनी और योजनायें बतलाऊँगा। जैसा कुछ उस समय निश्चय हो उसके अनुसार फिर काम करें।'

गोमती ने सरलता-पूर्वक कहा—'मैं तो कुछ-न-कुछ करने के लिये वहुत दिनो से बेचैन हो रही हूँ, परन्तु यह ठीक-ठीक समझ मे नही आता था कि क्या करूँ। महाराज के पास शीघ्र जाओगे न ?'

'अवश्य ।'

'उन्हे हमारा यहाँ का रहना मालूम है ?'

'नही मालूम है, परन्तु अब मालूम हो जायगा। मेरी अभिलाषा है, अभी वह यहाॅ न आवे, और न आप वहाॅ जायँ।'

अभिमान-पूर्वक गोमती बोली—'जब तक वह स्वयं यहाँ नही आयँगे, मै दलीपनगर नही जाऊँगी।'

रामदयाल नम्रता-पूर्ण स्वर मे बोला—'यह तो उचित ही है, परतु इस समय सरकार यह आशा न करे और न मुझे ही आज्ञा दे कि महाराज यहाॅ आवे।'

'नही मैं ऐसा क्यो करने चली ? क्या यहाँ आने से उनके किसी अनिष्ट की सम्भावना है ?'

'वहुत बडी। कालपी का नवाब उनका परम शत्रु है। कुञ्जरसिंह उनका प्रतिद्वन्दी इस मंदिर मे है। मृत राजा की रानियाँ उनके विरुद्ध खड्गहस्त होकर विचरण कर रही हैं। ऐसी हालत मे उनका अकेले-दुकेले इस स्थान मे आना बडा संकट-पूर्ण होगा। और ससैन्य वह अभी आ नही सकते। मै स्वय रानियो का आदमी बनकर घूम रहा हूँ। मुझे लोग महाराज का सेवक नही समझते।'

गोमती ने प्रसन्न होकर कहा—'तुम बडे चतुर मनुष्य जान पडते हो, रामदयाल। धन्य हैं महाराज, जिनका ऐसा दक्ष और पुरुषार्थी सेवक हो। तुम कब तक यहाँ रहोगे ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'एक आध दिन और हूँ। ज़रा यहाँ के राजा को कुञ्जर के पक्ष से विमुख कर लूँ, या कम-से-कम उत्साह रहित कर दूँ, तब दूसरा काम देखूँ।'

यह कहकर रामदयाल एकटक गोमती की ओर देखने लगा, मानो कुछ कहना चाहता हो और कहने के लिये या तो शब्द न मिलते हों, अथवा हिम्मत न पड़ती हो।

गोमती बोली—'क्या कहते हो, कहो।'

'कहते डर लगता है।' रामदयाल बोला।

'कहो, कहो।' गोमती प्रोत्साहन देते हुये बोली।

'आपका इन पुजारिन के विषय मे क्या विश्वास है?' उसने पूछा।

गोमती ने उत्तर दिया—'बहुत शुद्ध हैं। दुर्गा से उनका संपर्क है। लोग उन्हे देवी का अवतार समझते है।'

'यह सब ठीक है।' रामदयाल आँखे नीची करके बोला—'परन्तु मेरी यह प्रार्थना है कि आप ज़रा यह अच्छी तरह से देखती रहे कि कुञ्जरसिंह का वह कितना पक्ष करती हैं और क्यों करती हैं? आपको स्मरण होगा कि उन्होने मुझे स्वामी की सफलता के लिये पूरा आशीर्वाद नही दिया।'

कुछ सोचकर गोमती ने कहा—'मुझे खूब याद है। उन्होने एक बार आशीर्वाद दे दिया है। दूसरी बार आशीर्वाद फिर भी दे देंगी। क्या वह तुम्हे पहचानती हैं।'

'नही, वह मुझे नही जानती।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'परन्तु मुझे विश्वास है कि वह कुञ्जरसिंह को पहचानती हैं। उन्होने यह समझकर मुझे पूरा आशीर्वाद नही दिया कि कही कुञ्जरसिंह के विरुद्ध न जा पड़े।'

गोमती गम्भीर चिंतन करने लगी। रामदयाल बोला—'मैं केवल यह विनती करता हूँ कि आप सावधानी के साथ वस्तुस्थिति का निरीक्षण करती रहे। इस बात का भय न करे कि यह देवी का अवतार हैं—'

'कहो, कहो, और क्या कहते हो, मैं भय किसी का नही करती।' गोमती ने आग्रह-पूर्वक कहा।

वह बोला—'मेरा यह विश्वास है कि इस कलयुग मे अवतार नही होता। मैं आपसे केवल इतना अनुरोध करता हूँ कि आप खूब देख-भाल करती रहे।'

[५५]

इसी समय बाहर से कुञ्जर आकर अपनी कोठरी में चला गया।

कुञ्जरसिंह को जितनी बेचैनी उस दिन हुई, उतनी लोचनसिंह के मुकाबले मे सिंहगढ छोडने के लिये विवश होने पर भी नही हुई थी। उसे भय हुआ कि रामदयाल कुमुद को किसी षड्यत्र मे फँसाने और स्वयं उसे किसी विपद् के कुचक्र मे डालने की चिंता मे है। उसने कुमुद से उसी दिन अकेले मे कुछ कहने का निश्चय किया।

कई बार निराला पाने की कोशिश की, परन्तु कभी गोमती को उसके पास पाया और कभी किसी दर्शन करने वाले को। कुमुद ने भी उसकी विचलित अवस्था को एकआध बार देखा और उसने यह भी देखा कि उसकी दृष्टि में कुछ अधिक तत्परता, कुछ अधिक आग्रह है। गोमती ने भी उसे बिना किसी उद्देश्य के इधर-उधर भटकते हुये देखा और वह सावधानी के साथ उसके विषय मे विचार करने लगी। कुञ्जर ने सोचा—'यह स्त्री मेरी ओर आँख गडाकर क्यो देखती है? क्या रामदयाल ने अपने कुचक्र मे इसे भी शामिल किया है?'

अन्त मे कुञ्जरसिंह को दोपहर के लगभग एक अवसर हाथ लगा। गोमती रसोई बनाने के लिये एक कोठरी मे चली गई। दूसरी मे नरपति को कुमुद भोजन कराने लगी। रामदयाल मन्दिर के एक कोने मे मुँह पर चादर ढापे पड़ा था। कुञ्जर मन्दिर के आँगन मे जाकर ऐसी जगह खड़ा हो गया, जहाँ से नरपति उसे नही देख सकता था, केवल कुमुद देख सकती थी। परन्तु कुमुद ने उसकी ओर देखा नही। जब धूप मे खडे-खडे कुमुद की ओर टकटकी लगाये कुञ्जर को कई पल बीत गये, तब उसने धीरे-से पैर की आहट की।

कुमुद ने देखा। उधर रामदयाल ने भी चादर को ज़रा-सा खिसकाकर देखा। कुञ्जर ने कुमुद को हाथ जोडकर सिर से बुलाने का सकेत किया। देखकर भी वह कुछ समय तक वही बैठी रही। जलती धूप मे कुञ्जर वही खडा रहा।

यथेष्ट से कुछ अधिक भोजन-सामग्री नरपति के सामने रखकर कुमुद ने अपने पिता से कहा—'मै अभी आती हूँ।'

कभी-कभी सनक के साथ काम करने का कुमुद को अभ्यास पड गया था। उसका पिता इस गुण मे किसी दैवी व्यापार का लक्षण समझा करता था। इसीलिये उसने कुमुद से कोई पूछ-ताछ नही की।

आँगन मे प्रवेश करते ही कुमुद ने चारो ओर आँख डाली। गोमती वहाँ न थी, मन्दिर की बगलवाली छोटी-सी दलान मे रामदयाल चादर से मुँह ढके पड़ा था। वहाँ और कोई न था।

कुन्जरसिह ने मदिर के बाहर चलने का इशारा करते हुये दरवाजे की ओर कदम बढाया। कुमुद भीतर जाकर देवालय की चौखट पर जा बैठी। कुञ्जर लौटकर वही जा पहुँचा। नीचे बैठ गया। कुमुद भी चौखट से उतरकर नीचे बैठने को जरा हिली, परन्तु फिर जहाँ-की-तहाँ बैठी रही। उस स्थान से, जहाँ रामदयाल लेटा था ओट थी।

'क्या है ?' बहुत बारीक स्वर मे निस्संकोच भाव से कुमुद ने पूछा।

'क्या कहूँ, बहुत दिनो से—बडी देर से कहना चाहता था।' कुन्जर बोला—'आप मेरी ढिठाई क्षमा करेगी ?'

'कहिये।' कुमुद ने कहा—'ऐसी क्या बात है, जो आप अकेले मे कहना चाहते हैं ?'

प्रश्न की हिम-तुल्य ठंडक से कुन्जर सिकुड-सा गया।

बोला—'आप मुझे नही जानती हैं, न जानने की आवश्यकता है और न कभी जान सकेगी, क्योकि कभी फिर इस जीवन मे आपके दर्शन होगे या नही, इसमे पूर्ण सन्देह है।'

कुमुद का होठ कुछ कहने के लिये ज़रा-सा हिला, परन्तु बोली नही। उत्सुकता के साथ कुन्जर की ओर देखने लगी।

उसने कहा—'मै दलीपनगर का एक अभागा हूं। एक दिन—उस दिन, जब सक्राति का स्नान करने दलीपनगर के महाराज पालर आये थे, मैने मन्दिर में दर्शन किये थे। उस समय यह लडकी आपके साथ न थी।'

'मै आपको जानती हू ।' आँखे बिना नीची किये हुए कुमुद ने कहा।

'मुझे !' कुञ्जर ने आश्चर्य प्रकट किया—'मुझे आप जानती हैं।' फिर आश्चर्य को सयत करके बोला—'हाँ, किसी-किसी भक्त का कुछ स्मरण आपको रह सकता है, परन्तु मै कौन हू, यह आप न जानती होगी।'

'जानती हू अथवा न भी जानती होऊँ, तो भी कोई हानि नही।' कुमुद ने अपनी साधारण मिठास के साथ कहा—'आप अपनी वात तो कहिये।'

कुमुद की उँगली मे अपनी हीरे की अगूठी देखते हुये कुञ्जरसिह बोला—'इस अंगूठी ने मेरा नाम बतलाया होगा। एक दिन वह था और एक दिन आज है। यदि आपकी कृपा हुई, तो दिन फिर फिरेंगे। न भी फिरे, परन्तु आपकी कृपा बनी रहे।'

कुमुद ने अँगूठी वाले हाथ को जरा पीछे खीचकर कहा—'मुझे पिताजी को परोसने के लिये जाना है। आपने किसलिये बुलाया था ?'

'यहाँ कोई संकट उपस्थित होने वाला है।' कुञ्जरसिह बोला—'षड्यन्त्र रचे जा रहे हैं। यह जो पुरुष कल यहाँ आया है, वडा भयकर और नीच है। उस लड़की के साथ कुछ सलाह कर रहा था। आपकी रक्षा का कुछ उपाय होना चाहिये।'

नेत्र स्थिर करके कुमुद ने कहा—'मेरे लिये किसी वात की चिन्ता न करना चाहिये। दुर्गाजी की कृपा से मेरे ऊपर कोई संकट कभी नही आ सकता। यह लडकी मेरे गॉव की ही है। उस दिन जव पालर में युद्ध हुआ, इस लडकी का विवाह उस पुरुष के साथ होने जा रहा था, जो अब दलीपनगर का राजा है। वह अपने पति के लिये चिन्तित रहा करती है और कोई बात नही है।'

आने वाले संकट के विस्तार को छोटा समझे जाने के कारण कुञ्जर-सिह अधिक आग्रह के स्वर में बोला—'मैंने दलीपनगर के सिंहासन की

रक्षा में प्राणों के अतिरिक्त लगभग सभी कुछ त्यागा है। आशीर्वाद दिया जाय कि इन चरणों की रक्षा में उनका भी उत्सर्ग कर दूँ।'

किसी अन्य को दूसरे समय दिये गये एक वरदान का स्मरण करके कुमुद ने कहा—'आपको ऐसी कोई चिन्ता न करनी चाहिये।' कुमुद ने विश्वासपूर्ण स्वर मे बात कही, परन्तु उसमें किसी तरह की अवहेलना न थी।

कुञ्जरसिंह ने हाथ जोड़कर कहा—'आशीर्वाद दीजिये कि इन चरणो के लिये ही जीवन धारण करूँ।'

कुमुद के मुख पर लालिमा छा गई। नेत्रों में निस्संकोचता का वह भाव न रहा। एक ओर आँखें करके बोली—'आपकी बात मुझे विचित्र-सी जान पड़ती है। किसी तरह के कष्ट की कोई आशंका मुझे इस समय नही भास रही है। यदि कोई होगी, तो मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि रक्षा का उचित उपाय किया जायगा।'

'मेरी यह अभिलाषा है कि उस उपाय में मे भी हाथ बटाऊँ।'

'जब आवश्यकता होगी, आपसे कहने में निषेध न होगा।'

"मुझे मंत्र-दीक्षा दे दी जाय, तो मै भी पूजार्चा मे ही अपना सपूर्ण समय व्यतीत करूँ।"

"आप क्षत्रिय हैं और मैं ब्राह्मण नही हूं।"

'परन्तु आप देवी हैं और मैं देवी का उपासक।'

'आपको और कुछ नही कहना है? पिताजी के पास जाती हूँ।'

उत्तर की प्रतीक्षा बिना किये ही कुमुद वहाँ से चली गई। जब तक वह रसोई घर में नहीं पहुंच गई, कुञ्जरसिंह सोने को लजानेवाले उसके पैरो को देखता रहा। उसे ऐसा जान पड़ा जैसे उसकी नाड़ी में बिजली कौंध गई हो। जब वहाँ से चला, तब उसकी आँखों में तारे-से छिटक रहे थे। उस समय उसने यह नहीं देखा कि दालान में रामदयाल अपने स्थान पर न था।

[५६]

उसी दिन रामदयाल ने अपनी-गठरी-मुठरी बाँधकर जाने की तैयारी की।

नरपति से कहा—'कुछ दिनो के लिये बिदा माँगता हूँ।'

'परन्तु लौटकर जल्द आना, दुर्गा का स्मरण करना।' नरपति ने अनुरोध किया।

कुञ्जरसिंह ने अपनी कोठरी से रामदयाल की बात सुनकर जरा चैन की साँस ली।

रामदयाल ने जाने के पहले गोमती को अकेले में ले जाकर बात-चीत की। बोला—'आप एक बार कुमुद के सामने कुञ्जरसिंह का तो नाम कीजिएगा ?'

'क्यो ? वह तो उसे पहचानती हैं न ?' गोमती ने पूछा।

'जान-पहचान से भी कुछ अधिक गहरा रङ्ग है। मुझे भय है, शायद महाराज के खिलाफ वह भी कुञ्जरसिंह को कुछ मन्त्रणा दे।'

'महाराज के खिलाफ़। मैं इस बात से बहुत डरती हूँ। उनके पास दुर्गा की शक्ति है। इसमें तो रामदयाल, महाराज का बडा अनिष्ट होगा।'

'ज़रा भी न होगा।' रामदयाल ढिलाई के साथ बोला—'मैंने आज कुञ्जरसिंह और कुमुद का सम्भाषण सुना है। दोनो पहले से एक दूसरे को जानते हैं। आप महाराज की हित-कामना और कुञ्जरसिंह के अहित-चिन्तन की बात कहे, तब आपको मालूम हो जायगा कि वास्तव मे इन दोनो में क्या सम्बन्ध है और तब आपको विश्वास हो जायगा कि कुमुद देवी का अवतार-ववतार कुछ नही है।'

गोमती ने बात काटकर कहा—'ओह! अधिक कुछ मत कहो, इस विषय पर मैं जाँच-पड़ताल में लग रही हूँ।' फिर एक क्षण बाद बोली—'यह सभाषण किस समय हुआ था ?'

उत्तर मिला—'आज जब आप रसोई बना रही थीं। ये हाथ और रसोई बनाने का वह कष्ट! हे भगवान्!'

गोमती ने कहा—'यह सब कुछ नही है रामदयाल। जब जैसा समय आवे, तब वैसा भुगत लेना चाहिए। तुम महाराज के पास जा रहे हो?'

'हाँ, अभी जा रहा हूं।'

'महाराज तो दलीपनगर में ही होगे?'

'वहाँ पहुँचकर ठीक-ठीक मालूम होगा। उन्हे संसार-भर के तो झंझट घेरे रहते है।'

'उनकी सेना तो बड़ी अच्छी होगी? कालपी के नवाब का सामना अबकी वार भी खूब अच्छी तरह करेगे।'

'इसमे सन्देह को कोई स्थान नही है।'

'महाराज का स्वभाव तो वहुत दयालु है?'

'अपने लोगो पर बड़ी दया करते हैं। बडे वीर और दानी हैं।'

'तुम उनके पास सदा रहते हो?'

'जब कभी दलीपनगर मे होता हू, तब।'

'वह और किस-किस विषय मे प्रीति रखते हैं? अर्थात् शास्त्र-चर्चा, विद्वानो का संग इत्यादि भी होता है?'

'मै स्वयं इन बातो को कम समझता हू, परन्तु महाराज हैं बड़े रसिक।'

'रसिक!' आश्चर्य के साथ गोमती ने कहा—'रसिक से तुम्हारा क्या प्रयोजन?'

रामदयाल ने चतुरता प्रकट न करते हुये उत्तर दिया—'जब कभी महीने-पखवारे में एकआध घडी का अवकाश मिल जाता है, कुछ गाना-वाना सुन लेते हैं और कुछ नही।'

गोमती बोली—"हाँ, राजा हैं।'

फिर एक क्षण वाद पूछा—'कुमुद और उस व्यक्ति मे, जिसे तुमने वतलाया कि कुंजरसिंह है कोई विशेष बातचीत हुई?"

उसने उत्तर दिया—'ऐसे किसी विशेष वाक्य को सम्पूर्ण प्रसग से निकालकर बतलाने से तो मेरी बात की पूरी पुष्टि न होगी, परन्तु सारे वार्तालाप का प्रयोजन स्नेह या प्रेम को व्यक्त करने वाला अवश्य था।'

गोमती ने अवहेलना के साथ कहा—'उँह, मुझे क्या करना है? देखा जायगा। रामदयाल, तुम महाराज से यह मत कहना कि मै अपनी रसोई हाथ से बनाती हू।'

रामदयाल बोला—'आपने अच्छा किया, जो मना कर दिया, नही तो मैं अवश्य कह देता। महाराज को अबतक अवश्य कुछ खबर लेनी थी, परन्तु उन्हे मालूम न था कि आप यहाँ हैं।'

'अब भी।' गोमती ने कहा—'वह मेरी चिंता न करे। पहले अपने राज्य को सभाल ले। जब शाति स्थापित हो ले और वह बेखटके हो जायँ, तब इधर का ध्यान करें और कभी-कभी गाना-बजाना अवश्य सुन लिया करें।'

रामदयाल' बोला—'सो तो मैं उनके स्वभाव को खूब जानता हू। वह अभी न आवेंगे।'

रामदयाल जाने को उद्यत हुआ। गोमती ने कहा—'रामदयाल, तुम भूल मत जाना। जल्दी-से-जल्दी यहाँ की खबर लेना। एक बात का स्मरण रखना कि महाराज यहाँ छिप-लुककर न आवे। शत्रु बहुत पास है। पता लगने पर भारी अनिष्ट होगा।'

रामदयाल जुहार करके चला गया।

[५७]

रानियों के विद्रोह का पता राजा देवीसिंह को शीघ्र लग गया। जनार्दन को बहुत खेद और क्षोभ हुआ। खोज लगाने पर उसे मालूम हो गया कि रानियाँ रामनगर की गढ़ी मे पहुँच गई हैं। रामनगर का राव पतराखन दलीपनगर का जागीदार न था और अपेक्षाकृत भांडेर के अधिक निकट होने के कारण उसके ऊपर कुछ जोर नही चल सकता था। एक निश्चय करके जनार्दन राजा के पास गया।

राजा ने कहा—'तुम्हारा कहना न माना, इसलिये यह एक नई समस्या और कष्ट देने को खड़ी हो गई है।' और मुस्कराये।

जनार्दन ने देखा—'शब्द जिस कष्ट को व्यक्त करने के लिये कहे गये थे, वह उसकी मुस्कराहट में न जाने कहाँ विलीन हो गया।

जनार्दन उसके स्वभाव से परिचित हो गया था। बोला—'अब जैसे बनेगा, वैसे इस समस्या को भी देखना है। एक उपाय सोचा है।'

'वह क्या ?' राजा ने सतर्क होकर पूछा।

मन्त्री ने उत्तर दिया—'मैं एक विश्वस्त दूत दिल्ली को रवाना करता हूं। वह सैयदों की चिट्ठी कालपी के नवाब के नाम लायगा।'

राजा बोले—'उस चिट्ठी का असर एक वर्ष पीछे दिखलाई पड़ेगा। कौन पूछता है, उस अँधेरे गड्ढे में कि उस चिट्ठी का क्या होना चाहिए।'

'वह ऐसी चिट्ठी न होगी।' जनार्दन ने कहा—'कालपी के नवाब की सेना के लिए उस चिट्ठी में काफी काम पाया जायगा, अर्थात् नवाब अलीमर्दान को दिल्ली से बुलावा आवेगा।'

'दूत कौन है आपका ?' राजा ने पूछा।

'हकीमजी।' मंत्री ने उत्तर दिया—'वह स्वय सैयद हैं और राज-नीति में भी निपुण हैं।'

'और वह हमारे राज्य से कुछ विरक्त-से भी रहते हैं।' राजा ने मुस्कराकर कहा।

'नही महाराज ।' जनार्दन बोला—'आपके उदार और विश्वास-पूर्ण बर्ताव के कारण वह बहुत सतुष्ट हैं। मुझसे भी मित्रता का कुछ नाता मानते हैं। उनके बाल-बच्चे यही हैं और वह कृतज्ञ-हृदय पुरुष हैं। दलीपनगर दिल्ली के मुगल-सम्राटो का सहायक रहता चला आया है। हकीमजी की बात मानी जायगी और अलीमर्दान को अपना हठ छोडना पडेगा। इधर-उधर कही थोडे दिन के लिये चला जाय फिर रानियो के विद्रोह का दमन बहुत सहज हो जायगा। अवस्था शीघ्र कुछ ऐसी आती जा रही है कि थोडे दिनो बाद हमारा कोई कुछ न बिगाड सकेगा।'

राजा ने कहा—'मुठभेड बच जाय, तो अच्छा है, नही तो हमें एक जोर का हमला कालपी के नवाब पर भाडेर मे ही शायद करना पडेगा। विलम्ब होने से रानियाँ बाहर के कुछ सरदारो को अपनी ओर कर लेगी और हमारे यहाँ के भी कुछ मनमुटाव रखने वाले जागीरदार उभड खडे होगे।'

'उधर कुञ्जरसिंह भी अभी बने हुए हैं। जनार्दन बोला—'उनकी ओर से मुझे बहुत कम खटका है। किसी बात पर बहुत दिन जमे रहना उनके स्वाभाव में नही है। आजकल वह बिराटा की ओर हैं। यदि उन्होंने अलीमर्दान के साथ संधि कर ली, तब अवश्य अवस्था कुछ कष्ट-साध्य हो जायगी। उनका छोटी रानी के साथ मेल शायद हो जाय, परन्तु अलीमर्दान के साथ न होगा। मैंने उनकी गति की परख के लिये जासूस जोड़ रक्खे हैं। ठीक बात मालूम होने पर निवेदन करूँगा। तब तक मैं हकीमजी को दिल्ली भेजकर अलीमर्दान का प्रबन्ध करता हू।'

जनार्दन ने इस निर्णय के अनुसार हकीम को दिल्ली भेजा।

[५८]

भांडेर का पुराना नाम लोग भद्रावती बतलाते हैं। पहूज नदी के पश्चिमीय किनारे पर बसा हुआ है। खंडहरों पर खंडहर हो गये हैं। किसी समय बड़ा भारी नगर रहा होगा। अब कुछ मसजिदों और सोन तलैया के मन्दिर के सिवा और खास इमारत नही बची है। पहूज के पूर्वीय किनारे पर जंगल से दबा और भरको से कटा हुआ एक विशाल प्राचीन नगर है। नदी के दोनो ओर भरको, मैदानो, टीलों और पहाड़ियों के विशृङ्खल क्रम हैं। पहूज छोटी-सी, परन्तु पानी वाली नदी है और बड़ी सुहावनी है। भांडेर से दो-ढाई कोस दक्षिण-पूर्व की ओर जहाँ से कुछ अन्तर पर लहराती हुई पहूज नदी उत्तर-पश्चिम की ओर आई है—सालोन भरौली की पहाडियाँ हैं। इनके बीच मे पत्थर का एक विशाल तथा बहुत प्राचीन मन्दिर है। मन्दिर मे महादेव जी की मूर्ति प्रतिष्ठित है। यहाँ से बिराटा पश्चिम की ओर करीब छः कोस है। यही अलीमर्दान अपनी सेना लिये पडा था।

एक दिन रामदयाल अन्धेरे में अलीमर्दान की छावनी में आया। जरा दिक्कत के बाद अलीमर्दान के डेरे पर पहुँचा। कालेखाँ उसके पास मौजूद था।

रामदयाल को अलीमर्दान ने पहचान लिया। पूछा—'तुम यहाँ कैसे आ गये ? सुना था, कैद में हो।'

'कैद में अवश्य था, परन्तु छूट कर आ गया हूँ। महारानी भी कैद कर ली गई थी, परन्तु वह भी स्वतंत्र हो गई है।

'अब वह कहाँ हैं।'

'रामनगर में राव पतराखन की गढी में।'

अलीमर्दान ने आश्चर्य प्रगट किया—'उन जैसी वीर स्त्री शायद ही कही हो। कैसी जवाँमर्द और दिलेर हैं! मुझे उनके राखीबन्द भाई होने का अभिमान है।'

रामदयाल बोला—'प्रण के निभाने का ठीक समय अब आ गया है। दलीपनगर पर चढाई करने के लिये प्रार्थना करने को यहाँ भेजा गया हूं।'

अलीमर्दान ने कहा—'मैं दिल्ली के समाचारो के लिये ठहरा हुआ हूं। उस लड़ाई में उलझ जाने के बाद यदि दिल्ली का ऐसा समाचार मिला, जिससे किसी दूसरी जगह जाने का निश्चय करना पडा, तो बुरा होगा।'

'परन्तु।' रामदयाल ने विनती की—'आप हम लोगो को मझधार में नही छोड सकते। महारानी आपके भरोसे कैद से स्वतन्त्र हुई हैं। बडी रानी ने भी अबकी बार उनका साथ दिया है।'

'तब तो राज्य के कुछ अधिक सरदार उनके साथ होगे।' अली-मर्दान ने सम्मति प्रकट की—'सरदार महारानी के साथ हैं या उन्होने साथ देने का वचन दिया है?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'वचन दिया है। अवसर आते ही रण-स्थल पहुँच जायँगे।'

'कुञ्जरसिह कहाँ है?'

'उनके विषय मे भी निवेदन करने के लिये आया हूँ।'

यह कहकर रामदयाल ने ऊपर की ओर एक क्षण के लिये देखकर सिर नीचा कर लिया। कालेखाँ के प्रति इस संकेत को समझकर अलीमर्दान ने कहा—'तुम्हे जो कुछ कहना हो, बेधडक होकर कहो।'

एक बार कालेखाँ और फिर अलीमर्दान की ओर देखकर रामदयाल बोला—'मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ। आप कुञ्जरसिंह से भली-भाँति परिचित हैं। वह इस समय बिराटा की गढी मे है। राजा देवीसिंह से शायद अकेले ही लडने की चिंता कर रहे हैं।'

अलीमर्दान ने कहा—'बिराटा का सबदलसिंह क्या कुञ्जरसिंह का तरफ़दार है?'

'नही सरकार, उन्होंने कोई वचन नही दिया है।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'सच्ची बात कहूँगा। विराटा के राजा को अभी पता भी नही है कि कुञ्जरसिंह गढी में है।'

'यह कैसे।' अलीमर्दान ने अचम्भा किया।

रामदयाल बोला—'गढ़ी में देवी का मन्दिर है। पालर की वही पुजारिन लड़की उस मन्दिर में छिपी हुई है और वहीं पर कुञ्जरसिंह है।

'ऐं!' कालेखाँ ने कहा।

'हैं!' अलीमर्दान को ताज्जुब हुआ।

'हाँ सरकार।' रामदयाल बोला—मै अपनी आँखो से देख आया हूं।'

अलीमर्दान ने कुछ सोचकर कहा—'मैं कुछ दिनों से पता लगा रहा था, परन्तु मुझे सफलता नही मिली।'

कालेखाँ बोला—'अब तो हुजूर को पक्का पता लग गया। कोई शक नहीं रहा।

'यह सब ठीक है।' अलीमर्दान ने कहा—'परन्तु मैं मन्दिर या मन्दिर की पुजारिन किसी के साथ कोई ज्यादती नहीं करना चाहता।'

कालेखाँ ने आग्रह किया—'मन्दिर या मूर्ति के साथ ज्यादती करने का हुजूर ने कभी इरादा जाहिर नही किया, परन्तु मेरी विनती है कि वह पुजारिन तो देवी या मन्दिर तो है नही।

'नही कालेखाँ।' अलीमर्दान ने दृढ़ता के साथ कहा—'हिन्दू लोग उस पर विश्वास करते हैं। वह अवतार हो या न हो मैं हिन्दुओं के जी दुखाने वाले किसी काम को न करूँगा।'

रामदयाल हाथ जोड़कर बोला—'दीनबन्धु, वह न तो अवतार है और न कुछ और। मैं अपनी आँखो से सब बाते अच्छी तरह देख आया हूँ। उसका बाप हद दर्जे का लालची है और वह स्वयं कुञ्जरसिंह के पजे में शीघ्र आने वाली है।'

'क्यों?' अलीमर्दान ने आश्चर्य-सूचक प्रश्न किया।

'हां सरकार।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'मैंने अपने कानों कुञ्जरसिंह की बातचीत सुनी है। अभी वह उनके हाथो नही चढी है, परन्तु औरत है, उसका कुछ ठीक नही, कब कुञ्जरसिंह के साथ कहां भाग जाय।'

'हुजूर को रामदयाल की साख का यकीन करना पडेगा।' कालेखां ने कहा।

अलीमर्दान थोड़ी देर तक चुप रहा। सन्नाटा छाया रहा।

रामदयाल ने स्तब्धता भङ्ग की। बोला—'सरकार मेरे साथ वेश बदलकर चलें, तो अपनी आंखो सब देख ले।'

अलीमर्दान ने कालेखां की ओर गुप्त रीति से देखा। एक क्षण बाद बोला—'मुझे महारानी साहब से बातचीत करने के लिये एक दिन जाना है। वेश बदलकर विराटा भी हो आऊँगा। परन्तु मैं यह चाहता हू कि रामदयाल महारानी के पास का जाना अभी किसी को मालूम न हो। मैं कालेखां को भी साथ ले चलूंगा।'

[५९]

कुञ्जरसिंह को दलीपनगर का मुकुट प्राप्त करने की पूरी आशा थी, परन्तु वह सोचता था कि देवीसिंह बिना अधिकार के सत्ता धारण किये हुये है, इसलिये जी मे कड़ी ठेस-सी लगी रहती थी। इसके सिवा सिंहगढ़ पराजय का जब वह कारण ढूंढता था, तब उसका मन यही उत्तर देता था कि यदि रानी ने गड़बड़ न की होती तो पराजय न होती। परन्तु दलीपनगर का राज्य हाथ में आ जाता? अपनी आशाओ या दुराग्रहों के अनुकूल ही कुञ्जरसिंह ने अपने तर्क और युक्ति के सूत काते।

कुञ्जरसिंह के पास न सेना थी, न सरदार थे और न था उसके पास धन, परन्तु उसके पास निराशाओं की आशा थी। देवीसिंह और जनार्दन के प्रति हृदय में थी कुढ़न और रक्त में शूरता, जो असम्भव की प्राप्ति के लिये भी उद्योग करने की कभी कभी प्रेरणा कर देती थी।

उसने बिराटा का पडोस स्वच्छन्द गढ़पतियो को एकत्र करने के लिये ढूँढा था। पूर्व उदाहरण से उसे उत्साह मिला था। परन्तु बिराटा में आने पर उसने अपने मन को टटोला, तो देखा कि वहाँ अब अपने प्रयोजन पर आरूढ करने वाली वह निरन्तर लगन नही है, जो पहले कभी थी। रामदयाल के चले जाने पर उसे कुमुद से फिर एक बार बातचीत करने की अभिलाषा हुई। कोई विशेष विषय न था, कोई अर्थमूलक प्रश्न भी न था, परन्तु बातचीत करने की लालसा प्रबल थी। कुमुद नही मिली। प्रयत्न करने पर भी वह उससे न मिल पाया।

तब कुञ्जर अपने दूसरे ध्येय की प्राप्ति या खोज में बिराटा से निकल पड़ा। मुसावली से अपना घोड़ा लेकर और शीघ्र लौटने का वचन देकर वह अपने मित्रो की टोह में चल दिया।

उधर रामदयाल अलीमर्दान और कालेखाँ को छद्म-वेष में बिराटा लिवा लाया। वहाँ से उसे शीघ्र जाना पडा। जीवन में पहले कभी उसने हिन्दुओं के रीति-रिवाज का अभ्यास न किया था, इसलिये बदली हुई

वेश-भूषा का निर्वाह करना उसे लगभग असंभव प्रतीत हुआ। कालेखाँ को अपने बदले हुये वेश से घृणा थी और वह उसके निर्वाह करने का उपाय बहुत लापरवाही और उद्दंपन से कर रहा था। अलीमर्दान इसलिये इच्छा न होते हुये भी शीघ्र लौटा और रामदयाल के साथ रामनगर चला गया। अभ्यास न होने के कारण उन दोनो को नया वेश भारी आफत मालूम हो रहा था, इसलिये पूर्व-निश्चय के प्रतिकूल उन दोनो ने रामनगर पहुचते-पहुचते वह वेश करीब-करीब आधा त्याग दिया।

राव पतराखन ने गढ़ी में प्रवेश के पश्चात उन दोनो के विषय में रामदयाल से पूछा, उसने उत्तर दिया—'महारानी के सरदार हैं। वेश बदले हुये हैं। कुछ सलाह करके अभी भाडेर की ओर कालपी के नवाब से बात करने के लिये लौट जायँगे। मैं नवाब साहब के पास हो आया हू। सहायता का वचन पक्का हो गया है।'

इससे पतराखन को बहुत शाति नही मिली। बोला—'सलाह-सम्मति यदि शीघ्र स्थिर हो जाय, तो बडा सुभीता रहे। लडने-भिडने का काम पडे, तब मेरे सिर को आगे देखना, परन्तु अपरिचित आदमियो को इस तरह बेखटके अपने घर मे देखकर मुझे परेशानी होती है।'

रामदयाल ने कहा—'घबराइये नही, अब और कोई अपरिचित यहाँ न आयेगा। बिराटा के राजा ने सहायता का वचन नही दिया है; इसलिये शीघ्र वहाँ से धावा होगा और हम लोग उस गढी मे चले जायँगे। तब तक तो आपका हमारे आतिथ्य का कष्ट सहन करना ही पड़ेगा।'

राव पतराखन तुरन्त नरम पड गया। बोला—'नही, मेरा यह मतलब न था। आप लोगो का घर है। जब तक जी चाहे, रहे। मैंने केवल अपरिचित लोगो के विषय मे कहा था। समय बुरा है, नही तो कोई बात न थी। आवश्यकता पडने पर बिराटा के ऊपर चढाई आप यही से बैठे-बैठे कर सकते हैं।'

रामदयाल रानियों के पास चला गया। वह अलीमर्दान और कालेखाँ को पहले ही एक ओर बिठला आया था।

राव पतराखन उस दिन विराटा के ध्वस्त होने की कल्पना पर अपने मन को भुलाता रहा।

कभी-कभी जी में सन्देह उठता था—'क्या कालपी का फौजदार सचमुच रानियों की सहायता करेगा ?'

[४१]

रामदयाल राव पतराखन से बातचीत करने के उपरान्त रानियो के पास गया ।

छोटी रानी से बोला—'नवाब साहब आये हैं ।'

उन्होने पूछा—'सेना लेकर या अकेले ही ?'

रामदयाल ने जवाब दिया—'अपने सेनापति के साथ अकेले आये हैं। आपका आशीर्वाद लेकर इसी समय भाडेर चले जायँगे !'

'अभी क्या सीधे भाण्डेर से आ रहे हैं ?' बडी रानी ने प्रश्न किया ।

'नही महाराज ।' उसने बिना कुछ सोचे-समझे उत्तर दिया—'बिराटा होकर आये हैं ।'

छोटी रानी बोली—'विराटा के राजा से कोई बातचीत हो आई है ?'

रामदयाल ने कहा—'वहाँ वह देवी का दर्शन करने गये थे ।'

यह बात कहने के बाद रामदयाल मन में पछताया ।

बडी रानी बोली—'दर्शन करने गये थे ! वहाँ मन्दिर के भीतर कैसे जाने पाये होगे ?'

रामदयाल ने बात बनाई— उन्होने दर्शन करने की उत्कट अभिलाषा प्रकट की, तो मैं उन्हे वेश बदलवाकर लिवा गया, चढौती चढाकर वह तुरन्त वहाँ से चले आये ।'

बड़ी रानी ने कहा—'बिराटा की वह देव-कन्या वहाँ है ?

रामदयाल झूठ न बोल सका—'हाँ महाराज, वह वही है ।' फिर तुरन्त एक क्षण बाद उसने कहा—'परन्तु जैसा कुंजरसिंह राजा और देवीसिंह राजा ने झूठमूठ उड़ा रक्खा है, नवाब वैसा आदमी नही हैं । वह हमारे लोगो की तरह ही देवी-देवताओ को मानता है ।'

बड़ी रानी चुप हो गईं ।

छोटी रानी ने कहा—'बिराटा के राजा से कोई बातचीत हुई या नही ?'

'अवसर नही मिला महाराज।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'उन्हें भाडेर लौटने की जल्दी पडी रही है। यदि विराटा का राजा हमारा साथ देने से नाही भी करेगा, तो इसमे हमारी कुछ हानि नही हो सकती। अपना बल बहुत अधिक है। मैं नवाब की पूरी सेना देखकर चकित हो गया हू।'

छोटी रानी ने कहा—'नवाब को बुला ला। जल्दी बातचीत करके लौट जायँ और तुरन्त कार्य-क्रम का निर्णय करके दलीपनगर से उस डाकू को भगा दे।

रामदयाल पर्दे का प्रबन्ध करके अलीर्दान और कालेखाँ को लिवा लाया वे दोनों अपने उसी अधूरे वेश में थे। दोनों रानियों ने ओट से उन दोनो को देखा। छोटी रानी को हँसी आई। बडी रानी के मन में सदेह जगा।

रामदयाल के मार्फत बातचीत होने लगी।

छोटी रानी—'अब क्या किया जाय? आप ही के भरोसे इतनी हिम्मत करके और कष्ट उठाकर दलीपनगर को छोड़ा।'

अलीमर्दान—'मैं तुरन्त हमला करने के लिये तैयार हूँ दिल्ली से एक संदेशा आनेवाला है। उसी की बाट देख रहा हूं। केवल आठ-दस दिन का विलंब है। तब तक आप अपने सरदार भी इकट्ठे कर ले।'

छोटी रानी—'यह हो रहा है। बिराटा का राजा किस ओर रहेगा।'

अलीमर्दान—'वह यदि आपके पक्ष मे न होगा, तो मैंने उसे चकनाचूर करने की ठान ली है।'

छोटी रानी—'आप पहले दलीपनगर या सिंहगढ पर आक्रमण करेंगे?'

अलीमर्दान—'दोनों ठिकानों पर एक साथ धावा बोला जायगा। आप क्या बात पसन्द करती हैं?'

छोटी रानी—'ठीक है। मैं स्वयं दलीपनगर पर चढ़ाई करूँगी। आप हमारी सेना के साथ रहे। अपने सेनापति को सिंहगढ़ की ओर भेजें।'

अलामर्दान—'यही मैंने सोचा है। यदि कार्य-विधि में कोई तब्दीली हुई, तो आपको मालूम हो जायगा।'

छोटी रानी—'अबकी बार तोपों की सख्या बढा दी गई या नही।'

अलीमर्दान—'पहले से कही अधिक, कई गुनी।'

छोटी रानी—'और सैनिक ?'

अलीमर्दान—'सैनिक भी बढा दिए गए हैं।'

बड़ी रानी ने धीरे से छोटी रानी के कान में कहा—'बदले में नवाब क्या लेंगे ?'

'कुछ नही।' छोटी रानी ने कान ही मे उत्तर दिया—'वह मेरे राखीबंद भाई हैं।'

बड़ी रानी ने कहा—'पहले तय कर लेना चाहिये। पीछे पैर फैलावेंगे, तो बहुत गड़बड़ होगा।'

'क्या गड़बड़ होगा ?' छोटी रानी ने पूछा।

बड़ी रानी ने उत्तर दिया—'दलीपनगर को अपने अधिकार में कर लेंगे।'

'कर ले।' छोटी रानी ने तीव्रता के साथ, परन्तु बहुत धीरे से कहा—'देवीसिंह डाकू से तो दलीपनगर का छुटकारा हो जायगा। चाहे प्रलय हो जाय, परन्तु देवीसिंह को दलीपनगर से निकालना और जनार्दन को प्राणदण्ड देना है।'

छोटी रानी ने अलीमर्दान को कहला भेजा—'बडी महारानी आशीर्वाद देती हैं कि आपको विजय-लाभ हो।'

अलीमर्दान ने चरण छूना कहा।

इसके बाद थोड़ा-सा खा-पीकर वे दोनो वहां से चले गये।

[६१

रामनगर से लौटकर एक दिन कालेखां विराटा में सवदलसिंह के पास आया। राजा ने उसका आगत-स्वागत किया। जितनी देर वह ठहरा, राजा देवीसिंह के विरुद्ध बातें कहता रहा, परन्तु जाते समय तक अपने आने का तात्पर्य नहीं बताया। सवदलसिंह ने सोचा, युद्धों का समय है, कुंजरसिंह की सहायता का वचन नहीं, तो भरोसा दे ही दिया है, नवाब भी शायद उसका पक्षपाती हो; न भी हो, तो शत्रु का शत्रु मित्र के समान होता है। यह कल्पना करके उसने निष्कर्ष निकाला कि देवीसिंह से जो आगामी युद्ध होने वाला है, उसमे नवाब की यथाशक्ति सहायता करने के लिये कहने को आया है। स्पष्ट न कहने पर भी भाव वही था। कालपी के साथ विराटा का क़रीब-क़रीब मातहती का सम्बन्ध था, इसलिये स्पष्ट कथन की जरूरत सवदलसिंह ने नहीं समझी। कालेखां से जाने के पहले वह बोला—'हमारे पास आदमी रामगनर के रावसाहब से तो अधिक नहीं हैं, परन्तु हृदय हमारा वैसा लोभी नहीं है। नवाब साहब के लिये हम लोग अपना सिर देने को तैयार हैं।'

'यह तो उम्मीद ही है।' कालेखाँ ने कहा—'जिस समय ज़रूरत पड़ेगी, आपसे देवीसिंह को ललकारने के लिये कहा जायगा।'

'आपने बड़ी कृपा की, जो हमारी कुटी पर आये।' राजा ने विनयपूर्वक कहा—'इतनी-सी बात के लिये कष्ट उठाने की ज़रूरत न थी।'

'पुराने रिश्तो को ताजा करने के लिये कभी-कभी मिलने की ज़रूरत पड़ती है।' कालेखां बोला—'एक और भी छोटा-सा काम था, परन्तु उसके बारे में अभी तक इसलिये अर्ज़ नहीं किया था कि और महत्व की बातो के कारण उसका खयाल ही न रहा था। अब याद आ गई।'

विनीत सवदलसिंह ने और भी नम्र होकर पूछा—'मेरे लायक़ और जो कुछ आज्ञा हो कहिये।'

कालेखां ने एक-एक शब्द को तौलकर कहा—'नहीं, ऐसी कोई बड़ी बात नही है। वह जो आपके यहां देवी जी के मन्दिर में पालर से एक लड़की भागकर आई है—'

कालेखा रुक गया। सबदलसिंह ने भयभीत होकर प्रश्न किया—'क्या उस बेचारी से कोई अपराध हो गया है? देखने में तो बड़ी भोली भाली दीन कन्या है।'

'अपराध नही बना है।' कालेखां ने नम्रता का आवरण दूर फेंककर कहा—'उसके सौभाग्य में रानी बनना लिखा है, नवाब साहब को उसके सौन्दर्य के मारे खाना-पीना हराम है।'

सबदलसिंह का कलेजा धक् धक् करने लगा। कोई शब्द मुँह से न निकला।

कालेखा ने उसी स्वर में कहा—'आपके लिये कोई संकट की समस्या नही है। आपके धर्म पर कोई हस्तक्षेप नही किया जा रहा है। नवाब साहब आप लोगो के मूर्ति-पूजन और लाखो देवी-देवतो के पूजन में कभी खलल नही डालते। वह लडकी आपके गाव की भी नही है। आपको कुछ करना नही होगा। हम सब ठीक-ठाक कर लेगे। यह हम कुरान शरीफ की कसम पर आपको यकीन दिलाते हैं कि आपके मन्दिर या देवता का किसी तरह का अपमान न किया जायगा और वह लडकी नवाब साहब के महल में रहते हुये भी शौक़ से अपनी पूजा-पत्री करती रह सकती है।'

सबदलसिंह बोला—'मैं इसमें अपने लिये बड़ी भारी आफत देख रहा हूँ। उस लडकी को लोग देवी का अवतार मानते हैं और वह मेरी जाति की है। मे क्या करूँ, कुछ समझ में नही आता।'

कालेखां ने कहा—'आपको कुछ करने की जरूरत नही। आप चुपचाप अपने घर में बैठे रहिये। हम दोनो आदमी यानी मैं और नवाब साहब उसे एक दिन चुपके से आकर लिवा जायेंगे। वह हँसती-खेलती यहां से चली जायगी। ऐसा हो जाने देने में आपका फायदा है। लड़ाई

में आपको आदमी या रुपया-पैसा न देना पड़ेगा और मौका आने पर आपके पुराने दुश्मन रामनगर के राव को नष्ट करके वह गढ़ी भी आपको दिला दी जायगी।'

सबदलसिंह ने उस समय कोई और उपाय न सोचकर कहा—'हमें थोड़ा सा समय दीजिए। भाई-बन्धो से बात करके बहुत शीघ्र कहला भेजूंगा।'

'कहला भेजियेगा।' कालेखां रुखाई के साथ बोला—'आपके या आपकी जागीर के साथ कोई ज़ुल्म नही किया जा रहा है। यदि ज़रा-सी बात के लिये आपने नवाब साहब का अपमान किया, तो नाहक़ आप सब लोग तकलीफ पावेगे।' फिर जाते-जाते उसने कहा—'यदि उस लड़की को आपने कही छिपा दिया या भाग जाने दिया, तो अन्त में जो कुछ होगा, उसका दोष मेरे मत्थे न दीजियेगा।'

कालेखां यह धमकी देकर चला गया। सबदलसिंह बहुत खिन्नमन होकर एक कोने में बैठे-बैठे सोच-विचार में डूबता-उतराता रहा। जब मन कुछ स्वस्थ हुआ, तब जो-जो बाते कालेखाँ के साथ हुई थी, उनको एक-एक करके, बारबार कल्पना करके कुढ़ने लगा।

वह नम्र-प्रकृति का मनुष्य था, परन्तु ऐसी प्रकृति के मनुष्यों की तरह जब उनकी नम्रता की अवलेहना होती है, या उनकी विनय को पद-दलित किया जाता है, तब संभव और असंभव प्रयत्नो को सोचने लगा।

उसने सबसे पहले अपने चुने हुए भाई-बन्दों को इस पीड़ा-पूर्ण रहस्य के प्रकट करने और उनसे सलाह करके आगे का कार्य-क्रम निर्णय करने का निश्चय किया।

उसने उसी दिन उन लोगों के साथ बातचीत की। नरपतिसिह बहुत उत्तेजित और भयभीत था। आशा, विश्वास और सौगंधें दिलाकर उसे कुछ शान्त किया। परन्तु इन दाँगियो के निश्चय का कुछ समय तक किसी को पता न लगा। केवल यह देखा गया कि गढ़ी की मरम्मत शीघ्रता के साथ हो रही है और तोपे मार्के के स्थानों पर लगाई जा रही हैं।

[६२]

'अभी दिल्ली दूर है।' एक पुरानी कहावत चली आती है। परन्तु जनार्दन के प्रयत्न से हकीम आगाहैदर को दिल्ली की दूरी बहुत कम अखरी। वह खुशी-खुशी जल्दी लौट भी आया और उसे अपनी आशातीत सफलता पर गर्व था। उसने जनार्दन को दिल्ली के प्रधान मन्त्री की चिट्ठी दी, जिसके तीन चौथाई से अधिक भाग में आदाब और अलकाबो की धूम थी और थोड़ी-सी जगह में लिखा था कि आप और कालपी का नवाव वादशाह दाम इकबालहू की दो आँखे हैं, किसी को भी कष्ट होने से उन्हे दुःख होगा, अलवत्ता इस समय नवाब अलीमर्दान की दिल्ली में बहुत ज़रूरत है, इसलिये वह फौरन दिल्ली बुलाये जाने वाले हैं।

जनार्दन ने बड़े हर्ष के साथ यह चिट्ठी राजा देवीसिंह को सुनवाई। उन्हे कोई हर्ष नही हुआ।

वोले—'यह सब अपार पाखण्ड मुझे धोखे में नही डाल सकता। पहले मारे सो ठाकुर, पीछे मारे सो फिसड्डी, मैं तो यह जानता हूं। बहुत होगा, तो दिल्लीवाले अपने नवाब की मदद कर देंगे, बस। परन्तु मैं बुन्देखण्ड मे वह आग सुलगाऊँगा, जो चंपत महाराज ने भी न सुलगाई होगी और फिर बहुत गिरती हालत में मराठो को तो बुलाया ही जा सकता है।'

'मै नाहक युद्ध करने के पक्ष मे नही हूँ।'

मुदित-हर्षित जनार्दन बोला—'मराठे सेत-मेंत सहायता किसी की नही करते। उन्हे बुलाइयेगा, तो वे यहाँ से कुछ-न-कुछ लेकर ही जायेंगे।'

'पडितजी।' देवीसिंह ने उत्तेजित होकर कहा—'मराठे अगर कुछ लेंगे, तो उन्हे मैं दे दूँगा, परन्तु जीते जी नवाबो और सूवेदारों को सिर नही झुकाऊँगा। क्या भूल गये कि अलीमर्दान बिराटा के मन्दिर को नष्ट करने वाला है?'

'नहीं महाराज, मै नहीं भूला हूँ।' जनार्दन बोला—परन्तु मेरा एक निवेदन है।'

'कहिये।' राजा ने कहा।

जनार्दन बोला—'थोड़े दिन युद्ध स्थगित रखिये। यदि नवाब दिल्ली चला गया, तो ठीक ही है और यदि न गया, तो रण-भेरी बजवा दीजिये।'

राजा बोले—'मैं ठहरा हूँ, युद्ध न करूँगा, परन्तु तैयारी में कोई कसर नही लगाऊँगा। मेरी इच्छा है कि बैरी के घर पर धावा करूँ। उसे यहाँ आने देना और पीछे सँभाल करना बुरी नीति होगी। मैं लोचनसिंह दाऊजू को सिंहगढ से बुलाकर ऐसे स्थान पर भेजना चाहता हूं, जहाँ से वह बैरी के घर में घुसकर छापा डाल सके।'

जनार्दन ने विरोध की इच्छा रखते हुए भी प्रतिवाद नही किया। केवल यह कहा—'सिंहगढ़ बहुत महत्त्व-पूर्ण स्थान है, वहाँ किसे भेजियेगा?'

'और सरदार हैं, जो अपने जौहर दिखलाने की अकांक्षा रखते हैं।' राजा बोला—'अबकी बार आपकी भी रण-कुशलता की परीक्षा ली जायगी।'

जनार्दन ने सच्चे हर्ष के साथ कहा—'मै दयावंत, लड़ना तो नही जानता, परन्तु लड़ाई से भागना भी नही जानता।'

राजा बोला—'आप दलीपनगर को अपने किसी विश्वास सेवक या मित्र की निगरानी मे छोड़ देना। अबकी बार हम सब लोग अपने समग्र बल से इस धर्म-द्रोही को ठीक कर दे।'

कृतज्ञता-सूचक स्वर में जनार्दन बोला—'मेरा शरीर यदि अन्नदाता की सेवा में नष्ट हो जाय, तो इससे बढ़कर और किसी बात में मुझे सुख नही होगा।'

फिर राजा से पूछा—'यदि आज्ञा हो, तो मैं स्वयं बिराटा की ओर वास्तविक स्थिति की खोज कर आऊँ? बहुत शीघ्र लौटकर आ जाऊँगा। जासूस लोग बात का बिलकुल ठीक-ठीक पता नही लगा पा रहे है।'

'आपको यदि किसी ने पहचानकर पकड़ लिया।' राजा ने उत्तर दिया---'तो मैं यह समझूगा की दलीपनगर की आधी से अधिक हार हो गई और मेरा दायाँ हाथ टूट गया।'

'और अन्नदाता।' जनार्दन बोला—'ससार मे दलीपनगर के नरेश के लिये लोग यह भी कहेगे कि न मालूम उनके पास अभी कितने और ऐसे स्वामिधर्मी आदमी होगे।' इस प्रच्छन्न आत्म-श्लाघा पर जनार्दन जरा लज्जित हुआ।

परन्तु राजा ने उसे कुछ और बोलने देने के पूर्व ही कहा—'मै तुम्हारी इच्छा का अवरोध न करूँगा।'

जनार्दन बोला—'महाराज, यदि मैं अपने इस नये काम में सफल हुआ तो भविष्य में मेरे जासूस बहुत अच्छा काम करेगे।'

[६३]

जिस दिन से कालेखाँ बिराटा से गया, वहाँ के वातावरण में सन्नाटा सा छा गया। एक भ्राति-सी फैली हुई थी, जिसके विषय में खुलकर चर्चा करने में भी लोगों का मन नही जमता था। आने वाले संकट का साफ़ रूप बहुत कम लोगों की समझ में आ रहा था, परन्तु यह स्पष्ट था कि बिराटा निरापद् स्थान नही है। खतरे के समय बिराटा-निवासियो का ग्राम त्यागकर उस पार जङ्गल और भरकों में महीनों छिपे रहना कोई असाधारण स्थिति न थी। परन्तु इस समय तक विपद् के ठीक-ठीक रूप की कल्पना को आभास न मिला था, इसलिये घबराहट थी।

नरपतिसिंह को उसका यथासम्भव यथावत् रूप बतलाया गया था। उसे देवी का भरोसा था, परन्तु वह बाहर के भी किसी आश्रय के लिये उद्योग करने की जी में ठान चुका था।

कुमुद से उसने ध्वनि में और अस्पष्टताओं के आवरण में ढककर बात कही। बोला—'दुर्गा ने ही पालर की रक्षा की थी। यहाँ पर भी वह रक्षा करेगी। मै एक दिन के लिये दलीपनगर जाऊँगा।' कुमुद से और कुछ न कहकर वह मूर्ति के सामने प्रार्थना करने लगा।

स्पष्ट तौर पर बतालये बिना भी कुमुद ने बात समझ ली।

गोमती ने मन्दिर के अन्य आने-जाने वालों से जो बिराटा में रहते थे, पूछा। उन्हे ठीक-ठीक कुछ नही मालूम था।

एक बोला—'राजा देवीसिंह यहाँ आकर युद्ध करने वाले हैं, उधर अलीमर्दान की तोपे हमारी गढ़ी पर गोले बरसायेंगी।'

सबदलसिंह ने अपने चुने हुए भाई बन्दो को छोड़कर ठीक बात किसी को नही बतलाई थी। इस कारण गोलमाल फैला हुआ था। इस विषय को लेकर गोमती और कुमुद में बातचीत होने लगी। नरपतिसिंह ज़रा फासले पर प्रार्थना कर रहा था।

कुमुद ने कहा—'विपद् में धीरज रखना चाहिए। दुर्गाजी का भरोसा सबसे बड़ा बल है। दूसरे आश्रय छूँछे हैं।'

गोमती ने पूछा—"अलीमर्दान यहीं से क्यों युद्ध करेगा ?"

'उसकी मति फिर गई है, वह बावला है। वह मन्दिर के ऊपर उत्पात किया चाहता है।'

'तभी दलीपनगर के महाराज यहीं आकर युद्ध करना चाहते हैं।'

'तुम्हे कैसे मालूम ?'

'मैंने एक गांववाले से सुना है।'

'यह गलत है।'

गोमती ने हाथ जोड़कर कहा—'मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिये; ठीक बात क्या है, मै जानना चाहती हूँ। जो कुछ मुझसे बनेगा, मैं भी करूँगी।'

कुमुद ने आकाश की ओर नेत्र करके उत्तर दिया—'एक बादल उठने वाला है। मन्दिर के ऊपर उपल वर्षा होगी। परन्तु उसका कुछ बिगड़ नही सकेगा। देवी का सार्वभौम राज्य है।'

'यह मै क्या कह सकती हूँ ?' कुमुद ने उत्तर दिया। फिर एक क्षण ठहर कर बोली—'वह शीघ्र ही अपने ऊपर दुर्गा के क्रोध को बुलावेगा।'

'और महाराज यहाँ आकर युद्ध करेंगे ? वह बड़े धर्म-परायण और दुर्गा के भक्त हैं।'

'करे, परन्तु मैं यह नही चाहती। इसमें अनर्थ होगा; अनिष्ट होगा।'

गोमती घबराकर बोली—'तो क्यो ? धर्म की रक्षा करने में अनर्थ और अनिष्ट कैसा ?'

कुमुद ने कहा—'मैं यहाँ खून-खराबी नही देखना चाहती। बेतवा का यह शुद्ध सलिल देखो, कैसी शुभ्र धारा है। दोनो ओर कैसा हराभरा जंगल है। चारो ओर कैसा आनन्दमय सुनसान है। कैसी एकांत शान्ति है। मनोहर एकान्तता की गोद में मुस्कराते हुए शिशु-जैसा यह मन्दिर है। उसके ऊपर रक्त-स्राव ! कल्पना करने से कलेजा काँपता है।"

कष्ट की इस कल्पना से गोमती का एक रोयाँ भी न काँपा। अविचलित भाव से बोली—"दुर्गा अपने भक्तो के हृदय में बल और

उल्लास भरें। इस मनोहर स्थान की अवश्य रक्षा होगी। यदि महाराज आ गए, तो रक्त-पात कम होगा; यदि न आए, तो न जाने कितने लोग भेड़-बकरी की तरह यों ही काट डाले जायँगे।'

इतने में नरपतिसिंह प्रार्थना करके उन लड़कियों के पास आ पहुंचा। बोला—'इस समय देवी के भक्तों में सबसे अधिक प्रवल राजा देवीसिंह जान पड़ते हैं। उन्हे दुर्गा का आदेश सुनाने के लिए जा रहा हूँ। अब की बार उन्हे अपने सर्वस्व का बलिदान करके दुष्टो का दमन करना होगा।'

'यह आपसे किसने कहा कि आप राजा देवीसिंह के पास इस याचना के लिये जायँ ?' कुमुद ने सिर ऊँचा करके प्रश्न किया।

नरपतिसिंह के उत्तर देने के पूर्व ही गोमती बोली—'न तो इसमें किसी के कहने सुनने की कोई बात है और न, यह याचना है। यह दुर्गा की आज्ञा है।'

'नही है।' कुमुद ने गंभीर होकर कहा—'देवी की यह आज्ञा नही है। देवीसिंह इसके अधिकारी नही हैं। वह यदि रक्षा करने आयेगा, तो निश्चय जानो हानि होगी, लाभ न होगा।'

नरपतिसिंह सकपकाया।

गोमती दृढ़ता के साथ बोली—'इसमे देवी का अनिष्ट नही हो सकता। राजा का अमंगल हो, तो हो। परन्तु क्षत्रिय को अपने कर्त्तव्य पालन में मंगल-अमंगल का विचार नही करना पड़ता। उसे तो प्रयत्न करने-भर से सरोकार है। आप काकाजू राजा के पास अवश्य जायँ, उन्हें लिवा लाएँ और उनसे कहे कि—'

यहाँ गोमती अपने आवेश के द्रुतवेग के कारण स्वयं रुक गई, कुमुद की क्षणिक उत्तेजना शांत हो गई थी। बहुत मीठे स्वर में बोली—'गोमती, तुम्हे व्यर्थ ही कष्ट झेलना पड़ रहा है। मैं नवाब की आँखो में मार डालने योग्य भले ही समझी जाऊँ, क्योकि दुर्गा की पूजा करती हूँ, परन्तु तुमने किसी का क्या बिगाड़ा है ? तुम क्यो यहाँ वन के क्लेशो को नाहक भुगत रही हो ? मेरी एक सम्मति है।'

'क्या आदेश है ?' गोमती ने भोलेपन के साथ, परन्तु काँपते हुये स्वर में पूछा।

'तुम दलीपनगर के राजा के पास चली जाओ।' कुमुद ने कहा।

'क्यो ?' नरपति ने पूछा।

'क्यो ?' क्षीण स्वर में गोमती ने प्रश्न किया।

कुमुद ने उत्तर दिया—'तुम रानी हो। वह राजा हैं। तुम्हारे हाथ में उस रात का कंकरण अब भी बँधा हुआ है। भाँवर पडना-भर रह गई थी। वह दलीपनगर में हो जायगा। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आगामी युद्ध जो राजा और नवाब के बीच यहाँ होने वाला है, कुशल-पूर्वक समाप्त न होगा। इसलिये मैं चाहती हू कि गोमती, तुम दलीपनगर चली जाओ। देवी सर्वव्यापिनी है। हम लोग किसी जङ्गल में भजन करेंगे।'

नरपति तुरन्त बोला—'चाहे जो कुछ हो, अबकी बार नवाब के साथ उनका रण मचेगा। राजा सबदलसिंह ने भी निश्चय कर लिया है। मै रणनिमंत्रण देने राजा देवीसिंह के पास जा रहा हूँ। मुझे यह कार्य सौपा गया है। वहाँ मे लौटकर हम लोग भले ही जङ्गल में चले जायँगे, परन्तु अभी हाल में उसके लिये कोई काफी कारण नही समझ में आता। गोमती हमारे साथ चलना चाहे, तो हम बेखटके उसे महलो में पहुँचा देगे। मैं अकेला नही जाऊँगा और भी कई लोग जायँगे।'

तिरस्कार-पूर्ण स्वर में गोमती ने कहा—'मैं स्वय वहाँ जाऊँगी। मेरी बोटी-बोटी चाहे कोई काट डाले, परन्तु मैं ऐसे तो कदापि नहीं जाऊँगी। मै भी इनके साथ जङ्गल मे भजन करने को तैयार हूं।'

कुमुद ने कहा—'तब आप यो ही बहुत-सी खून खराबी कराने के लिये क्यो दलीपनगर जाते हैं ? यदि नवाब इस बात को सुनेगा, तो और भी चिढ़ जायगा।'

'बात तो बिल्कुल ठीक है।' नरपति बोला—'परन्तु राजा सबदलसिंह ने निश्चय कर लिया है और मुझे अपने लोगो का अगुआ बनाया है।

यदि मैं न जाऊँगा, तो और लोग अवश्य जायंगे। न जाने से मेरी बड़ी निन्दा होगी। राजा देवीसिंह सबदलसिंह के अन्य भाई-बन्दों द्वारा न्योता भी पाकर लड़ाई के लिये आवेंगे, परन्तु मुझे इसलिये चुना गया है कि वह आने में किसी प्रकार का विलंब या संकोच न करेंगे।'

गोमती ने जोश के साथ कहा—'आपको अवश्य जाना चाहिये।'

ऊपर की ओर देखकर कुमुद बोली—'अच्छी बात है, जाइये। जो कुछ होना होगा, वह बिना हुये नहीं रुकेगा।'

नरपति बोला—'मैं वहाँ गोमती की बात अवश्य कहूंगा।'

'आवश्यकता नहीं है।' गोमती बोली।

नरपति ने कहा—'केवल इतना कि तुम यहाँ कुशल-पूर्वक हो।'

[६४]

कुमुद की इच्छा न थी कि नरपति दलीपनगर के राजा को आमन्त्रित करने जाय, परन्तु वह उसे दृढता और स्पष्टता के साथ न रोक सकी। शायद कुमुद को स्पष्टता या दृढता उस समय कुछ भी पसन्द नही आई। भीतरी इच्छा के इस तरह अवरुद्ध रह जाने के कारण उसका मन चंचल हो उठा, किसी से बातचीत करने की इच्छा न हुई। मन में आया कि इस स्थान को छोड़कर कही दूर चले जाँय यह असम्भव था। कुमुद उस स्थान को छोडकर अपनी कोठरी में चली गई और भीतर से उसने किवाड़ बन्द कर लिये। गोमती ने समझ लिया कि उसके लिये भीतर जाने के विषय मे निमन्त्रण नही है।

गोमती अकेली मन्दिर की ड्योढी में बैठ गई। दलीपनगर और उसके राजा से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाली घटनाओ की कल्पनाएँ मन में उठने लगी। उन सब कल्पनाओ के ऊपर रह-रहकर उठने वाली अभिलाषा यह थी कि नरपति राजा से यह न कहे कि गोमती बिराटा के बीहड में अकेली पड़ी है, उसे लिवा लाओ। इसी समय रामदयाल मन्दिर मे आया।

उसे देखकर गोमती को हर्ष हुआ। मुस्कराती हुई उसके पास उठ आई। आतुरता और उत्सुकता के साथ उसने कुशल-मङ्गल का प्रश्न किया।

इस स्वागत से रामदयाल के मन में भीतर ही भीतर एक स्फूर्ति-सी, एक उमङ्ग-सी उमड़ी।

उसने कहा—'मैं तो आपके दर्शन मात्र से सुखी हो जाता हूं। आज यहां कुछ सन्नाटा-सा जान पड़ता है।'

'नरपति, काका महाराज के पास दलीपनगर अभी-अभी गये हैं।' गोमती बोली—'कालपी का नबाब इस नगर और मन्दिर को विध्वन्स करना चाहता है। उसके दमन के लिये रण-निमन्त्रण देने के लिये वह गये हैं। तुम्हे महाराज कब से नही मिले ?'

'मुझे तो हाल हीं में दर्शन हुये थे।'

'कुछ कहते थे ?'

'बहुत कुछ। यहाँ कोई पास में नही है।'

'नही है। बाहर चट्टान पर चलो। वहां बिलकुल एकान्त है।'

दोनों मन्दिर के बाहर एक चट्टान पर चले गये। बड़े-बड़े ढोंके एक दूसरे से भिड़े हुये धारा की ओर ढले चले गये थे। वहा जाकर वे एक विशाल चट्टान से अटककर खँग गये थे। एक बड़े ढोके पर गोमती बैठ गई। पेड़ की छाया थी। वहां रामदयाल खड़े-खड़े बातचीत करने लगा।

बोला—'रण की बड़ी भयङ्कर तैयारी होरही है। नवाब और उसके मित्रों से वह लोहा बजेगा, जैसा बहुत दिनो से न बजा होगा। विराटा बहुत शीघ्र बड़ी प्रचण्ड आँधी में पड़ने वाला है और कारण बड़ा साधारण-सा है।'

'साधारण-सा !' गोमती ने आश्चर्य प्रकट किया—'तुम्हारा क्या अभिप्राय है !'

रामदयाल आवाज को धीमा करके बोला—'अलीमर्दान मन्दिर विध्वंस नही करना चाहता, कुंजरसिंह की सहायता करना चाहता है और महाराज यही आकर कुंजरसिह को घर दबाना चाहते हैं।'

'कुंजरसिह की सहायता ! यदि ऐसी है, तो मन्दिर को अपवित्र करने का संकल्प उसने क्यों किया है ?'

'मैंने दलीपनगर में बड़े विश्वस्त सूत्र से सुना है कि वह कुमुद के विषय में कुछ विशेष दुष्प्रवृत्ति रखता है और उसे कुछ प्रयोजन नही। यदि वह मन्दिर-भंजक होता, तो पालर का मन्दिर कदापि न छोड़ता।'

'यह क्या कम निन्दनीय है ? मैं तो कुमुद की रक्षा के लिये तलवार हाथ में लेकर अलीमर्दान से लड़ सकती हूं। क्या महाराजा इसे छोटा कारण समझते हैं ? क्या वह नही जानते कि कुमुद लोक-पूज्य है और देवी का अवतार है।'

रामदयाल ने अदम्य दृढ़ता के साथ कहा—'लोक-पूज्य तो वह जान पड़ती है। मैंने भी अपने स्वामी की हित-कामना से उस दिन श्रद्धांजलि

चढ़ा दी थी। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि महाराज उसे देवी का अवतार नही मानते। वह तो उसकी रक्षा एक हिन्दू स्त्री के नाते करना चाहते हैं और उनका अभिप्राय कुंजरसिंह को सदा के लिये ठीक कर देना है। वह यहां आया करते हैं, ठहरते हैं, आश्रय पाते हैं और न जाने क्या-क्या नही होता है ? परन्तु आपको सब हाल मालूम नही है।'

गोमती इधर-उधर देखकर बोली—'और क्या हाल है रामदयाल ?'

उसने उत्तर दिया—'वैसे आप कभी मेरा विश्वास न करेंगी, कोई बात कहूगा तो आप रुष्ट हो जायेंगी, कदाचित् मुझे दण्ड देने का निश्चय करें। दो-एक दिन में आप स्वयं देख लेना। क्या आपने कभी कुंजरसिंह को कुमुद के साथ अकेले में वार्तालाप करते देखा है ? मै अधिक इस समय कुछ नही कहना चाहता।'

गोमती बेतवा की बहती हुई धार और उस पार के जङ्गल की नीलिमा की ओर देखने लगी। थोडी देर सोचने के वाद बोली—'मैंने बात करते तो देखा है, परन्तु विशेष लक्ष्य नही किया है। मुझे लक्ष्य करके करना ही क्या ? कोई अवसर कभी अपने आप सामने आ जायगा, तो देखूंगी।'

'आपने क्या इस बात को नही परखा ?'

रामदयाल ने प्रश्न किया—'कुमुद किसी न किसी रूप में हर समय कुंजरसिंह का पक्ष किया करती है। यह वात विना किसी कारण के है ?'

गोमती उत्तर न देते हुए बोली—'आज जब नरपति काकाजू ने महाराज को यहाँ बुला लाने की बात कही, तो उन्होने विरोध किया। कम-से-कम वह यह नही चाहती थी कि महाराज यहा आवे।'

'मेरी एक प्रार्थना है।' रामदयाल ने हाथ जोड़कर बहुत अनुनय के साथ कहा।

गोमती उस अनुभव के ढग से तुरन्त आकृष्ट होकर बोली—'क्या है रामदयाल ? तुम इतने विह्वल क्यो हो रहे हो ?'

रामदयाल ने कांपते हुये स्वर में उत्तर दिया—'सरकार अब यहां न रहे।'

'क्यों ?' गोमती ने पूछा।

रामदयाल ने कहा—'कुञ्जरसिंह यहां आकर अड्डा बनावेगे। वह नवाब को न्योता देकर आग बरसावेगे। महाराजा का आना अवश्य होगा। कुञ्जरसिंह और नवाब से उनकी लड़ाई होगी। आपका यहां क्या होगा ?'

'परन्तु मै दलीपनगर नहीं जा सकती।'

'मैं दलीपनगर जाने के लिये नही कहता और भी तो बहुत से आश्रय-स्थान हैं।'

'कहाँ ?'

'बहुत-से स्थान हैं। जब शांति स्थापित हो जाय, तब जहां इच्छा हो, वहां आपको पहुँचाया जा सकता है।'

'महाराज क्या कहेगे ?'

'कुछ नही। वह या तो स्वयं आयेंगे या अपने सेनापति अथवा मन्त्री को सेवा में भेजेगे और मैं भी तो उन्ही का कृपा-पात्र हूं।'

'कुमुद को छोड़कर चलना पड़ेगा ?'

'आपको उनके विषय में अपना विचार शीघ्र बदलना पड़ेगा। मै इस समय कुछ नही कहूँगा, आप खुद देख लेना। केवल इतना बतलाये देता हूं कि जहाँ कुंजरसिंह जायँगे, वही कुमुद जायँगी।'

'गोमती ने त्योरी बदली। परन्तु बोली कोमल कंठ से—'ऐसी अभद्र और अनहोनी बात मत कहो।'

रामदयाल ने बड़ी शिष्टता के साथ कहा—'नही, मै तो कुछ भी नही कहता। कुछ भी नही कहा। कुछ नही कहूंगा।'

गोमती मुस्कराकर बोली—'नहीं-नही, यह नही चाहती कि तुम जिस बात को ठीक तरह से जानते हो और उसकी सत्यता में सन्देह करने के लिये कोई जगह न हो, उसे छिपा डालो। परन्तु तुम्हें यह

अच्छी तरह जान रखना चाहिए कि किसके विषय में क्या कह रहे हो।'

रामदयाल ने आंखें नीची करके कहा--'मुझे किसी के विषय में कुछ कहा-सुनी नही करनी है। मेरे तन-मन के स्वामी उधर महाराज हैं और इधर आप। मुझे और किसी से वास्ता ही क्या है। आप या महाराज इससे तो मुझे वर्जित नहीं कर सकते और न वंचित रख सकते हैं।'

जैसे कोई हवा में घूमते हुये बोले, उसी तरह गोमती ने कहा---"अभी तो यहां से कही दूसरे ठौर जाने की आवश्यकता नही मालूम होती रायदयाल, परन्तु स्थान का प्रबन्ध अवश्य किए रहो। अवसर आने पर चलेंगे।'

(६५)

नरपतिसिंह यथा समय दलीपनगर पहुंच गया। विराटा के राजा की चिट्ठी जनार्दन शर्मा के हाथ मे रख दी गई। नवाब के पड़ोस में ही दलीपनगर के राजा की सहायता चाहने वाले व्यक्ति के पत्र पर उसे उत्साह मिला। उसने सोचा—'यदि सबदलसिंह साधारण सा ही सरदार है, तो भी अपना कुछ नही बिगड़ता, लाभ ही लाभ है।'

नरपतिसिंह से उसने पूछा—'आपकी बेटी आनन्द-पूर्वक हैं ?'

उत्तर मिला—'दुर्गा की दया से सब आनन्द-ही-आनन्द है। यह जो विघ्न का बादल उठ रहा है, इसे टालकर आप विराटा को बिलकुल निरापद् कर दे।'

जनार्दन ने कहा—'सो तो होगा ही; परन्तु मै कहता हूँ कि आप लोग पालर ही में क्यो नही आ जाते ? पालर ओरछा-राज्य में है और हमारे बाहु के पास है।'

'यह समय बड़ा संकटमय है।' नरपति-बोला—'केवल बीहड़ स्थान कुछ सुरक्षित समझा जा सकता है। जब युद्ध समाप्त हो जायगा, तब निस्सदेह हम लोग पालर लौटने के विषय में सोच सकते हैं।'

'परन्तु बिराटा तो कदाचित् खून-खराबी का केन्द्र-स्थान हो जायगा। वह पालर से अधिक सुरक्षित तो नही है।'

'जो कुछ भी हो, हम लोग अभी उस स्थान को नही छोड़ना चाहते। वहाँ हमारे भाई-बन्द काफी संख्या में हैं। जब वहाँ निर्वाह न दिखलाई पड़ेगा, तब या तो जहाँ आप बतलाते हैं, वही चले जायँगे या किसी और स्थान को ढूँढ़ लेंगे।'

जनार्दन ने पूछा—'कुञ्जरसिंह विराटा कब से नही आये ?'

'कुञ्जरसिंह ?' नरपति ने आश्चर्य प्रकट किया। 'कुञ्जरसिंह वहाँ आकर क्या करेंगे ? अन्य लोग आये-गये हैं, कुञ्जरसिंह को मैने वहाँ कभी नही देखा।'

'और कौन लोग आये-गये हैं ?' जनार्दन ने प्रश्न किया।

उसने उत्तर दिया—'बहुत लोग आये-गये हैं, किस-किसका नाम गिनाऊँ।'

जनार्दन ने कहा—'उदाहरण के लिये कुञ्जरसिंह का सेनापति तथा रामदयाल इत्यादि।'

नरपति चौंका, बोला—'आपको कैसे मालूम ?'

जनार्दन ने अभिमान के साथ कहा—'यह मत पूछो। महाराज देवीसिंह आँखे मूँदकर राज्य नही करते।'

'यह ठीक है।' नरपति बोला—परन्तु देवी के मन्दिर मे किसी के आने की रोक-टोक नही है। यदि किसी ने आपको कुछ और बनाकर बतलाया है तो वह झूठ है।'

जनार्दन ने कहा—'आपकी चिट्ठी महाराज की सेवा में थोड़ी देर में पेश कर दी जायगी। पालर की घटना के कारण ही हम लोग कालपी के नवाब के विरुद्ध हैं और वह बिराटा के मन्दिर को ध्वस करने के लिये फिर कुछ प्रयत्न करने वाला है, परन्तु हमारे लक्ष्य कुञ्जरसिंह अधिक हैं, उन्होने तमाम बखेडा खडा कर रक्खा है; रानिया भी तो उनका साथ देगी ? आजकल रामनगर में हैं न ?'

नरपति को यह बात न मालूम थी। आश्चर्य के साथ बोला—'यह सब हम क्या जानें।'

जनार्दन ने एक क्षण बिचार करके कहा—'हमारी सेना आप लोगों की सहायता के लिये आयेगी, आप अपने राजा को आश्वासन दे दे। हक़ महाराजा की मुहर-लगी चिट्ठी आपको देंगे। तब तक हमारी सेना आपके यहाँ पहुँचेगी, यह कुछ समय पश्चात् मालूम हो जायगा।'

नरपति ज़रा आतुरता के साथ बोला—'मैं महाराज से स्वय मिलकर कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।'

'किस लिये ?' जनार्दन ने आंखे गड़ाकर पूछा।

नरपति ने उत्तर दिया—'वह उनके निज के सुख से सम्बन्ध रखने वाली बात है।'

[६६]

जनार्दन की इच्छा न थी नरपति उसे अपनी पूरी बात सुनाये विना राजा से मिल ले। परन्तु नरपति के हठ के सामने जनार्दन की आनाकानी न चली। राजा से उसका साक्षात्कार हुआ। राजा को आश्चर्य था कि मेरे निज के सुख से सम्बन्ध रखने वाली ऐसी कौन-सी कथा कहेगा।

अकेले में बातचीत हुई।

नरपति ने कहा—'उस दिन पालर में प्रलय हो गया होता, यदि महाराज ने रक्षा न की होती।'

'किस दिन ?' राजा ने विशेष रुचि प्रकट न करते हुये पूछा।

नरपति बोला—'उस दिन, जब पालर की लहरों पर देवी की मौज लहरा रही थी और मुसलमान लोग उन जहरो को छेडना चाहते थे।'

राजा ज़रा मुस्कराकर बोले—'मै पालर के निकट कई लड़ाइयाँ लड़ चुका हूँ, इसलिये स्मरण नही आता कि आप किस विशेष युद्ध की बात कहते हैं।'

नरपति ने कहा—'पालर में देवी ने अवतार लिया है।'

'यह मैंने सुना है।'

'वह मेरे ही घर में हुआ है।'

'पं० जनार्दन शर्मा ने बतलाया था। मैं पहले से भी जानता हूं।'

'जय हो महाराज की ! उसी की रक्षा में महाराज ने उस दिन अपना उत्सर्ग तक कर दिया था।'

राजा ने जरा अरुचि के साथ कहा—'आप जो बात कहना चाहते हों, स्पष्ट कहिये।'

नरपति ने हाथ बांधकर कहा—'उस दिन, जिस दिन पालर में बारात आई थी; उस दिन, जिस दिन स्वर्गवासी महाराज को देवी की रक्षा के लिये अपनी रोग-शय्या छोड़नी पड़ी थी; उस दिन, जब बडेगांव से आकर श्रीमान् ने हम सब लोगो को सनाथ किया था।'

राजा मुस्कराये। बोले—'मुझे याद है वह दिन। मैं आपकी बस्ती में घायल होकर मार्ग में अचेत गिर पड़ा था। बहुत समय पश्चात् होश आया था।'

राजा यह कहकर नरपति के मन की बात जानने के लिये उसकी आखो में अपनी दृष्टि गड़ाने लगे।

नरपति उत्साहित होकर बोला—'यदि मराराज उस दिन घायल न हुये होते, तो उसी दिन एक क्षत्रिय के द्वार के बन्दनवारो पर केशर छिटक गई होती और वह क्षत्रिय-कन्या आज दलीपनगर की महारानी हुई होती।'

राजा को याद आ गई। परन्तु आश्चर्य प्रकट कर के बोले—'वह तो एक ऐसी छोटी-सी घटना थी, कुछ ऐसी साधारण-सी बात रही होगी कि अच्छी तरह याद नही आती। बहुत दिन हो गये हैं। तुम्हारा प्रयोजन इन सब वातो के कहने का क्या है, वह स्पष्ट प्रकार से कह क्यो नही डालते ?'

नरपति ने गोमती के पिता का नाम लेते हुये कहा—'उनके घर महाराज की बरात आई थी। उस कन्या के हाथ पीले होने में कोई विलम्ब नही दिखलाई पडता था। ठीक उस घर के सामने महाराज अचेत हो गये थे। हम लोग औषधोपचार की चिन्ता मे थे और चाहते थे कि स्वस्थ हो जाने पर पाणि-ग्रहण हो जाय। परन्तु सवारी स्वर्गवासी महाराज के साथ दलीपनगर चली गई। उसके उपरान्त घटनाओ के संयोग से फिर इस चर्चा का समय ही न आया। वह क्षत्रिय-कन्या इस समय बिराटा में दुर्गा के मन्दिर में हम लोगो के साथ है। महाराज शीघ्र चलकर उसे महलो मे लिवा लायें और विवाह की रीति भी पूरी करलें।'

'आजकल।' राजा ने ज़रा उत्तेजित होकर कहा—'मैं युद्ध और प्रजा की रक्षा के साधनो की चिन्ता में इतना अधिक उलझा रहता हूं कि ऐसी मामूली बातो का स्मरण रखना या स्मरण करना बड़ा कठिन है।'

नरपति आग्रहपूर्वक बोला—'मै अन्नदाता को स्मरण कराने आया हूँ।'

राजा ने धीमे स्वर में और जरा लज्जा के साथ पूछा—'आपको किसने भेजा है ?'

'विराटा के राजा ने।' नरपति ने नम्रता के भीतर छिपे हुये अभिमान के साथ कहा।

राजा ने पूछा—'यह बात जो तुम अभी-अभी कह रहे थे, क्या इसे भी विराटा के राजा साहब ने कहलवाया है ?'

नरपति बोला—'नही। यह तो मै स्वयं कह रहा हूं महाराज, वाग्दत्ता क्षत्रिय-कन्या कितने दिनो इस तरह जङ्गलो-पहाड़ों में पड़ी रहेगी ?'

'बाग्दान किसने किया था ?' राजा ने पूछा।

नरपति बिना सकोच के बोला—'यह तो महाराज जाने, परन्तु इतना मैं जानता हूँ कि वह महाराज की रानी हैं। केवल भांवर की कसर है। यदि उस दिन युद्ध न हुआ होता, तो विवाह को कोई रोक नही सकता था और आज वह महलो में होती। क्या महाराज को कुछ भी स्मरण नही है ? शायद उस दिन के आघातों के कारण स्मृति पटल से वह बात हट गई है।'

राजा हिल-सा उठा, जैसा किसी ने कांटा चुभा दिया हो। सोचने लगा, एक क्षण बाद बोला—'मुझे इन बातो के सोचने का अवकाश ही नही रहा है। सिपाही आदमी हू। सिवा रण और तलवार के और किसी बात का बहुत दिनों कोई ध्यान नही रह सकता है और जिस सम्बन्ध के विषय में तुम कह रहे हो, वह राजाओ का राजाओं के साथ होता है और लोगों के सम्बन्ध करने की भी मनाही नहीं। यदि कोई पवित्र चरित्र कन्या—जो शुद्ध कुल उत्पन्न हुई हो, माता-पिता दरिद्र क्यों न रहे हो—हमारे महलो में आना चाहे, तो रुकावट न डाली जायगी।

परन्तु इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि ऐसी-वैसी औरतें हमारे यहां नहीं घुसने दी जाती।'

नरपति कुछ कहना चाहता था, परन्तु सन्न-सा रह गया, जैसे किसी ने गला पकड लिया हो।

राजा ने कहा—'मुझे याद पडता है कि एक ठाकुर उस नाम के पालर मे रहते थे। उनकी कन्या का सम्बन्ध मेरे साथ स्थिर हुआ था, परन्तु इसका क्या प्रमाण है कि यह वही कन्या है?'

नरपति के सिर से एक बोझ-सा हट गया। प्रमाण प्रस्तुत करने के उत्साह और आग्रह से बोला—'मैं सौगंध के साथ कह सकता हूँ, मेरे सामने वह उत्पन्न हुई थी। अठारह वर्ष से उसे खाते-खेलते देखा है। ऐसी रूपवती कन्या बहुत कम देखी-सुनी गई है। महाराज ने भी तो विवाह-सम्बन्ध कुछ देख-समझकर किया होगा।'

राजा मानो लाज में डूब गया। परन्तु एक क्षण में संभलकर दृढता के साथ बोला—'मै भोग-विलास के पक्ष में नही हूँ। यह समय दलीप-नगर के लिये बडा कठिन जान पडता है। इस समय निरन्तर युद्ध करने की इच्छा मन में है, उसी मे हम सबका त्राण है। जब अवकाश का समय आवेगा, तब इन बातो की ओर ध्यान दूंगा।'

फिर बेफिक्री की सच्ची मुस्कराहट के साथ कहा—'अर्थात् यदि लडते-लडते उसके पहले ही किसी समय प्राण समाप्त न हो गया, तो।'

इस मुस्कराहट के भीतर किसी भयंकर दृढता की झलक थी। नरपति उससे सहम गया।

धीरे से बोला—'मेरी यह प्रार्थना नही है कि महाराज इसी समय चलकर लिवा लावें। मेरी विनती केवल यह है कि ज्योही अवकाश मिले, महलो की शोभा बढाई जाय।'

फिर किसी भाव से प्रेरित होकर कहने लगा—'इस समय विराटा पर संकट है। न-मालूम कौन कहाँ भटकता फिरे, इसलिये अन्नदाता, मेरे इस कहने की ढिठाई को क्षमा करें कि स्वयं न जा सकें, तो अपने किसी

प्रधान कर्मचारी को कुछ सेना के साथ भेज दें। डोले का प्रबन्ध विराटा में कर दिया जायगा। यहां शीघ्र बुलवा लिया जाय।'

'क्या उस लड़की ने बहुत आग्रह के साथ यह बात कहलवाई है?' राजा ने कुतर्क के स्वर में पूछा।

नरपति का सारा शरीर उत्तेजित हो गया। रुंधे हुए गले से बोला—'न महाराज। उसने तो निषेध किया था। मैंने ही अपनी ओर से प्रार्थना की है। वह बड़ी अभिमानिनी क्षत्रिय-बालिका है।'

राजा ने सांत्वना-सी देते हुए कहा—'नहीं-नहीं। मैं कोई रोक-टोक नही करता हूं। यदि उसकी इच्छा हो, तो वह चली आवे, तुम भेज दो। परन्तु यह समय भांवर के लिये उपयुक्त नही है।'

नरपति ने सिर नीचा कर लिया।

राजा ने कहा—'अथवा अवकाश मिलने पर, अर्थात् जब युद्धों से निबट जाऊँगा और कही कोई विघ्न बाधा न रहेगी, तब मैं ही आकर देख लूंगा और जो कुछ उचित होगा, अवश्य करूंगा।"

इसके बाद विराटा से सम्बन्ध रखने वाली राजनीतिक चर्चा पर बातचीत होने लगी। राजा ने अंत में नवाब के खिलाफ बिराटा को सहायता देने और सेना लेकर आने का वचन देकर नरपति को बिदा किया।

[६७]

नरपति दलीपनगर से लौट आया। बिराटा के राजा को उसने यह संतोष-जनक समाचार सुनाया कि बहुत शीघ्र राजा देवीसिंह की सेना सहायता के लिये आवेगी—अर्थात् आवश्यकता पडते ही।

परन्तु जिस समय नरपति अपने घर--बिराटा के द्वीपवाले मदिर में--आया, चेहरे पर उदासी थी।

रामदयाल उस समय वहां न था। कुमुद और गोमती थीं।

मन्दिर की दालान में बैठकर नरपति ने कुमुद से कहा—'मन्दिर की रक्षा तो हो जायगी।''

कुमुद ने लापरवाही के साथ कहा—'इसमें मुझे कभी सन्देह नही रहा है। दुर्गा रक्षा करेगी।''

'राजा देवीसिंह ने भी वचन दिया है।'' प्रतिवादन करते हुए नरपति बोला।

गोमती का मुख खिल उठा। गौरव के प्रकाश से आँखें चंचल हो उठीं।

गोमती ने कुमुद से धीरे से कहा—'तब यहाँ से कहीं और जाने की अटक न पड़ेगी।'

कुमुद निश्चिन्त से भाव से बोली—अटक क्यों पडने लगी? और यदि पड़ी भी, तो यह नदी और अग्नवर्ती वन सब दुर्गा के हैं।'

गोमती को बुरा लगा। नरपति से सरलता के साथ पूछा—'दलीप-नगर में तो बड़ी भारी सेना होगी काकाजू?'

'हाँ, है।' नरपति ने उत्तर दिया—'बडा नगर, बडे लोग और बड़ी-बड़ी बातें।'

गोमती आँख के एक कोने से देखने लगी। कुमुद ने कहा—'राजा ने गोमती के विषय में पूछा था?'

गोमती सिकुडकर कुमुद के पीछे बैठ गई। नरपति ने उत्तर दिया—'राजा ने नहीं पूछा था। मैंने स्वय चर्चा उठाई थी।'

कुमुद ने कहा—'आपको ज़्यादा कहना पड़ा था या उन्हे सब बातों का तुरन्त स्मरण हो आया था ?'

नरपति ने कुछ उत्तर नही दिया। कुछ सोचने लगा। गोमती का हृदय धड़कने लगा। कुमुद बोली—'राज्य के कार्यों में उलझे रहने के कारण कदाचित् कुछ देर में स्मरण हुआ होगा। राजा ने क्या कहलवा भेजा है ?'

नरपति राजदूत के कर्तव्यों और कैड़ों से अपरिचित था। उत्तर दिया—'मुझे तो क्रोध आ गया था। पराई जगह होने के कारण सकोच-वश कुछ नही कह सका, परन्तु कलेजा राजा की बातों से धड़कने लगा था। वह सब जाने दो। इस समय तो हम लोगो को इतने पर ही सन्तोष कर लेना चाहिये कि राजा इस स्थान की रक्षा करने के लिये एक-न-एक दिन—और शीघ्र ही—अवश्य आवेंगे।'

परन्तु कुमुद ने पूरी बात को उखाड़ने का निश्चय कर लिया था, इसलिये बोली—'क्या राजा होते ही वह यह भूल गये कि उस दिन पालर में उनकी बरात गई थी, बंदनवार सजाये गये थे, स्त्रियों ने कलश रक्खे थे, मंडप बनाया गया था और गोमती के शरीर पर तेल चढ़ाया गया था ? आपने क्या उन्हे स्मरण नही दिलाया ?'

'मैंने इन सब बातो की याद दिलाई थी।' नरपति ने जवाब दिया—'परन्तु उन्होंने कोई ऐसी बात नही की, जिससे मन में उमंग उत्पन्न होती। वह तो सब कुछ भूल से गये हैं।'

गोमती पसीने में तर हो गई। सिर मे चक्कर-सा आने लगा।

'उन्होने क्या कहा था ?' कुमुद ने पूछा।

'बोले।' नरपति ने उत्तर दिया—'राज-काज की उलझनो में स्मरण नही रह सकता। यदि वह आना चाहे और वही हो जिसके साथ पालर में सम्बन्ध होने वाला था, तो कोई रोक-टोक न की जायगी। मैं स्वयं न आ सकूँगा। सेना लेकर जब बिराटा की रक्षा के लिये आऊँगा, तब जैसा कुछ उचित समझा जायगा करूँगा।'

नरपति के मन पर राजा की तत्सम्बन्धी वार्ता सुनकर जो भाव अंकित हुआ, उसे उसने अपने शब्दो में राजा की भाषा का रूप देकर प्रकट किया।

कुमुद बोली—'वह इतनी जल्दी भूल गये! राजपद और राजमद क्या मनुष्य को सब-कुछ भूल जाने के लिये विवश कर देते हैं! जैसे क्षत्रिय वह हैं, उनसे कम कुलीन क्या यह दीन क्षत्रिय-बालिका है?'

'वह तो कहते थे।' नरपति ने तुरन्त उत्तर दिया—'कि राजाओं का सम्बन्ध राजाओ में होता है।'

गोमती चीख उठी। चीख मारकर कुमुद से लिपट गई। नरपति ने देखा, पसीने में डूब-सी गई और शायद अचेत हो गई है। पंखा ढूँढने के लिये अपनी कोठरी में चला गया।

कुमुद ने गोमती को धीरे से अपनी गोद की ओर खीचा। वह अचेत न थी, परन्तु उसके मन और शरीर को भारी कष्ट हो रहा था।

कुमुद का जी पिघल उठा। बोली—'गोमती, इतनी-सी बात से ऐसी घबरा गई! इतनी अधीर मत होओ। न मालूम महाराज ने क्या कहा है और काकाजू ने क्या समझा है। वह सेना लेकर थोड़े दिनो में यहाँ आ ही रहे हैं। यहाँ सब बात यथावत् प्रकट हो जायगी। मुझे आशा है, राजा तुम्हे अपनायेंगे।'

गोमती कुछ कहना चाहती थी, परन्तु उसका गला बिलकुल सूख गया था, इसलिये एक शब्द भी मुह से न निकला।

इतने में नरपति पंखा लेकर आ गया। कुमुद ने कहा—'आप भोजन करें, मैं तब तक हवा करूंगी।'

'न, यह न होगा।' नरपति बोला—'देवी इस लड़की को पंखा झलेगी! मैं झले देता हूं।'

कुमुद ने कहा—'अकेले में उससे कुछ कहना भी है।'

पंखा वहीं रखकर नरपति कोठरी में चला गया।

पंखा झलते हुए कुमुद बोली—'शांति और धैर्य के साथ उनके ससैन्य आने की बाट जोहनी ही पड़ेगी। वह मन्दिर में अवश्य आवेगे। मै यहाँ पर रहूं या कही चली जाऊँ, तुम बनी रहना। वह तुम्हें यहां अवश्य मिलेगे। निराश मत होओ।'

पखे की हवा से शरीर की भड़क शान्त हुई। कुमुद को पंखा झलते देखकर गोमती को बोलने का विशेष प्रयत्न करना पड़ा।

सिसकते हुए धीरे से बोली—'मुझे यहां छोड़कर कही न जा सकोगी। मेरे मन में अब और कोई विशेष इच्छा नही है। जब तक प्राण न जायँ, तब तक चरणो मे ही रखना।'

कुमुद की पूर्व रुलाई तो पहले ही चली गई थी, अब उसके मन में दया उमड़ आई। कहा—'जब तक राजा तुम्हे स्वयं लेने नही आते, तब तक तुम्हे वहां अपने आप जाने के लिये कोई न कहेगा। परन्तु तुम्हें यह न सोचना चाहिए कि उन्होने किसी विशेष निठुराई के वश होकर इस तरह की बाते कही हैं।'

गोमती चुप रही।

कुमुद एक क्षण सोचकर बोली—'यदि हम लोगों को यहां से किसी दूसरे स्थान पर जाना पड़ा, तो अवश्य हमारे साथ रहना। हमें आशा है, राजा ससैन्य आएँगे, परन्तु यह आशा बिलकुल नही है कि उनके आने तक हम लोग यहा ठहरे रहेगे। उनके आने की खबर मिलने के पहले नवाब अपनी सेना इस स्थान पर भेजने की चेष्टा करेगा। हम लोगो को शायद बहुत शीघ्र ही यह स्थान छोड़ना पड़ेगा।'

गोमती ने साथ ही रहने का दृढ़ निश्चय प्रकट किया।

[६८]

दलीपनगर का राज्य उन दिनो भँवर में फँसा हुआ-सा जान पड़ता था। राजा देवीसिंह का अधिकार अवश्य हो गया था, परन्तु उसकी सत्ता सबो ने नही मानी थी। कोई-कोई खुल्लम-खुल्ला विरोध कर देते थे और बहुतो के भीतर-भीतर प्रतिकूलता की लहरें उठ रही थी। जनार्दन शर्मा, हकीमजी और लोचनसिंह-सदृश लोग नये राजा के दृढ पक्षपाती थे, परन्तु अनेक प्रमुख लोग विपरीत भाव का प्रदर्शन न करते हुए भी कोई ऐसा काम न कर रहे थे, जिससे स्पष्ट तौर पर यह विश्वास होता कि वे देवीसिंह के सहायक हैं। माल-विभाग और सेना को देवीसिंह बहुत ध्यान के साथ सुधार रहा था, परन्तु बरसो की बिगड़ी हुई संस्थाओ का ठिकाने लगाना कुछ विलम्ब का काम होता है।

उधर कुञ्जरसिंह बिगड़े-दिल सरदारो को अपनी ओर जुटाने में दत्तचित्त था। रानियो की ओर से भी परिश्रम जारी था। जो लोग देवीसिंह के विरुद्ध थे, वे यह जानते थे कि रानियो को कालपी के फौज-दार की सहायता मिल रही है। उन्हे यह भी मालूम था कि यह सहायता कुञ्जरसिंह के लिये अप्राप्य है, परन्तु वे लोग यह विश्वास करते थे कि नवाब कुञ्जरसिंह के साथ पुरुष होने के कारण मैत्री की सन्धि ज्यादा जल्दी करेगा। इसलिये उन्होने सहायता का वचन तो रानियो को दे दिया, परन्तु मन के भीतर कुंजरसिंह के लिये फाटक बिलकुल बन्द नही किये। यह कहा कि नवाब को आपके साथ होते देखकर हम लोग आपके साथ हो जायँगे। नही, नही की। वचन भी नही दिया।

कुन्जरसिंह पर इसका बहुत कष्ट-दायक प्रभाव पड़ा। वह कछ दिनो आशा और निराशा के बीच में भटकता हुआ अन्त में बहुत थोडी-सी आशा मन में लिये हुये बिराटा लौट आया। उस समय नरपति को दलीपनगर से लौटे हुये दो-एक दिन हो चुके थे।

संध्या के पूर्व ही कुँजरसिंह मंदिर में आ गया। उसे देखते ही गोमती अपनी कोठरी मे चली गई। कुमुद ने देखा, कुञ्जर का चेहरा बहुत उतरा हुआ है।

धीरे-धीरे पास जाकर जरा गम्भीर भाव से कुमुद ने कहा—'आप थके मांदे मालूम होते हैं। क्या दूर से आ रहे है?'

'हाँ, दूर से आ रहा हूं।' कुञ्जरसिंह ने थके हुये स्वर में जवाब दिया—आशा नही कि अब की बार बिराटा छोड़ने पर फिर कभी लौटकर आऊँगा।'

दुःख का कोई प्रदर्शन न करके कुमुद ने सहज कोमल स्वर में कहा—'जब तक आप यहां हैं, इस दालान मे डेरा डालें।'

दालान में अपना सामान रखकर कुञ्जरसिंह बोला—'सुनता हूं, कुछ दिनों में बिराटा का यह गढ और मन्दिर दलीपनगर के राजा देवीसिंह के शिविर बन जायँगे।'

'उस दिन के लिये हम लोग कदाचित् यहां नही बने रहेंगे।' कुमुद ने धीरे से कहा।

कुञ्जर को नरपतिसिंह का ख्याल आया। पूछा—'काकाजू कहां हैं?'

'किसी काम से उस पार गांव गये हैं। आते ही होंगे। आपको नही मिले? आप तो गांव में ही होकर आये हैं?' कुमुद ने उत्तर दिया।

कुञ्जरसिंह ने जरा उत्तेजित स्वर में कहा—'अब यह गांव देवीसिंह को अपने यहां बुला रहा है। मै और देवीसिंह एक स्थान पर नही रह सकते। इसलिये अलग होकर आया हूं। यदि गांव में ही किसी से बतबढ़ाव हो पडता, तो यहां तक दर्शनो के निमित्त न आ पाता।'

कुमुद ने पूछा—'राजा देवीसिंह कालपी के नवाब का दमन करने के लिये इस ओर आवेगे, इसमें आपको क्या आक्षेप है।'

कुन्जरसिंह ने उत्साह के साथ उत्तर दिया—'यह मेरे बड़े सौभाग्य की बात है कि कम-से-कम आपके हृदय में तो मेरे लिये थोड़ी सी सहानुभूति है। वैसे इस अपार संसार में मेरे कितने हितू हैं?'

कुमुद ने द्वार की ओर देखकर कहा—'अब तक काकाजू नही आये। न-जाने कहां देर लगा दी है।'

कुञ्जर ने इस मंतव्य के विषय में कुछ न कहकर, अपनी ही चर्चा जारी रक्खी—'कालपी का नवाब मेरा शत्रु है, मैं उसके विरुद्ध सदा खड्ग उठाये रहने को तैयार हूँ। परन्तु मै यह कैसे भूल सकता हूँ कि देवीसिंह अनधिकार चेष्टा से, अन्याय से, छल-कपट से मेरी गद्दी पर जा बैठा है? देवीसिंह का प्रतिकार मेरे लिये उतना ही आवश्यक है, जितना कालपी के नवाब का—'

बात काटकर कुमुद बोली—'मै ज़रा बाहर से देखती हू कि पिताजी आ रहे हैं या नही और उन्हे कितनी देर है। अभी सूर्यास्त नही हुआ है। दूर तक का आदमी दिखलाई पड़ सकता है।'

कुमुद बारीकी से गोमती की कोठरी की ओर निगाह दौडाती हुई दरवाज़े के बाहर हो गई।

कुञ्जरसिंह भी पीछे-पीछे गया; परन्तु उसने यह न देख पाया कि गोमती भी अपनी कोठरी छोडकर चुपचाप पीछे-पीछे हो ली है।

बाहर जाकर कुमुद ने देखा कि नरपति के लौट आने का कोई लक्षण नही। बाहर ही ठिठक गई। पूर्व की ओर के वन की रेखा को परखने लगी। इतने में कुञ्जरसिंह वहां आ गया।

हाथ जोड़कर बोला—'मैं देवीसिंह का विरोधी हू, इसमें यदि आपको कोई बात खटकती हो, तो आज से सम्पूर्ण विरुद्ध भाव को हृदय के भीतर से धोकर बहा सकता हू परन्तु यदि मै आपको विश्वास करा दूं कि कपट और अन्याय से देवीसिंह मेरे राज्य का अधिकारी हुआ है, तब भी आप क्या उसका साथ देने की आज्ञा देंगी? यदि ऐसी अवस्था में भी अपना हक छोड़ देने का आदेश होगा, तो वह आज्ञा भी शिरोधार्य होगी।'

कुमुद ने आग्रह के साथ कहा—'हाथ मत जोड़िये? यह अच्छा नही मालूम होता। आप राजकुमार हैं।'

कुञ्जर अधिकतर आग्रह के साथ बोला—'राजकुमार नही हूं—कम से-कम आपके समक्ष मै कुछ भी नही हूँ, केवल सेवक हूं, भक्त हूं।'

कुमुद ने कहा—'जब तक काकाजू नही आते, चलिये, उस चट्टान पर बैठकर आपसे लड़ाइयो की कुछ चर्चा सुनूं। हम लोगो को यहा संसार का और कोई वृत्तात सुनने को नही मिलता। काकाजू हाल में दलीपनगर गये थे।'

परन्तु अन्तिम बात के मुँह से निकलते ही कुमुद ने अपना होठ काट लिया, वह इस बात को कहना नही चाहती थी। न-मालूम कैसे निकल पड़ी ?

जिस चट्टान पर बैठने की कुमुद ने इच्छा प्रकट की थी, वह पास ही थी। कुंजर उसके नीचे की ओरवाली ढाल पर जा बैठा और कुमुद उसकी टेक पर। दोनो की पीठ मन्दिर के द्वार की ओर थी।

कुंजर ने पूछा—'काकाजू दलीपनगर किस लिये गये थे ?'

'आपको तो मालूम ही होगा।' कुमुद ने उत्तर दिया—'मेरी इच्छा न थी कि वह जाते, परन्तु यहां के राजा ने उन्हे हठ करके भेजा। इस समय बिराट को सहायता की बड़ी आवश्यकता है।'

इसमें हर्ज ही क्या हुआ ?' कुजर ने कहा—'विराटा इस समय संकट में है। मुझ-सरीखे लोग यदि उसकी सहायता नही कर सकते, तो जो उसकी सहायता कर सकते हैं, उनके पास तो निमंत्रण जायगा ही; परन्तु यदि आपकी कृपा हुई, तो देवीसिंह के बिना मै अकेला ही बहुत कुछ करके दिखलाऊँगा।'

कुमुद ने कोई उत्तर नही दिया।

कुजर बोला—'आगामी युद्ध में, ऐसा जान पड़ता है, बिराटा का राजा देवीसिंह का साथ देगा। ऐसी अवस्था में मेरा यहाँ आना अब असम्भव होगा। क्या विराटा का राजा किसी प्रकार मेरी ओर हो सकता है ?'

कुमुद के उत्तर देने के पहले तुरन्त कुजर ने कहा—'यह असम्भव है। सबदलसिंह जानते हैं कि मैं कालपी की सेना का मुकाबला करने में उनकी अच्छी सहायता नही कर सकता हूं। वह क्यों मेरा साथ देने लगे ? और फिर उन्होंने स्वय देवीसिंह को बुलाया है।'

निःश्वास परित्याग कर कुजरसिंह बोला—'अब देवीसिंह के राज्य की अखण्डता में कोई सन्देह नही, अर्थात् यदि वह कालपी के नवाब को पराजित कर सका।'

फिर तुरन्त आतुरता के साथ उसने कुमुद के पैरों की ओर हाथ बढ़ाते हुये कहा—'यदि मैं इन चरणो की रक्षा में अपना सब कुछ विसर्जन कर सकूं, इसी सामने वाली धार में, इस भयकर दह में यदि किसी दिन मुझे वह प्रयत्न करते हुये विलीन हो जाना पडे, तो यही समझूगा कि दलीपनगर का क्या, सारे संसार का राज्य मिल गया। क्या मुझे इतने की—केवल इतने-भर की—आज्ञा मिल जायगी ? दलीप-नगर का कोई भी राज्य करे, संसार किसी के भी अधिकार में चला जाय, परन्तु यदि मुझे इन चरणों में रहने दिया जाय, तो मुझे सब कुछ मिल गया।'

कुमुद चुप थी। बेतवा के पूर्वीय किनारे को जल-राशि छूती हुई चली जा रही थी। अस्ताचलगामी सूर्य की कोमल सुवर्ण-रश्मियां बेतवा की धार पर उछल-उछलकर हँस-सी रही थी। उस पार के वन-वृक्षो की चोटियो के सिरो ने दूरवर्ती पर्वत की उपत्यका तक श्यामलता की एक समरस्थली-सी बना दी थी। उस सुन्दर सुनसान में कुजरसिंह के शब्द बज-से गये।

कुमुद ने कहा—'हम लोगों का कुछ ठीक नही, कब तक यहाँ रहे, कब यहां से चले जायँ और कहां जाकर रुकें।'

'इसमें मेरे लिये कोई बाधा नही।' कुजरसिंह उमंग के साथ बोला—'आप यहां न रहे, यह मेरी पहली प्रार्थना है। दूसरी प्रार्थना यह है कि आप जहां भी जायँ, मुझे साथ रहने की अनुमति दें। बुरा समय आ रहा है। यदि साथ मे एक सैनिक रहेगा, तो हानि न होगी।'

कुमुद ने बहती हुई धार की ओर देखते हुये कहा —"दुर्गा के सेवकों को कभी कष्ट नहीं हो सकता। जब कभी मनुष्य को दुःख होता है, अपने ही भ्रम के कारण होता है। यदि मन से भ्रम न रहे, तो उसे किसी का भय न रहे।"

'धर्म का यह ऊँचा तत्त्व किसे मान्य न होगा?' कुंजरसिंह ने कहा—'फिर भी एक दिन, परन्तु दृढ़, अत्यन्त दृढ़ भक्त की यह विनती तो स्वीकार करनी ही पड़ेग।'

कुमुद चुप रही।

कुंजरसिंह किसी भाव के प्रवाह में बहता हुआ-सा बोला—'यदि आपने निषेध किया, तो मैं आज्ञा का उल्लंघन करूँगा; यदि आपने अनुमति न दी, तो मैं अपने हठ पर अटल रहूंगा—मैं छाया की तरह फिरूंगा। पक्षियों की तरह मड़राऊँगा। चट्टानों की तली में, पेड़ों के नीचे, खोहों में, पानी पर, किसी-न-किसी प्रकार बना रहूँगा। आपको भ्रकुटि-भंग का अवसर न दूंगा, परन्तु निकट बना रहूंगा। साथ रक्खूंगा केवल अपना खड्ग। समय आने पर दुर्गा के चरणो अपना मस्तक अर्पण कर दूंगा।'

'राजकुकार!' कांपते हुये गले से कुमुद ने कहा।

'आज्ञा?' पुलकित होकर कुञ्जर बोला।

कुमुद ने उसी स्वर में कहा—'आपको इतना बड़ा त्याग नहीं करना चाहिये।'

'कितना बड़ा? कौन-सा?' कुंजर धारा-प्रवाह के साथ कहता चला गया—'नवाब से लड़ना धर्म है। धर्म की रक्षा करना कर्तव्य है। कर्तव्य पालन करना धर्म है। आपकी आज्ञा का पालन करना ही धर्म, कर्तव्य और सर्वस्व है। यदि इन चरणो की कृपा बनी रहे, तो मैं संसार-भर की एकत्र सामर्थ्य को तुच्छ तृण के समान समझूं, मुझे कुछ न मिले; संसार भर मुझे तिरस्कृत, वहिस्कृत कर दे, परन्तु यदि चरणों की कृपा बनी रहे, तो, मैं समझूँ कि देवीसिंह मेरा चाकर है, नवाब मेरा गुलाम है और संसार भर मेरी प्रजा है।'

कुमुद ने मुस्कराकर, परन्तु दृढ़ता के साथ इस प्रवाह का निवारण करते हुये कहा—'धीरे से, धीरे से। इतने जोश की बात कहने की आवश्यकता नही।'

कुँजर धीरे से परन्तु उसी जोश के साथ बोला—'तब अनुमति दीजिये, आज वरदान देना होगा।'

कुमुद ने लम्बी साँस ली।

कुँजर ने कहा—'आपका शायद यह विचार है कि मैं नीच हूँ और नीच को वरदान नही दिया जा सकता। परन्तु मैं कहता हू कि बसन्त छोटे और बड़े सब प्रकार के वृक्षो को हरियाली देता है, धराशायी घास के तिनको मे भी नन्हे-नन्हे सुन्दर फूल लगा देता है और पवन किसी स्थान को भी अपनी कृपा से वंचित नही रखता।'

कुमुद बोली—'आप यदि देवीसिंह से लडेगे, तो कालपी के नवाब का पक्ष सबल हो जायगा।'

'मैं देवीसिंह से न लडूँगा।'

'क्यो?'

'आपकी इच्छा नही जान पड़ती। मैं देवीसिंह से सधि कर लूँगा। अपना सारा हक त्याग दूँगा।'

'मैं यह नही चाहती, और न यह कहती ही हूं।'

इसके बाद कुछ पल तक सन्नाटा रहा। कुँजर ने कहा—'वास्तव में अब मेरे जी में कोई बड़ी महत्वाकांक्षा शेष नही है। यदि कोई परम अभिलाषा है, तो चरणो की सेवा की है।'

यह कहकर कुँजरसिंह ने कुमुद के पैरो को छू लिया। कुमुद ने पीछे पैर हटाने चाहे, परन्तु न हटा सकी। बोली—'आपने क्या किया?'

उसने कहा—'आप मेरी पूज्य हैं। मेरी सम्पूर्ण श्रद्धा की केन्द्र हैं। मैंने कोई अनोखा कार्य नही किया।'

कुमुद काँपती हुई आवाज़ में बोली—'आप ऐसा फिर कभी न करना। मैं कोई अवतार नही हूं। साधारण स्त्री हूँ। हा, दुर्गा माता की सच्चे जी से पूजा किया करती हूँ। आप मुझे अवतार न समझें।'

'और आप मुझे।' कुंजर ने कहा—'नीच व्यक्ति न समझें।'

तुरन्त कुमुद बोली—'आप क्यों यह वार-बार कहते हैं? मैं सब बातें सुन-समझकर ही आपको राजकुमार कह कर सम्बोधित करती हूं और करती रहूंगी। अर्थात् जब कभी आप हम लोगों को मिल पाया करेंगे।'

बड़ी दृढता के साथ कुँजर ने कहा—'मैंने आज से देवीसिंह का विरोध छोड़ा। चरणों में ही सदा रहने का निश्चय किया—'

'न-न।' कुमुद जल्दी से बोली—'इस तरह का प्रण मत करिये। आप देवीसिंह का सामना अवश्य करें। अपने हक़ के लिये लड़ें, परन्तु कालपी के नवाब से जब वह निबट लें।'

कुँजर ने कहा—'इसके सोचने के लिये अभी बहुत समय है, परन्तु यह बात तय है कि चरणों में से हटाया नहीं जाऊँगा।'

कुमुद बोली—'यह स्थान कैसा सुन्दर है। टापू के दोनों ओर से बेतवा की धार चली जा रही है। लम्बी, चौड़ी, ढालू और सम-स्थल चट्टानों और पठारियों से जब पानी टकराता है, तब किसी बाजे के बजने सा कोलाहल होता है। चतुर्दिक वन-बीहड़ में ऐसी निष्पदता छाई हुई है कि विश्वास होता है कि पर्वत, वन और नदी-वष्टित इस टापू को दुर्गा ने विशेष रूप से चाहा है। मेरी इच्छा नहीं है कि यह स्थान छोड़ूं—परन्तु कदाचित् विवश होकर छोड़ना पड़े।'

'यहां बने रहने में कोई हानि नहीं।' कुंजर ने कहा—'देवीसिंह इस टापू में अपनी छावनी डालकर अपने को कैद नहीं करावेगा। उसकी छावनी मुसावली की तरफ कहीं पड़ेगी। यदि वह आसानी से यहां तक आ पाया, तो मैं यहां किसी चट्टान की छाया में खड्ग सँभाले हुये पड़ा रहूंगा।'

कुमुद बोली—'अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। कदाचित् अटक पड़ी, तो सामने वाले वन में चली जाऊँगी।'

कुँजरसिंह हाथ जोड कर कुछ कहना चाहता था कि कुमुद ने निवारण करके कहा—'फिर वही अत्याचार ! आप यदि हम लोगो के निकट रहना चाहे, तो यह सब कभी मत करना ।'

कुँजरसिंह की नसो में बिजली सी दौड़ गई। उसने प्रमत्त नेत्रो से कुमुद की ओर देखा। आख मिलते ही कुमुद का चेहरा लाल हो गया। परन्तु दृष्टि बचाकर बोली—'काकाजू आ ही रहे होगे। सन्ध्या हो रही है। दिया-बत्ती और आरती का प्रबन्ध करना है। मै जाती हू।'

कुमुद चट्टान की टेक पर खडी हो गई। ऐसा जान पड़ा, मानो कमलो का समूह उपस्थित हो गया हो—जैसे प्रकाश-पुंज खड़ा कर दिया गया हो। पैरो के पैजनो पर सूर्य की स्वर्ण-रेखाये फिसल रही थी। पीली धोती मन्द पवन के धीमे झकोरे से दुर्गा की पताका की तरह धीरे-धीरे लहरा रही थी। उन्नत भाल मोतियो की तरह भासमान था। बड़े-बड़े काले नेत्रों की बरौनिया भौहो के पास पहुँच गई थी। आखो से झरती हुई प्रभा ललाट पर से चढती हुई उस निर्जन स्थान को आलोकित-सा करने लगी। आधे खुले हुये सिर पर से स्वर्ण को लजाने वाली बालो की एक लट गर्दन के पास ज़रा चञ्चल हो रही थी। उस विस्तृत विशाल जङ्गल और नदी की उस ऊँची चट्टान के सिरे पर खड़ी हुई कुमुद को देखकर कुञ्जर का रोम-रोम कुछ कहने के लिये उत्सुक हुआ।

वे चट्टान और पठारियां, वह दुर्गम और नीली धार वाली वेतवा, वह शात भयावना सुनसान, वह हृदय को चञ्चल कर देने वाली एकांतता और चट्टान की टेक पर खड़ी हुई अतुल सौदर्य की वह सरल मूर्ति !

कुञ्जर ने मन में कहा—'अवश्य देवी है। विश्व की सुन्दर और प्रेममय बनाने वाली दुर्गा है।'

कुँजर को अपनी ओर आँख गड़ाकर ताकते हुये देखकर कुमुद के चेहरे पर और गहरी लाली छा गई। उस समय सूर्य की कुछ किरणे ही बाक़ी रह गई थी। वे उस लालिमा को और भी उद्दीप्त कर गईं।

कुंजर को ऐसा आभास हुआ, मानो सम्पूर्ण विश्व के पुष्पों ने अपनी ताज़गी उस लालिमा को दे दी हो। हृदय उमड़ पड़ा। विश्व भर को अपने में भर लेने के लिये लालायित हो उठा और किसी अपरिचित, किसी निस्सीम, किसी अनिश्चित बलिदान के लिये दृढ़ता अनुभव करने लगा।

कुमुद ने धीरे से कहा—'नाव में बैठे हुये काकाजू भी आ रहे हैं। मैंने कहा था न कि वह आते ही होंगे।' परन्तु कुमुद ने कुंजर की ओर देखा नहीं।

कुँजर उन्मत्त-सा होकर बोला—'एक बार, केवल एक बार चरणों को अपने मस्तक से छुआ लेने दीजिये और हृदय से—'

कुमुद के मुख-मण्डल पर फिर गहरी लाली दौड़ आई। भृकुटि भङ्ग करने की उसने चेष्टा की, परन्तु विफल हुई। मुस्कराहट ने होठों को बरबस पकड़ लिया। बोली—'यदि आपने यह प्रयास किया, तो मैं इसी ओर से कूद पड़ूँगी, फिर चाहे चोट भले ही लग जाय।'

'नहीं, मैंने इस संकल्प का त्याग कर दिया। आप इसी ओर से उतर आवें।'

कुमुद बिना कोई शब्द किये धीरे से उतर आई। नीचे आते ही उसने देखा, गोमती चट्टान के पास तेजी से भागती हुई मन्दिर में घुस गई। कुंजर ने नहीं देखा।

दरवाजे की ओर जाती हुई कुमुद से धीरे से बोला—'मैं अपने मन्दिर में अपनी देवी की आरती करूँगा।'

कुमुद चली गई।

[६९]

दिया-बत्ती और आरती हो चुकने के बाद गोमती को ऐसा जान पड़ा, जैसे कुमुद उससे कुछ बातचीत करना चाहती हो। वह भी अनुत्सुक नही जान पड़ती थी।

उस दिन कोठरी मे कुछ गरमी मालूम होती थी, इसलिये वे दोनों मन्दिर की छत पर चली गईं। कोठरियो, देवालय और दालान सब पर छतें थी। बहुत से आदमी आराम के साथ उन पर लेट सकते थे।

रात्रि अन्धकारमय थी। बेतवा के प्रवाह की चहल-पहल स्पष्ट सुनाई पड़ती थी। जब कभी कोई बडी मछली उछलकर एक स्थान से दूसरे स्थान को दौडती थी, तब साफ सुनाई पडता था। बीच-बीच में किसी भ्रम से, किसी भय से टिटिहरी चिल्ला पड़ती थी, वैसे सुनसान था। आकाश में बिखरे हुये तारे और कही-कही उनकी झुरमुटें प्रकाश के एकमात्र साधन थे। केवल पानी पर कुछ टिमटिमाहट दिखलाई पडती थीं।

वे दोनो लड़कियां उस तिमिरावृत छत पर बैठ गईं। गोमती का कलेजा धक्-धक् कर रहा था।

कुमुद बोली—'तुमने कुछ उपाय सोचा?'

'कौन-सा?' गोमती ने पूछा।

कुमुद ने कहा—'यही ठहरकर घटनाओ के चक्र और उनसे छुटक पड़ने वाले किसी अवसर की प्रतीक्षा में इसी स्थान पर बने रहना चाहिये अथवा उस पार उस गहन बन में, जिसकी एक रेखा भी इस समय लक्ष नही हो सकती, चल देना चाहिये।'

'आपसे बढकर इस विषय पर सम्मति स्थिर करने वाला और कौन है? जहाँ चलोगी, वही मैं पैर बढा दूंगी।'

'मैं समझती हूँ, हम लोग अभी यही बने रहे।'

'ठीक है।'

'दलीपनगर के महाराज के आने की बाट तो देखनी ही पड़ेगी।'

गोमती ने कुछ नही कहा।

कुमुद बोली—'काकाजू ने जो कुछ उस दिन कहा था, उससे अपने मन को इतना दुखी मत बनाओ। मै तुमसे पहले भी कह चुकी हूं। राजा काकाजू को पहले से जानते थे। उनके उस प्रस्ताव पर सहसा कैसे स्वीकृति दे देते ?'

गोमती ने कहा—'क्या बतलाऊँ, आजकल ऐसी-ऐसी अनहोनी बातें हो रही हैं कि मेरा चित्त बिलकुल ठिकाने नही है। जी चाहता है, इसी दह में देह त्याग कर दूँ। न-मालूम किस भ्रम और किस आशा के वश इस समय जीवन धारण किये हूँ।'

कुमुद बोली—'राजा तुम्हे किसी-न-किसी दिन अवश्य मिलेगे, परन्तु तुम्हें इतना मान नही करना चाहिये। यदि वह न आ सकें, तो तुम्हे उनके पास स्वय पहुँच जाने मे सकोच न करना चाहिये।'

'ऐसा कही संभव है ? कोई ऐसा करता है ?' गोमती ने पूछा।

कुमुद ने उत्तर दिया—'क्यो नही ? जहाँ पुरुष आगे पैर बढ़ाता है, वहाँ स्त्री नही बढ़ाती, परन्तु जहाँ पुरुष आगे नही बढ़ता, वहाँ स्त्री को अग्रसर होने में क्यो संकोच होना चाहिये ?'

गोमती ने हँसकर कहा—'ढिठाई क्षमा हो। यह तो बतलाइये कि इस पंथ की बातो को कहाँ से सीखा ?'

कुमुद ने बुरा नही माना। बोली—'इन बातों को बिना सिखलाये ही जान लेना स्त्रियों का जन्म-सिद्ध अधिकार है। मैं जानती हूं, तुम्हें राज्य का लोभ नही है। शायद तुमने राजा को अच्छी तरह देखा भी नही है, फिर क्यो इतना अपनापन प्रकट करती हो ?'

गोमती भी स्पष्ट बातचीत करने के लिये उस रात तैयार थी। कुमुद का मन भी स्पष्टता की ओर बढ रहा था।

गोमती ने कहा—'इसका उत्तर मैं क्या दे सकती हूँ ? कुछ कहती, परन्तु कहते डर लगता है। आपमें देवी का अंश है।'

'रहने दो।' कुमुद ज़रा उत्तेजित होकर बोली—'हममें, तुममें वह अंश वर्तमान है। जब मनुष्य की देह धारण की है, तब उसके गुण-दोष से हम लोग नही बच सकते। कहो, क्या कहना है?'

गोमती ने धीरे से प्रश्न किया—'आपके हृदय में विश्व प्रेम के सिवा और किसी वस्तु के लिये भी स्थान है या नही?'

कुमुद ने हँसकर उत्तर दिया—'विश्व में सब आ गये और उसमें तो कोई सदेह ही नही कि विश्व को प्यार करती हूं।'

गोमती कुछ सोचने लगी। देर तक सोचती रही। कुमुद उस सुनसान अँधेरे में दृष्टि गड़ाने लगी। अन्त में आँगन में कुछ खटका सुनकर बोली—'अभी लोग सोये नही हैं।' फिर आँगन की ओर देखकर कहा—'काकाजू तो सो गये हैं।'

गोमती बोली—'वह जो आज संध्या के पहले कही से आये थे, आँगन में टहल रहे हैं।'

'हाँ, वही।' कुमुद ने धीरे से कहा। फिर एक क्षण बाद सहसा पूछा—'रामदयाल कई दिन से नही दिखाई पड़े?'

'आपने नाम कैसे जाना?' आश्चर्य के साथ गोमती ने पूछा। फिर धीरे से बोली—'आजकल सब कोई सब किसी के नाम जानते हैं।'

'सो बात नही है।' कुमुद ने मीठे स्वर में कहा—'तुम्ही ने तो एक वार कहा था कि वह महाराज का भृत्य है।'

गोमती ने स्वीकार किया।

कुमुद बोली—'काकाजू से न मालूम क्या राजा ने कहा था और क्या उन्होने सुना था। इसके सिवा इस तरह की बातो से काकाजू को प्रयोजन नही रहता है। मेरी सम्मति है, तुम रामदयाल के द्वारा सब बाते अच्छी तरह समझ-बूझ लो। व्यर्थ ही राजा को दोषी मत ठहराओ।

कुमुद के शब्दो और कंठ के लोच से सहानुभूति का प्रवाह-सा उमड़ रहा था। गोमती ने उसकी सच्चाई को अनुभव किया।

जिस बात को गोमती बड़ी देर से भीतर ही रोके हुये थी, उसे उसने अब कहा—'जीजी, एक बात पूछूँ ?'

'अवश्य।'

'आप कभी विवाह करोगी ?'

कुमुद हँसने लगी। गोमती उत्साहित हुई। बोली—'यदि आज इस प्रश्न का उत्तर न दें, तो फिर कभी दीजियेगा, मैं जानना चाहती हूँ। बहुत दिनों से यह बात मन में उठ रही है।'

'क्यों ? कब से ?' कुमुद ने पूछा।

'इसका कारण नहीं बतला सकती।' गोमती ने उत्तर दिया।

कुमुद हँसकर बोली—'तुम्हारे इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर इसलिये नहीं दिया जा सकता कि इस तरह के प्रसंग की कभी कल्पना ही नहीं की।'

[७०]

उस दिन नरपति के मुँह से राजा देवीसिंह की कही हुई बात को सुनकर गोमती को बड़ा विषाद हुआ था, परन्तु आशा ने धीरे-धीरे मन को फिर चेतन किया। शायद महाराज ने यह न कहा हो। कुछ कहा और नरपति काकाजू ने सुना कुछ और हो, अथवा यही कुछ कहा हो कि राज्य के काम-धंधो के मारे कैसे इतनी जल्दी स्मरण हो आता ? परन्तु उन्होने यह क्यो कहा कि वही है या कोई और ? परन्तु वह सहसा मान भी कैसे लेते कि वही हू ? मान लो, वह यहाँ तक दौड़े आते, तो किसी विश्वास पर या यो ही ? राजा हैं, संसार-भर के बखेडो को देखना-भालना पड़ता हैं। सतर्क रहने का अभ्यास पड़ गया है, उसी अभ्यास वश यदि वे सब बाते कही हो, तो क्या आश्चर्य ? परन्तु सेना, राज्य और प्रजा की ओर इतना सघन आकर्षण है कि वह मुझे भूल जायें ?—अभी बहुत दिन भी तो नही हुये हैं, मैंने ककरण को अभी तक खोला भी नही है। इतने दिनो में क्या किसी समय एकान्त का एक क्षण भी न मिला होगा ? क्या सो जाने के पहले शय्या पर एक करवट भी कभी न बदली होगी ? क्या एक पल के लिये भी उस समय पालर की कोई कल्पना-रेखा न खिचती होगी ?

बहुत कष्ट के बाद भी एक समय अवश्य ऐसा आता है कि मन कुछ स्थिरता प्राप्त कर लेता है। उस दिन के कष्ट के उपरान्त गोमती का मन भी कुछ हलका हुआ। उस दिन कुँजरसिंह जब अकेले मे कुमुद के साथ सम्भाषण कर रहा था, गोमती का मन बहुत व्यथा में न था। उसके मन को किसी नवीन समस्या की, किसी ताज़ी उलझन की, किसी नई घटना की उपेक्षा थी। उस वार्तालाप को अकेले में छिपाकर सुनने की इच्छा इसीलिये उत्पन्न हुई। परन्तु चट्टान के पीछे से लौटकर मन्दिर में आ जाने पर उसे विशेष सन्तोष नही हुआ। उसे कुछ ऐसा आभास हुआ कि कुँजरसिंह का अनुरोध केवल भक्त की विनय न था, किन्तु उसमें

कुछ और भी गहराई थी। रामदयाल ने उसे इस सम्बन्ध में अपनी एक कल्पना बतलाई थी। उस पर गोमती को विश्वास हुआ; परन्तु ऐसा कोई स्पष्ट वाक्य गोमती ने नही सुना था, जिससे वह इस निष्कर्ष को निकालती कि यह निस्सन्देह प्रेम-वार्ता है। केवल झंकार उसके हृदय में रह-रहकर उठती थी—चरणो को सिर से, हृदय से लगा लूँ!

गोमती से ऐसी बात किसी ने कभी न कही थी। इसीलिये मन की आंशिक स्थिरता में उसे ख्याल हुआ कि महाराज एकान्त समय में कभी कुछ स्मरण करते होंगे या नही?

करते होगे, तब हृदय को और चाहिये ही क्या? अभी नहीं मिलते? न मिलें। कभी तो मिलेंगे। तब पूछ लिया जायगा कि क्या-क्या बात अकेले में सोचा करते थे? किस-किस बात को लेकर रात-की-रात बेनीद चली जाती थी? उस कल्पना को लेकर क्यों इतना छटपटाया करते थे? और यदि स्मरण न करते होगे तो?

यही बड़ा भारी अनिष्ट था। जैसे-जैसे किसी कष्ट के प्रथम आक्रमण के पश्चात् समय बीतता जाता है, वैसे-वैसे उसकी पीड़ा कम होती जाती है और उसके साथ नई-नई और कदाचित् असम्भव आशाओं का उदय भी होता चला जाता है।

गोमती ने आशा की कि किसी दिन मेरी भी पूजा की जावेगी। यदि न हुई, तो बिना पूजा के कदापि समर्पण न किया जायगा। राजा देवीसिंह भूले नही हैं भुलाने का बहाना-मात्र किया है। किसी दिन वह हँसते या रोते हुये इस बात को स्वीकार करेंगे। यदि ऐसी घड़ी न आई, तो देवीसिंह तो क्या, संसार-भर की भी विभूति यदि मनुष्य का अवतार धारण करके समर्पण की प्राप्ति की अभ्यर्थना करती हुई सामने आवेगी, तो ठुकरा दी जायगी!

इसलिये गोमती ने निश्चय किया कि मन को सँभालना चाहिये और हो सके, तो दृढ़ रखना चाहिये। देखे, इस संसार में कौन क्या करता है दूसरों को बिना देखे अपनी अवस्था के परिचय का सुख-दुःख पूरी तरह प्राप्त न

होगा। गोमती के हृदय से पहले एक हूक जब-जब उठ बैठती थी, अब अधिक उठने लगी। पालर के उस दिन के बन्दनवार बार-बार स्मरण आते थे। सन्ध्या का समय था। पालकी में महाराज नायकसिंह लौटे जा रहे थे। बंदनवारों के सामने ही पालकी जा खडी हुई थी। किसी ने पालकी के काठ को आकर छुआ। कुछ कहा। फिर धडाम से गिर पड़ा। क्या कहा था? यही न कि ये बन्दनवार मेरे ही लिये सजाये गये हैं। इन्ही बन्दनवारो के पीछे किवाड़ की ओट से देखा था। कंकण बँधी हुई कलाई किवाड़ के एक भाग को पकडे हुये थी। क्या जान-बूझकर भूल जायँगे?

और यदि भूल गये हो, तो? राजा प्रायः भूलें किया करते हैं। देखने पर शायद याद आ जाय। तो क्या मैं केवल विलास की सामग्री हूं। क्या आकृति देखकर ही याद आवेगी? पहले कभी साक्षात्कार न हुआ था। सौन्दर्य और लावण्य क्या पूर्व-परिचय की त्रुटि और विस्मृति की पूर्ति करेगा?

तब भी बहुत कुछ आशा है। आदर हो। भक्ति हो। श्रद्धा हो। आराधना भी क्यो न हो? उन्हे करनी पडेगी।

गोमती आशा, निराशा, मान और अभिमान में गोते खाने लगी।

[७१]

एक दिन रामदयाल सवेरे ही आया। कुञ्जरसिंह विराटा के टापू में था। उस समय मन्दिर में केवल नरपति मिला और कोई वहाँ न था। रामदयाल को नरपति देवीसिंह का आदमी समझता था इसलिये उसने उसके आने पर हर्ष प्रकट किया।

बोला—'कहो भाई, क्या समाचार है ?'

'समाचार साधारण है।' उत्तर मिला—'दलीपनगर में जोरों के साथ तैयारियां हो रही हैं।'

'यह समाचार साधारण नही, बहुत आशा-पूर्ण है।'

'यहां टापू मे आज सन्नाटा कैसा छाया हुआ है ?'

'स्नान ध्यान हो रहे हैं।'

'और लोग भी तो होगे ?'

'रहने दो। तुम्हे उनसे क्या ? मन्दिर में तो सभी प्रकार के लोग आया-जाया करते हैं।'

रामदयाल ने बात बदलकर कहा—'आप इस बीच में दलीपनगर भी हो आये और मुझे कुछ न मालूम पड़ा। यदि पहले से मालूम होता, तो कदाचित् मैं किसी सेवा में पड़ जाता।'

नरपति प्रसन्न होकर बोला—'जल्दी में गया और जल्दी में ही आया। दलीपनगर मे ज्यादा देर ठहरने की नौबत ही नहीं आई, कार्य बन गया। मैं लौट पड़ा।'

'हमारे राजा।' रामदयाल ने कहा—'टाला-टूली नही करते। जिसके लिये जो कुछ करना होता है, शीघ्र कर देते हैं। आपको तो पक्का वचन दे दिया है।'

'वह बड़े जोर से अपनी सेना की तैयारी इसीलिये तो कर रहे हैं। बड़े पुरुषार्थी हैं, बड़े ब्रह्मचारी हैं। सूरमाओ की धुन के सिवा और कोई

ध्यान ही नहीं वह लड़की, जिसे आपने यहां देखा होगा, उनकी रानी होने की अधिकारिणी है। केवल भाँवर नहीं पड़ पाई है।' नरपति ने मन्तव्य प्रकट किया। उस सिलसिले में दिमाग दूसरी तरफ़ घूमा। नरपति कहता गया—'उस दिन जब पालर में लड़ाई हुई थी, जरा-सी ही देर हो गई, नहीं तो दांपत्य सम्बन्ध पक्का हो जाता। रह गया, सो रह गया। अब तो उस लड़की को वह पहचानते ही नहीं। कहते थे, कौन ? कहां की ! इत्यादि-इत्यादि।'

रामदयाल चौंका।

उसने पूछा—'इसका भी ज़िक्र आया था ?'

नरपति ने उत्तर दिया—'खूब, मैंने कहा था। गोमती ने तो मना कर दिया था, परन्तु मेरा जी नहीं माना।'

रामदयाल ने अपने आश्चर्य को दबा दिया।

बोला—'इसका कारण है। मैं जानता हूं। परन्तु मुझे आपसे कहने की ज़रूरत नहीं है।'

[७२]

रामदयाल को गोमती के ढूँढने में और गोमती को रामदयाल के ढूँढने में कष्ट या विलम्ब नही हुआ। वार्तालाप के लिये उपयुक्त समय और स्थान के लिये भी विशेष प्रयास नही करना पडा।

गोमती की आकृति गम्भीर थी। रामदयाल के मुख पर किसी भय या चिंता की छाप लग रही थी।

कुशल-मङ्गल के बाद दोनो कुछ क्षण चुपचाप रहे।

अन्त में गोमती ने बारीक, पैने और कुछ काटते हुये से स्वर में पूछा—'तुम्हारे महाराज तो आज कल सैन्य-सग्रह और चढ़ाई की तैयारी के सिवा और सोचते ही क्या होगे ?'

रामदयाल ने नीचा सिर किये हुये घायल आदमी की तरह उत्तर दिया—'उस धुन के सिवा और कोई धुन ही नही है। आजकल तो और किसी बात के लिये ज़रा भी अवकाश नही मिलता। परन्तु—'

'परन्तु क्या रामदयाल ?' गोमती ने धड़कते हुये कलेजे से, परन्तु उपेक्षा की मुद्रा धारण कर के कहा—'तुमने तो नही मेरी ओर से कुछ कहा था ?'

'आपकी ओर से तो नही।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'अपनी ही ओर से कहा था। बोले, इस समय राजनीति और रण-नीति के अतिरिक्त और कोई चर्चा न करो।'

ज़रा चिढ़कर गोमती बोली—'तुमने नाहक मेरी बात छेड़ी रामदयाल !'

'क्या करूँ, मन नही माना।' गद्गद्-सा होकर रामदयाल ने कहा—'आपको दुखी देखकर छाती फटती है। आपको सुखी देखकर यदि तुरन्त मर जाऊँ, तो मेरे बराबर पुण्य वाला किसी को न समझा जाय।'

गोमती को उस गद्गद् कण्ठ ने तुरन्त आकृष्ट किया। स्त्री की सहज साधारण सावधानी को गोमती दूर रखकर बोली—'मैं राज-पाट की

भिखारिन नही हू, महाराज आनन्द के साथ संसार में रहे, मेरे लिये इतना ही बहुत है।'

रामदयाल ने उत्तेजित होकर कहा—'परन्तु मेरे सतोप के लिये इतना कम से कम आवश्यक है कि आप आनन्द-पूर्वक रहे। मैं साधारण मनुष्य हूँ, परन्तु मेरे हृदय को यह कहने का अधिकार है।'

गोमती ने उत्सुकता की अधीरता के वश होकर कहा—यह निश्चय जानो रामदयाल, मै स्वय दलीपनगर नही जाऊँगी। निरादर के सिंहासन से इस जङ्गल का जीवन सहस्र गुना अच्छा। यहाँ मेरे लिये सब कुछ है।'

रामदयाल बोला—यह ठीक है, परन्तु आपको यहाँ बहुत दिनो नही रहना चाहिये। कुछ दिनो बाद यहाँ लोहे और अग्नि की वर्षा होगी। यद्यपि आप निर्भय हैं, तो भी व्यर्थ ही विपद् को सिर पर बुलाना ठीक नही मालूम पडता। यही, किसी जङ्गल के किसी सुरक्षित स्थान में, आप रह जायें, सेवा के लिये मुझ-सदृश भृत्यो की कमी न रहेगी।'

'मै किसी भी सकटमय स्थान में जा सकती हू। कुमुद भी देर-सवेर यहाँ से जायँगी। उन्ही के सङ्ग रह जाऊँगी।' फिर तुरन्त हँसकर बोली—'अर्थात् यदि उन्होने निभा लिया, तो।'

रामदयाल ने नीचे से ही एक आँख को ऊँचा करके पूछा—'मुझे विश्वास है, कुञ्जरसिंह उनका पीछा न छोड़ेंगे। ऐसी दशा में आपका उनके सङ्ग रहना कैसे सभव होगा?'

कुछ सोचकर गोमती बोली—'यह एक समस्या अवश्य है।' फिर कुछ क्षण चुप रहकर उसने पूछा—'अब तो तुम महाराज के साथ ही रहोगे?'

'कुछ आवश्यक नही है।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'मैं चरणों की से। में ही रहूंगा।'

इससे कुछ मिलती-जुलती वातचीत गोमती ने किसी चट्टान के पीछे छिपकर हाल ही में सुनी थी। उसके स्मरण में देर नही लग सकती थी शायद मन में पहले से मौजूद थी। गोमती का अनमना मन यकायक कही

चला गया। हँसकर बोली—'परसों मैंने जो बातचीत सुनी है, उससे तुम्हारी उस दिन की बात पर विश्वास करने को जी चाहता है।'

'यहां कुञ्जरसिंह आये हुये हैं?'

'हाँ।'

'तब मैं सम्पूर्ण बात सुनने का अधिकारी हूँ। अवश्व सुनाइये। पूरा हाल सुनने के लिये जी चंचल हो रहा है।'

गोमती ने उत्तर दिया—'किसी एक वाक्य को सम्पूर्ण सम्भाषण में से खीच निकालकर यह नही बतलाया जा सकता कि तुम्हारे सन्देह की पुष्टि में यह प्रमाण है; परन्तु कुछ कुछ भान मुझे भी होने लगा है।'

हंसते हुये बडे अनुरोध, बड़े आग्रह और बहुत मचलते हुये रामदयाल ने कहा—'मैं तो पूरी बात सुनूँगा। सारा भाव जानकर रहूँगा।'

कुछ संकोच के साथ गोमती बोली—'जितना याद होगा, बतला दूँगी।'

'मै पूछता जाऊँगा, आप बतलाती जाना।' रामदयाल ने पूर्ववत् भाव के साथ प्रस्ताव किया।

गोमती बोली—'मैं कोठरी में थी। कुञ्जरसिंह से उन्होंने कुछ बात करने की इच्छा प्रकट की।'

फिर एक क्षण सोचकर कहा—'परन्तु रामदयाल, हो सकता है, कुञ्जरसिंह किसी वरदान की याचना ही के लिये वैसे भक्ति-पूर्ण वचनों से सम्बोधन कर रहे हो।'

जोश के साथ रामदयाल बोला—'महारानी का यह भ्रम है। वरदान की याचना हो सकती है, परन्तु दूसरे तरह के वरदान की। मुझे कुछ बाते सुनाई जायँ, तो मै निश्चय के साथ बतला दूँगा। मै छुटपन से राजाओ और रानियो के बीच में रहा हूँ। मुझसे किसी ने किसी भांति की आड-मर्याद नही मानी है। संसार का पूरा अनुभव मुझे है। आप भ्रम में न पड़ें, कहे।'

'कुमुद बातचीत करने के लिये बड़ी सतर्कता के साथ बाहर गई और बड़ी बारीकी के साथ इधर-उधर दृष्टि डालती रही। हो सकता है, नरपति काकाजू के आगमन की प्रतीक्षा करती हो।' गोमती ने मुस्कराकर कहा।

रामदयाल बोला—'मेरा अनुभव मुझे बतलाता है कि जब दो व्यक्ति मिलना चाहते हैं, तब सहसा इसी तरह चौकन्ना होना पडता है।'

गोमती ने कहा—'फिर एक चट्टान पर वह जा बैठी। इधर-उधर देखती रही। देर तक बातचीत करने के बाद भीतर चली गईं परन्तु उनके वहां से चल देने के पहले ही मै वहा से चली आई थी।'

'आप जहाँ थी, वहाँ से देख सुन तो सब सकती थी ?' रामदयाल ने प्रश्न किया।

गोमती ने कहा—'हाँ।'

'क्या ऐसा नही होता था कि कभी-कभी उठान तो बात का उत्साह और जोर के साथ होता हो, परन्तु अन्त बहुत ही साधारण ?'

'इसी तरह तो प्रायः सम्पूर्ण वार्तालाप हुआ था।'

'कुमुद की बोली में रुखाई थी ?'

'बिलकुल नही।'

'कुञ्जर ने अधिक जोर किस बात पर दिया था ?'

'इस पर कि मैं अब तो सदा आपके निकट ही रहूंगा।'

'वह स्वीकार नही कर रही होगी ?'

'स्पष्ट अस्वीकृति तो नही की।'

'यही ढंग तो असल में होता है।'

गोमती कुछ सोचने लगी।

रामदयाल ने कहा—'मैं विश्वास दिलाता हूँ, कुमुद के हृदय पर कुञ्जर का प्रभाव हो गया है। उसने कोई घनिष्ठता-सूचक बात नही की थी ?'

'स्मरण नही है।'

रामदयाल ने नीचे आँखें किये हुये पूछा—'कुमुद कुञ्जर से आँखें जोड़कर बात कर पाती थी या नही ?'

गोमती ने उत्तर दिया—'मैंने स्पष्ट लक्ष्य नही किया।'

रामदयाल बोला—'कनखियो देखती थी ?'

'हाँ, कुछ ऐसी ही।'

रामदयाल ने बेतवा की धारा की ओर देखते हुये कहा—'अच्छा, यह तो निश्चय-पूर्वक आपको याद होगा कि जब कुञ्जरसिंह खूब अच्छी तरह कुमुद की ओर देखना चाहते होगे, तभी उनका मुँह दूसरी ओर फिर जाता होगा ?'

गोमती ने पूछा—'रामदयाल, तुम्हे ये सब बाते किसने बतलाई ?'

उसने जवाब दिया—'सरकार, हम लोग सदा महलों में ही रहते हैं कम-से-कम मेरा समय रानियो की ही सेवा में जाता है। अधिकांश समय प्रेम-चर्चा में बीतता है। अपनी-अपनी बीती लोग सुनाया करते हैं। मेरी आयु जरूर थोड़ी है, परन्तु संसार के अनुभव बूढ़ो से अधिक हैं। महाराज नायकसिंह मुझे दिन-रात में किसी समय अपने पास से अलग नही करते थे। जब आज्ञा होगी, उनके मनोरंजक किस्से सुनाऊँगा। परन्तु पहले मैं भी तो पूरी-पूरी बात सुन लूँ।'

किसी उत्सुकता, किसी दूरवर्ती घटना-चक्र के कौतूहल ने गोमती को हिला-सा दिया।

धीरे से बोली—'बतलाती जाती हूं।'

रामदयाल वार्तालाप में अग्रसर होता चला जा रहा था। पूछा—'एक-आध बार बातचीत करने में कुञ्जर का गला काँपा था ?'

'इसका भी ठीक-ठीक ध्यान नही है।'

रामदयाल ने कहा—'जब भीतर से हृदय उमड़ता है, भाव की बाढ़ आती है और बात पूरी कह पाने का अवसर नही मिलता, तब यही दशा होती है। रामदयाल ने इसके बाद अपना गला साफ किया।'

गोमती हँसकर बोली—'रामदयाल, तुम्हारा गला क्यों काँप रहा है ?'

उसने मुस्कराकर कहा—'आप केवल मेरे प्रश्नो का उत्तर देती जाये। अभी आपको प्रश्न करने का अधिकार नही है ?'

फिर बोला—'बात करते-करते कभी कुञ्जर यकायक रुक जाता होगा। देर तक कुछ सोचता रहता होगा। फिर यकायक कोई असगत बात कह देता होगा। यही दशा कुमुद की रही होगी।'

'हां, परन्तु ऐसा क्यो हुआ होगा ?' गोमती ने सकोच के साथ प्रश्न किया।

रामदयाल बोला—'जब एक हृदय का दूसरे हृदय की ओर सवाद जाने को होता है, तब सबसे पहले आखे कुछ कहती है। दिखलाई पडता है, परन्तु आख मिलाकर देखते ही नही बनता। हजारो निरर्थक-सी बाते होती हैं। रुक-रुककर। बिना प्रवाह के। जैसे कोई गला दबाये देता हो। मालूम होता है, जो बात कहनी है, उस पर खूब विचार किया जा रहा है, परन्तु वास्तव में विचार होता किसी विषय पर भी नही है।'

'शायद।' एक ओर देखते हुये गोमती ने कहा।

रामदयाल बोला—'एक हृदय की दूसरे हृदय के साथ जब मुठभेड़ होती है, तब कुछ इसी तरह का भूचाल-सा आता है।'

गोमती ने इस पर कोई मन्तव्य प्रकट नही किया।

रामदयाल ने कहा—'इस दशा में एक बड़ी अनोखी बात होती है।'

गोमती ने बड़ी उपेक्षा दिखाते हुये पूछा—'क्या ?'

रामदयाल ने उस उपेक्षा की तली में देखा, काफी कौतूहल वर्तमान है।

उसने बतलाया—'एक पक्ष तो यह समझता है कि मै प्यार करते-करते खपा जा रहा हूँ और दूसरा मेरी बात भी नही पूछता, उधर दूसरा पक्ष–'

रामदयाल रुक गया। गोमती ने उपेक्षा के भाव को त्यागकर कहा–'दूसरा पक्ष क्या ?'

वह बोला—'उधर दूसरा पक्ष कदाचित् यह सोचता है कि मैं करूँ, तो क्या करूँ ? हृदय का दान देने को जो यह उतारू है, सो वास्तव में ऐसा ही है या नहीं ? यदि ऐसा ही है, तो मै अपने हृदय का दान किस भांति करूँ। अन्त में कदाचित् यह निश्चय होता है कि हृदय का गुप्त दान करूँ—कोई न जाने, यहाँ तक कि लेने वाले से भी यह दान छिपा रहे।'

गोमती हँसने लगी।

रामदयाल हाथ जोडकर सर्राटे के साथ बोला—'आप हँसती हैं, क्योंकि इस तरह की समस्याएँ आपके देव-तुल्य के मन के सामने आकर खड़ी नही हुई। परन्तु सच मानिये, जहाँ एक बार हृदय को किसी ने हिलाया कि इस कथन का तथ्य सच्चा जँचने लगता है। प्यार के सामने कोई विघ्न-बाधा और संकट नही टिकने पाते। ऊँच-नीच का भेद-भाव मिट जाता है। व्यथा के बाँध और रोडे ढोके बह-बहाकर तिरोहित हो जाते हैं। बड़ा आदमी छोटे को और छोटा बड़े को प्यार करने से नही रुक सकता। उसे कोई वस्तु ऐसा करने से नही रोक पाती। प्रेम के सामने छोटे-बड़े और ऊँच-नीच का अन्तर नष्ट हो जाता है। महलो में जो मै सदा देखा करता हू, उससे मै इस निश्चय पर पहुंचा हूँ कि छोटा व्यक्ति बडे को अधिक सच्चाई और अधिक गहराई के साथ चाह सकता है। बडा जब थोड़ा-बहुत छोटे को प्यार करता है, तब यह समझता है कि मै एहसान कर रहा हूँ।'

गोमती ने इतना बाचाल रामदयाल को पहले कभी न देखा था। ज़रा आश्चर्य किया।

बोली—'तुम्हारा क्या अभिप्राय है रामदयाल ?'

बिना किसी सकपकाहट या संकोच के उसने उत्तर दिया—'मुझे इस समय यकायक ताव आ गया था। मैं स्वाभाविक सेवक हूँ। महाराज के सुख-दुख में बराबर साथ रहता हू, परन्तु मेरी सहानुभूति उनके साथ नही है।'

'क्यों ?'

इसलिये कि बार-बार कहने पर भी उन्हे स्मरण नही आता। आमोद प्रमोद के समय किसी भी स्मृति की हूक उनके कलेजे में नही उठती। मुझे तो कभी-कभी उन पर क्रोध भी आ जाता है।'

गोमती अपने को न रोक सकी। पूछने लगी—'तुम्हारे सामने कभी बात पड़ी मेरी ?'

तुरन्त उसने उत्तर दिया—'मैने तो कई बार कहा, परन्तु न मालूम क्या धुन समाई है। मनुष्य का बड़े पद पर पहुच जाना दूसरो, विशेषकर आश्रितो के लिये बड़ा कष्ट-पूर्ण होता है।'

गोमती का चेहरा पीला पड़ गया।

बहुत पास जाकर रामदयाल बोला—'अरे वाह ! मेरी रानी, यह क्या ? तुम्हे ऐसा दुःख न करना चाहिये। राजप्रासाद के सुखो की कल्पना में अपने को इतना नही डुबोना चाहिये कि स्वल्प-सी निराशा के उदय होते ही मन का यह हाल हो जाय। मुझे विश्वास है, महाराज इस समय भूले हुये हैं, तो किसी समय स्मरण भी करेंगे।'

रामदयाल की आखो में आसू आ गये।

गोमती भी उन आँसुओ को देखकर थोड़ी देर रोई।

रामदयाल ने कहा—'यह कम-से-कम मेरे लिये असह्य है। आप यदि और रोईं, तो मेरा कलेजा टूक-टूक हो जायगा।'

गोमती दृढता के साथ बोली—'अब नही रोऊँगी रामदयाल।' फिर स्थिर होकर एक क्षण बाद उसने कहा—'तुम्हे यह कैसे विश्वास हो गया कि मैं महलो के सुखो की लालसा में लिप्त हूं ? मै ऐसे महलो को पैरो से ठुकराती हूँ, जहाँ सम्मान के साथ प्रवेश न हो।'

रामदयाल ने कहा—'मै यह नही कहता। वहाँ पहुँचने पर सम्मान तो अवश्य होगा; परन्तु उसमें हमारे महाराज का कोई एहसान नही। ऐश्वर्य, रूप और महत्त्व अपना जो आदर बरबस करवा लेता है, वही आपका भी होगा उस महल में क्या, कही भी। परन्तु चन्द्रमा का प्रकाश नगरो में उतना अच्छा नही मालूम होता, जितना जगलो में।'

फिर एक क्षण ठहरकर रामदयाल बोला—'मैं आपको यहाँ अकेला नही रहने दूंगा और न मैं महाराज की सेवा में अब जाऊँगा। जङ्गलो में आपके पास मर जाना अच्छा। महलो में रहना अब असह्य है।'

गोमती ने देखा, बात करते-करते रामदयाल का गला भर भर आता है। बोली—'बहुत संभव है, कुञ्जरसिंह भी साथ रहे, क्योंकि मै कुमुद का साथ नही छोडना चाहती और वह कुमुद के निकट रहेगा। ऐसी हालत में तुम्हारी कैसे निभेगी ?'

बड़ी लम्बी सांस लेकर रामदयाल ने उत्तर दिया—'यदि आपके मन से हो, तो मैं बाबा का वेश धारण कर के बना रहूँगा, कोई न पहिचान पावेगा और यदि आपके मन में न होगा, तो मेरा ससार में और कोई नही है; इसी दह में अपनी देह डुबो दूँगा।'

गोमती बोली—'मुझे कोई आपत्ति नही है। बने रहना। तुम्हारा बहुत सहारा रहेगा।'

रामदयाल गोमती के घुटने छूकर बोला—'जन्म भर दूर न कर सकोगी। सदा पास रहूँगा। यदि अनन्तकाल तक भी बाबा वेश धारण करना पड़ा, तो किये रहूगा। मैं आपके कृपा कटाक्ष के लिये संसार भर की विपत्तियां झेलने की सामर्थ्य रखता हूँ।'

गोमती के पीले चेहरे पर मुस्कराहट आई। बोली—'रामदयाल कुछ इसी तरह की बात कुमुद से कुजरसिंह भी कह रहे थे।'

रामदयाल झेप गया, परन्तु नीची आंखे किये हुये ही बोला—'मालूम नही, कुजरसिंह के असली भाव को कुमुद ने समझ पाया या नही।'

'उसका असली भाव क्या रहा होगा ?' गोमती ने अलसाते स्वर में कुछ लापरवाही के साथ पूछा।

रामदयाल ने जवाब दिया—'असली भाव, यदि कुञ्जर सच बोल रहे थे, तो यही रहा होगा कि लो या न लो, कुचल दो या ठुकरा दो, परन्तु मेरा हृदय तुम्हारे लिये मेरी हथेली पर है।'

गोमती खडी हो गई। बोली—'बहुत थकावट मालूम होती है। जाड़ा-सा लग रहा है। अब चलो।'

[७३]

राजा देवीसिंह ने तीन ओर से अलीमर्दान के ऊपर आक्रमण करने का निश्चय किया। सिंहगढ से लोचनसिंह दलीपनगर से पालर होते हुये स्वय और बडे गांव से जनार्दन शर्मा दस्ते ले चलें, इस योजना पर कार्य करना निर्धारित हुआ। यह निश्चय किया गया था कि लोचनसिंह नवाब को भाडेर में कुछ समय तक अटकाये रक्खे, तब तक राजा पालर से आकर रानियो को परास्त कर देगे और भाडेर पहुचकर लोचनसिंह की सहायता करके नवाब का अड्डा समाप्त कर देगे तथा जनार्दन का दस्ता जरूरत पड़ने पर कुमुक पहुचाने के लिये बडेगाँव से भाडेर की ओर राजा के पीछे-पीछे बढेगा।

रामनगर में रानियो को पालर वाली सेना के आने की सूचना मिली। उनके पास भी कुछ सरदार और सैनिक इकट्ठे हो गये थे। रामनगर गढ हाथ में था, परन्तु पडोस में बिराटा का कटक भी था। रामनगर के राव पतराखन को बिराटा के सबदलसिंह के प्रति सुहृद भाव बनाये रखने के लिये विशेष कारण न था। इस समय यह काफी तौर पर प्रकट हो गया था कि सबदलसिंह ने नवाब के मुक़ाबिले के लिये राजा देवीसिह को निमन्त्रित किया है। पतराखन को मालूम था कि रानियो के पक्ष में नवाब है, परन्तु नवाब ने बिराटा पर चढ़ाई करने का अभी तक कोई लक्षण नही दिखलाया था। रामनगर में रानियो और पतराखन की स्थिति तभी तक सुरक्षित समझी जा सकती थी, जब तक बिराटा और पालर की ओर से आई हुई सेनाओ का सहयोग हुआ था। पतराखन को अपनी गढी पर इतना मोह न था, जितना उसमें रक्खी हुई संचित सम्पत्ति और गाढे समय में काम आने वाले अपने थोड़े से, परन्तु निर्भीक योद्धाओ का। समस्या ज़रा कराल रूप में सामने खड़ी देखकर उसने रामदयाल को बुलाया। वह उसी दिन बिराटा से लौटकर आया था। उसने रानियो से सलाह करने के लिये मिलने की इच्छा प्रकट की। रामदयाल उसे रनिवास में ले गया। पर्दे में होकर रानियो

से प्रत्यक्ष बातचीत होने लगी। किसी बीच वाले की ज़रूरत नही पड़ी।

छोटी रानी ने कहा—'पर्दे से काम नही चल सकता रावसाहब। अटक पड़ने पर तो मुझे तलवार हाथ में लेकर रण-क्षेत्र में जाना पड़ेगा।'

पतराखन के जी में लड़ने के लिये बहुत उत्साह न था, तो भी तेजी दिखलाते हुये उसने कहा—'ठीक है महाराज और वह दिन शीघ्र आने वाला है। देवीसिंह अपनी सेना लेकर आ रहे हैं। बहुत सम्भव है कल तक हम लोग यही घिर जायँ या बिराटा की गढ़ी से तोप हमारे ऊपर गोले उगलने लगे।'

छोटी रानी ने कहा—'तब हमें तुरन्त अपनी सेना पहले से ही भेजकर कही पालर के पास ही लड़ाई करनी चाहिये और जैसे बने, बिराटा की गढ़ी अपने हाथ में कर लेनी चाहिये।'

पतराखन बोला—'मुझे दोनो प्रस्ताव पसन्द हैं, परन्तु आदमी मेरे पास इतने नही कि इन प्रस्तावों में से एक को भी सफलता पूर्वक कार्य में परिणत कर सकूँ। बिना नवाब की सहायता के कुछ न होगा। मालूम नही, उन्होने अभी तक बिराटा को क्यो अपने अधिकार में नही लिया।'

बड़ी रानी ने कहा—'बिराटा को हमें स्वयं अपने अधिकार में कर लेना चाहिये, नही तो नवाब कदाचित् वहां के मन्दिर को तुड़वा डालेगा।'

छोटी रानी बोली—'यह असम्भव है।'

पतराखन ने कहा—'असम्भव तो कुछ भी नही है, परन्तु वह ऐसा करेगा नही। सबदल ने उनके साथ जैसा बर्ताव किया है, उससे यह प्रकट होता है कि नवाब मन्दिर को छोड़कर गांव-भर को तो अवश्य ही तहस-नहस कर देगा।'

रामदयाल बोला—'गाव को खाक करने से क्या मतलब? नवाब तो उस दांगी की छोकरी का डोला चाहते हैं, जिसे मूर्खों ने अवतार मान रक्खा है।'

बड़ी रानी ने पूछा—'कौन को ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'मैं स्वयं उसे देख आया हूं। वह नित्य देवी से कुन्जरसिंह की सफलता के लिये प्रार्थना किया करती है और कुन्जरसिंह नित्य यह सोचा करते हैं कि अन्नदाता और देवीसिंह को परास्त करके दलीपनगर के राजसिंहासन पर बैठ जाऊँ और कुमुद को अपनी रानी बना लूँ। महाराज, अपनी आखो सब हाल देख आया हू। मैंने अपने को वहा राजा देवीसिंह का नौकर प्रसिद्ध कर रक्खा है।'

'राजा देवीसिंह !' छोटी रानी ने अत्यन्त घृणा के साथ कहा—'चाहे कुछ हो जाय, देवीसिंह राजा न रहने पावेगा।'

पतराखन अधैर्य के साथ बोला—'जो कुछ करना हो, जल्दी करिये। मेरी राय है कि रामदयाल को नवाब के जताने के लिये तुरन्त भेजिये, अपने सरदारो और सैनिको को दो भागो में बाटकर एक को देवीसिंह से लडने के लिये पहुँचाइये और दूसरे को बिराटा के ऊपर धावा करने के लिये भेजिये। एक ओर से आपकी टुकडी बिराटा पर धावा करे और दूसरी ओर से मेरी टुकड़ी। मैं उस पार जाकर उधर से धावा करूँगा और विराटा वालो को निकल भागने का अवसर न दूगा।'

रामनगर की गढी से बिराटा की गढ़ी स्पष्ट दिखलाई पड़ रही थी—करीब एक कोस की दूरी पर पानी में खड़े हुये एक स्तम्भ-सदृश प्रतीत होती थी।

बड़ी रानी ने कहा—'विराटा की उस कन्या का क्या होगा ? क्या उसे मुसलमानो द्वारा मर्दित होते हुये देखा जायगा ?'

रामदयाल ने तुरन्त उत्तर दिया—'उसी लोभ के वश असल में नवाब हमारा साथ देने को यहा आवेगा। दलीपनगर का एक चौथाई राज्य भी उसे चाहिये, परन्तु उस लडकी के बिना वह तीन चौथाई हिस्से पर भी लडने को इन दिनो राज़ी न होगा। फिर भी मैं विश्वास दिलाता हू कि मैंने ऐसा प्रबन्ध किया है कि उस लोभ से नवाब हमारी सहायता के लिये आवे और यथासम्भव उसे पावे नहीं।'

बड़ी रानी ने पूछा—'यह कैसे होगा ?'

उसने उत्तर दिया—'यह ऐसे कि विराटा में कुञ्जरसिंह विद्यमान हैं। वह उस लड़की को विना अपनी रानी वनाये दम नही लेंगे, चाहे दलीपनगर का या दलीपनगर की एक हाथ भूमि का भी राज्य मिले या न मिले। बिराटा के अधिकृत होने के पहले ही मुझे पूर्ण आशा है वह लड़की कुन्जरसिंह के साथ किसी सुरक्षित स्थान में भाग जायगी। मैं पानी के मार्ग से नाव में होकर विराटा आया-जाया करूँगा और सब समाचार दिया करूँगा अर्थात् जब तक बिराटा अपने अधिकार में नहीं आया।'

बड़ी रानी इस बेतुके उत्तर से सन्तुष्ट नही हुईं। कुछ पूछना चाहती थी कि छोटी रानी बीच में पड़ गईं। बोली—'ऐसी छोटी-छोटी बातो पर इस समय ध्यान देने की आवश्यकता नही है। रामदयाल जो कह रहा है, वह ठीक है। तुरन्त नवाब को ससैन्य बुलाना चाहिये। रामदयाल, तुम इसी समय घोड़े पर सवार होकर सरपट जाओ। मैं चाहती हूँ कि सवेरा होने के पहले ही हमारी और नवाब की सेनायें देवीसिंह को कुचलने और बिराटा को ढाह देने के काम में नियुक्त हो जायें।'

रामदयाल ने स्वीकार किया।

पतराखन ने कहा—'मै उस पार जाकर अपनी योजना को काम में लाता हूँ।'

रामदयाल भाडेर की ओर गया और पतराखन गढ़ी को अपने सिपाहियो और सम्पत्ति से खाली करके उस पार सुरक्षित जगल में चला गया। परन्तु तोप वही छोड़ गया।

[७४]

रामदयाल बहुत तेजी के साथ भांडेर गया और दिन-ही-दिन में नवाब के सामने जा पहुचा। दिल्ली से एक बहुत जरूरी फरमान आया था कि तुरन्त सम्पूर्ण सेना लेकर दिल्ली आ जाओ। इस फरमान को आये हुये कई दिन हो गये थे। अलीमर्दान को राजा देवीसिंह की तैयारियो की खबर लग चुकी थी, इसलिये और शायद किसी और कारणवश भी अलीमर्दान स्वयं तो दिल्ली की ओर रवाना नही हुआ; परन्तु उसने अपनी सेना के एक काफ़ी भाग के साथ कालेखां को दिल्ली की ओर भेज दिया। वह भांडेर में ही बना रहा। राजा देवीसिंह को कुछ समय तक रोके रहने के लिये उसने एक चाल चली; दलीपनगर को सधि का प्रस्ताव भेजा। कहलवाया कि दो निकटवर्ती राज्यो में मेल रहना चाहिये। लडाई की तैयारी बन्द कर दो, नही तो अनिवार्य-संकट में पड जाओगे। राजा इसका उत्तर नही देना चाहता था, परन्तु जनार्दन नही माना। उसने एक बड़ी मीठी चिट्ठी लिखवाई, जिसके लम्बे वाक्यो का सार यह था कि यहां भी तुरन्त लड़ डालने की किसी की अभिलाषा नही है। इस सधि-प्रस्ताव और उसकी अर्द्ध-स्वीकृति पर दोनो को सदेह था।

देवीसिंह रानियो से लड़ने जा रहा था। जानता था कि अलीमर्दान उत्तर से सहायता के लिये आयेगा, तब इस सधि ी रद्दी के टुकडे से भी बढ़कर प्रतिष्ठा न होगी। अलीमर्दान का विश्वास था दलीपनगर मेरे चकमे में आ गया है।

रामदयाल को ऐसी हडबडी में आता देखकर अलीमर्दान को आश्चर्य नही हुआ, क्योकि वह समय ऐसा था कि अचेती और अनजानी उलझनें अकस्मात् उपस्थित हो जाया करती थी।

एकान्त पाने पर रामदयाल ने कहा—'हजूर, मामला बहुत टेढा है। राजा देवीसिंह की सेना रामनगर पर बढ़ी चली आ रही है।'

'कब ?' अलीमर्दान ने पूछा।

'आज पालर के क़रीब थी।' उसने उत्तर दिया— कल संध्या तक रामनगर और विराटा पर दखल हो जाने का भय है।'

'मेरी आधी सेना तो कालेखाँ के साथ दिल्ली चली गई है।'

'परन्तु जो कुछ सरकार के पास है, वह सरकार के शत्रुओं के दांत खट्टे करने के लिये बहुत है।'

'तुम लोगो के पास कितनी सेना है।'

रामदयाल ने अपनी सेना का कूता अलीमर्दान को बतलाया।

अलीमर्दान ने कहा—'तब तक इतनी सेना से लड़ो। काफी है। कुछ समय बाद हमारी कुमुक पहुँच जायगी।'

रामदयाल घबराकर बोला—'तब तक हम लोग शायद बिलकुल पिस-कुट जायँ। बिराटा से सबदल और कुञ्जरसिंह हम लोगों को संतप्त करेंगे, उधर से देवीसिंह हमें भून डालेगे, रामनगर के रावसाहब अपनी सेना लेकर उस पार जंगलो में चले गये हैं। यदि उन्होने विराटा पर आक्रमण न किया, तो हम लोग ऐसे गये, जैसे पिंजड़े में बन्द चिड़िया को बिल्ली मरोड़ देती है।'

'बेतवा-किनारे के किसेदारों को।' अलीमर्दान ने कहा—'मैं खूब जानता हूँ। ऐसे बदमाश और दगाबाज हैं कि कुछ टिकाना नही। कई बार सोचा, मगर मौक़ा नही मिला। अबकी बार मौका मिलते ही पहले इन बन बिलावों को मटियामेट करूँगा।'

कुछ उत्साहित होकर रामदयाल बोला—'वह मौका हुज़ूर न-जाने कब आने देंगे। सरकार सोचे, कैसी विकट समस्या हम सब लोगों के लिये है। हमें मिटाने के बाद निश्चय ही देवीसिंह आपको छेड़ेगा। फिर क्यों उसे इस समय छोड़ा जाय?'

अलीपर्दान ने सोचकर कहा—'बिराटा में है कुञ्जरसिंह?'

'हाँ, सरकार।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'और कमर कसकर

हुजूर से लड़ने के लिये तैयार है। सबदलसिंह बागी हो गया है। लडेगा। उसने देवीसिंह को इस ओर आपसे और रानी साहब से लड़ने के लिये बुलाया है। उसी के साथ कुञ्जरसिंह हो गया है।'

स्वप्न-सा देखते हुये अलीमर्दान ने कहा—'बागी तो कुल बेतवा का किनारा ही है, अकेला सबदल क्या। पर अबकी बार उसके किले को जमीन में मिला देना है।'

फिर मुस्कराकर बोला—'केवल तुम्हारे मन्दिर को छोड़ दूंगा। तुम जानते हो कि मन्दिरो से मुझे दुश्मनी नही है।'

जिस बात के कहने के लिये रामदयाल उकता-सा रहा था, अवसर मिलने पर प्रकट किया—'मन्दिरो को तो हुजूर ने कभी छुआ नही है। उसी मंदिर में पालरवाली वह दाँगी की जवान लड़की भी है। वह पद्मिनी जाति की स्त्री है।'

नवाब ने अधिक मुस्कराहट के साथ पूछा—'अभी तक वहाँ से भागी नही? मैं समझता था, चली गई होगी। बडी दिक्कत तो यह है कि बहुत-से हिंदू उसे देवी का अवतार मानते हैं।'

रामदयाल बोला—'तब हुजूर को पूरी बात का पता नही है। वह मदिर में इस समय तो है, परन्तु कुछ ठीक नही, कब कुञ्जरसिंह के साथ भाग जाय।'

नवाब ज़रा चौंका। कहने लगा—'क्या यह बात है? रामदयाल, तुम सच कह रहे हो? यदि बात सच है, तो क्या हिन्दुओ का यह सिर्फ ढकोसला ही है?'

रामदयाल ने जवाब दिया—'बिलकुल। मैंने अपनी आँखो से उन लोगो को देखा है और कान से उनका प्रेम-संभाषण सुना है।'

अलीमर्दान थोडी देर तक कुछ सोचता रहा।

रामदयाल से पूछा—'कुञ्जरसिंह' का देवीसिंह के साथ मेल हो गया है?'

उसने उत्तर दिया—'मेल तो मैंने नही सुना और न होने की कोई संभावना है। कुंजरसिंह को तब तक और विराटा की गढ़ी में रहा समझिये, जब तक कुमुद उसके साथ नही भागी है। पीछे फिर चाहे देवीसिंह से या किसी से लड़े या न लडे।'

थोड़ी देर के लिये अलीमर्दान फिर सोच-विचार में पड़ गया।

कुछ देर में बोला—'तुम्हारी यह इच्छा है कि मैं विराटा की तरफ तुरन्त कूच करूँ।'

हाथ जोड़कर रामदयाल ने उत्तर दिया—'हुजूर मेरी क्या, आपकी राखीबद बहन रानी साहब की भी यही प्रार्थना है।'

अलीमर्दान ने बड़ी चेतनता के साथ कहा—'अभी तैयारी होती है। तुम चलो। आता हूं। कुञ्जरसिंह को भी सज़ा देनी है और उस अहमक सबदल को भी सबक सिखलाना है। दो-तीन दिन में ही यह सब काम निबट जायगा। मैं पहले बिराटा को देखूँगा।'

रामदयाल चलने लगा।

चलते-चलते उससे अलीमर्दान बोला—'मेरे आने तक इतना प्रबन्ध ज़रूर हो जाय जिसमें बिराटा का कोई भी व्यक्ति बाहर न निकल जाने पावे।'

रामदयाल ने चालाकी से, आँख का कोना बारीकी के साथ दबाकर कहा—'हो गया है। यदि कोई कसर होगी, तो मिटा दी जायगी। आप बिलकुल विश्वास रक्खें।'

अलीमर्दान हँसकर बोला—'इनाम पाओगे—ऐसा कि तुमने स्वप्न में भी कल्पना न की होगी।'

रामदयाल प्रणाम करके चलने लगा।

नवाब ने कहा—'पहले हम रामनगर नही आयँगे। जब तक हम न आ जायँ मुक़ाबला करते रहना।'

अलीमर्दान ने अपने सब सरदारों को इकट्ठा करके संपूर्ण सेना को जल्दी-से-जल्दी तैयार किया। भांडेर में थोड़ी-सी सेना छोड़कर बाकी

सेना लेकर वह पहर रात गये चल पड़ा। सालौन भर्रोली में, जो भाण्डेर के क़रीब ४-५ मील पर है, सेना को थोड़ा-सा विश्राम करने के लिये रोक लिया। प्रातःकाल होने के पहले बिराटा पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया गया था।

[७५]

जिस रात अलीमर्दान की सेना ने सालौन भर्रोली में डेरा डाला, उस रात बिराटा के राजा ने अपने भाई-बन्दों को इकट्ठा करके लड़ाई की तैयारी की। बाहर निकलकर नवाब की सेना से सफलता-पूर्वक लड़ना बिराटा की सेना के लिये बहुत कठिन था, परन्तु उसे अपने जंगलों, पहाडों और 'माई बेतवा की धार का बड़ा भरोसा था और फिर यह कोई पहली ही चढाई नही थी।

मुख्य-मुख्य लोगो की बैठक हुई। सबको विश्वास था कि देवीसिंह समय पर सहायता देगे। सब जानते थे कि देवीसिंह पालर की ओर से आ रहे हैं, परन्तु सबकी शंका थी कि यदि नवाब की सेना बीच में आ पड़ी, तो राजा की सेना का इस ओर आना बहुत कठिन हो जायगा और यदि नवाब ने एक दस्ता बिराटा को नष्ट करने के लिये भेज दिया और उसी समय रामनगर से आक्रमण हो गया, तो भयंकर समस्या उपस्थित हो जायगी।

इन सब बातों पर विचार हुआ। अधिकांश लोगो में लड़ाई का उत्साह था। सबदलसिंह संयत भाषा में बोल रहा था, परन्तु दृढ़ता-पूर्ण निश्चय से भरा हुआ था।

अन्त में कुमुद के बिराटा में बने रहने के विषय में प्रश्न उपस्थित हुआ। अधिकांश लोगो की धारणा हुई कि कुमुद को किसी दूसरे स्थान पर भेज देना चाहिये। सबदलसिंह अपने निश्चय से न डिगा। उसने कहा—'मै फिर यही कहूँगा कि उनके यहां बने रहने में ही हम लोगों की कुशल है। उन्हे यहाँ से हटाओ, तो मूर्ति को हटाओ, मन्दिर को हटाओ।'

अन्त में निश्चय हुआ, जैसा ऐसे अवसरों पर निश्चय हुआ करता है, अभी कुमुद यही बनी रहे, परन्तु कुअवसर आते ही तुरन्त उस पार किसी सुरक्षित स्थान में पहुंचा दी जायें।

कुञ्जरसिंह वही था—सभा में नहीं, सभा से दूर मन्दिर में। परन्तु उसका बिराटा में होना सबदलसिंह को मालूम हो गया था और लोगों ने इच्छा प्रकट की कि कुञ्जरसिंह को हटा दिया जाय।

नरपति बोला—'परन्तु वह कहते हैं कि हम दुर्गा की रक्षा करते-करते अपना प्राण देंगे, हमें किसी के राजपाट से कुछ सरोकार नही। उन्होंने शपथ-पूर्वक कहा है कि हम देवीसिंह के साथ नही लड़ेंगे।'

सबदल ने कहा—'यह तो ठीक है, परन्त जब देवीसिंह को मालूम होगा कि कुञ्जरसिंह हमारे यहाँ आश्रय पाये हुये हैं, तब हमारी बात पर से उनका विश्वास उठ जायगा और वह अपना हाथ हमसे खीच लेंगे।'

नरपति बोला—'तब जैसा आप चाहे, करे; परन्तु वह अपनी शरण में हैं और यह स्मरण रखना चाहिये कि राजकुमार हैं। किसी के भी सब दिन एक-से नही रहते। उन्होने शपथ ली है कि हमें किसी के राजपाट से कोई सरोकार नही।'

सबदल ने अपनी सम्मति बदलते हुये कहा—'वह हमारे और देवीसिंह राजा, दोनों के समान शत्रु से लड़ने में सहायक होगे। सुना है, तोप अच्छी चलाते हैं। मन्दिर में बना रहने देंगे। वहाँ से वह तोप चलावेंगे। कोई हर्ज नही।'

लोगो में इस बात पर बहस हुई कि कहीं नवाब से मिल न जाये। नरपति बोला—'यह असम्भव है। मै उन्हे बहुत दिन से जानता हू। वह पालर में नवाब की सेना से लडे थे। बडे बिकट योद्धा हैं।'

'परन्तु वह।' सबदल ने कहा—'नवाब के साथ मिलकर देवीसिंह के खिलाफ भी लड़ चुके हैं।' सबदल के मन में फिर सन्देह जाग्रत हुआ।

नरपति सोच में पड़ गया। वह सिंहगढ की सब बातें न जानता था। कुछ क्षण बाद बोला—'कुमुद देवी विश्वास दिलाती हैं कि कुञ्जरसिंह कभी दगा न करेंगे। छल उन्हे छू नहीं गया है। वह तोप चलाने का काम बहुत अच्छा जानते हैं।'

अन्त में यह तय हुआ कि कुञ्जरसिंह को गढ से न हटाया जाय, परन्तु कोई विशेष महत्त्व का कार्य उन्हे न दिया जाय।

[७६]

अलीमर्दान की सेना ने बिराटा को और दलीपनगर की सेना ने रामनगर को अपना लक्ष्य बना या। लोचनसिंह भांडेर पर धावा करना चाहता था, परन्तु देवीसिंह की स्पष्ट आज्ञा थी कि भांडेरपर आक्रमण करके कठिनाइयो को न बढाया जाय। यह प्रपच लोचनसिंह की समझ मे अच्छी तरह न आता था कि भाडेर की सेना हमारे ऊपर तो आक्रमण करे और हम शत्रु के राज्य के बाहर से उसका विरोध करे, परन्तु उसके घर में घुसकर मार न करें। इसका समाधान लोचनसिंह को इस प्रकार मिला कि दिल्ली का बादशाह इस भाँति की लड़ाई को आत्म-रक्षा समझ कर तरह दे देगा, परन्तु शाही सूबे में घुसकर मार-काट करने को चुनौती का रूप दे डालेगा। इस कल्पना को वह आत्म-प्रवंचना कहता था, परन्तु राजा की आज्ञा होने के कारण वह उसका प्रतिकार न कर सकता था। निदान उसे भी अपना ध्यान बिराटा-रामनगर की ही ओर दौड़ाना पड़ा।

उधर अलीमर्दान ने सालौन भारोंली से शीघ्र कूच कर दिया। तोपें वह बहुत कम साथ ला सका था। बिराटा में प्रवेश करने की उसने पूरी चेष्टा की, परन्तु मुसावली के पास दलीपनगर के कई दस्तो के साथ मुठभेड़ हो गई। सन्धि के पूर्व पत्र-व्यवहार की किसी पक्ष को चिन्ता न रही। इस मुठभेड़ में दोनो दलो को अनचाहे, स्थानो पर मोर्चाबन्दी करनी पड़ी। अलीमर्दान की सेना धनुष के आकार मे नदी किनारे-किनारे रामनगर के नीचे तक भरको में फैल गई। दलीपनगर की सेना रामनगर और बिराटा को हस्तगत करने के प्रयत्न में इस मोर्चेबन्दी का प्रतिकार करने में प्रथम से ही विवश हुई। न तो अलीमर्दान रामनगर की टुकड़ी से मिल पाता था और न दलीपनगर की सेना बिराटा में पहुँच पाती थी। रामनगर के गढ़ मे बिराटा और देवीसिंह के मोर्चों पर गोला-बारी की जा रही थी, परन्तु इतनी शिथिलता और अनजानपने के साथ कि वह बहुत कम हानि पहुँचा रही थी। उधर बिराटा की सेना को अपनी

भौगोलिक स्थिति के कारण अधिक सुभीता था, परन्तु अलीमर्दान की रोकथाम के सिवा वहाँ के भी गोलंदाज और अधिक कुछ नही कर पा रहे थे। परन्तु दलीपनगर की तोपे रामनगर की गढी को ढीला कर देने में कोई कसर नही लगा रही थी।

जब कभी एक दल दूसरे पर खुल्लमखुल्ला टूटकर इस या उस गढ को हथियाने की कोशिश करता था, तभी भीषण मार-काट हो पड़ती थी और आक्रमण करने वाले दल को पीछे हटना पड़ता था।

इस तरह लड़ते-लड़ते कई दिन हो गये। देवीसिंह को चिन्ता हुई। मंत्रणा के लिए एक दिन राजा, जनार्दन, लोचनसिंह और कुछ और सरदार बैठे।

जनार्दन ने कहा—'यदि अलीमर्दान के पास और कुमुद आ गई या बादशाह ने हम लोगो को बागी समझ कर दिल्ली से कोई बडा दस्ता भेज दिया, तो बड़ी कठिनाई होगी। युद्ध खिच गया है, कौन जाने क्या होगा।'

लोचनसिंह बोला—'होगा क्या, आप अपने घर में बैठ कर जप-तप करना, हम अपनी निबट लेगे।'

'इन बातो से काम न चलेगा, लोचनसिंह' राजा ने कहा—'इस समय हम यह निश्चय कर रहे हैं कि शीघ्र क्या करना चाहिये।'

लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'मेरी समझ में तो यह आता है कि इधर-उधर की हाथापाई छोड कर भाडेर पर जोर का हल्ला बोल दिया जाय, तो अलीमर्दान को लेने के देने पड जायेंगे।'

'यह तो नही हो सकता।' जनार्दन ने कहा।

'राजनीति इस समय ऐसा करने से रोकती।' देवीसिंह बोला।

'राजनीति अर्थात् शर्मा जी महाराज जब जैसा हम लोगो को बतलावे।' लोचनसिंह ने कहा।

राजा देवीसिंह ने नियन्त्रण करने के ढङ्ग पर कहा—'नही, मैं इसे ठीक समझता हूँ, चामुडराय। भाडेर हमारे दृष्टिकोण से इस समय परे है।'

'तब या तो इसी तरह युद्ध को लस्टम-पस्टम चलने दीजिये या घर लौट चलिये।' लोचनसिंह बोला।

लोचनसिंह की इस गम्भीर सम्मति पर कुछ क्षण तक किसी ने कुछ न कहा।

लोचनसिंह तुरन्त बोला—'मुझे महाराज जो आज्ञा दें उसके लिये तैयार हूं, परन्तु केवल राजनीति-विशारदो से लड़ाई के दांव-पेंच सीखने का उत्साह मेरे भीतर नही है। उस सेना का भार, जिसका संचालन शर्माजी कर रहे हैं किसी और को दीजिये, तब—'

राजा ने कहा—'तुम्हे आपे से बाहर हो जाने की वहुत आदत पड़ गई है।'

'अब बोलूं, तो जीभ काट लीजियेगा। कहिये, तो यहां से अपने डेरे पर चला जाऊँ।' लोचनसिंह ने विना क्रोध के कहा।

कुछ देर लिये सन्नाटा छा गया। ऐमा जान पडा, मानो लोचनसिंह के अलक्ष्य आतंक को आस-पास के वायु-मण्डल ने भी सीख लिया हो।

राजा देवीसिंह ने स्नेह और दृढता के ढङ्ग से कहा—'चामुंडराय, कल तुम्हारी शूरता और विलक्षण स्फूर्ति की फिर परीक्षा है।'

लोचनसिंह बोला—'क्या आज्ञा है ?'

'कल रामनगर की गढी में हम लोग प्रवेश कर लें।' राजा ने कहा। शब्दो की झंकार सब लोगों के कानो मे समा गई।

लोचनसिंह की आंखो से चिनगारी-सी छूटी, बोला—'आज्ञा का पालन होगा, परन्तु दो शर्तें हैं।'

राजा ने कहा—'तुमने चामुडराय, कभी आज तक वीरता-प्रदर्शन में शर्त नही लगाई। आज नई बात कैसी ? परन्तु खैर, मैं वचन देता हूं, रामनगर की गढ़ी और आस-पास का इलाका तुम्हारा होगा।'

लोचनसिंह हँसा, ऐसा कि पहले शायद ही कभी इस तरह हँसते देखा गया हो। फिर गम्भीर होकर अवहेलना के साथ बोला—'रामनगर की गढ़ी और मेरे पास जो कुछ है, वह सब मैं उसे दे दूँगा, जो अलीमर्दान की फौज को चीरकर बिराटा में कल पहुंच जाय। महाराज मेरी इस भाति की शर्त नही है।'

'फिर क्या है ?' जनार्दन ने सकपकाकर और खुशामद की दृष्टि से पूछा।

'पहली तो यह' लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'कि सैन्य सचालन का काम आपके हाथ में न रहे और दूसरी यह कि मै यदि मारा जाऊँ, तो मेरी लाश की मिट्टी बिगड़ने न पावे, उसकी खोज करके शास्त्र के अनुसार दाह किया जाय। नदी में न फेका जाय और न किसी गड्ढे में डाला जाय।'

'स्वीकृत है।' राजा ने प्रसन्न होकर कहा—'जनार्दन मेरे साथ रहेगे। मैं अब इनके दस्ते का संचालन करूँगा। परन्तु जागीर देने की मेरी शर्त भी मान्य रहेगी।'

लोचनसिंह उत्तेजित होकर बोला—'तब मैने जो कुछ कहा है, वह भी मान्य रहेगा, क्योकि रामनगर के विजय करने के बाद यो भी मैं ही उसका स्वामी होऊँगा। केवल राजा न होने के कारण ही उसे आपके हाथो अर्पण करके फिर ले लेना कोई [illegible] महत्व की बात न होगी।

राजा ने कुछ नही कहा। बात उड़ाने के लिये केवल हँस दिया।

जनार्दन के जी में कुछ खटक गया था। परन्तु वह भी बरबस मुस्कराने लगा। उस मुस्कराहट ने लोचनसिंह को किंचित् भी कुंठित नही किया। जनार्दन अपनी दुर्दशा छिपाने के लिये छटपटाने लगा।

उपयुक्त अवसर पाकर बोला—'मैं इनकी लाश को तलाश करके शास्त्रोक्त अन्त्येष्टि क्रिया करने का प्रण करता हू। इन्हे वास्तव में और कुछ चाहिये भी नही।'

रामनगर पर करारा धावा करने की बात तय हुई।

[७७]

विराटा की रक्षा दृढता के साथ हो रही थी। दांगियो ने अपने स्थान को बचाने के लिये प्राणो की होड़ लगा रक्खी थी। गढी के भीतर आदमी बहुत अधिक न थे। तोपें भी थोडी ही थी। तोपो के चलाने वाले भी चतुर न थे। परन्तु उन लोगो में मर मिटने की लगन थी और विश्वास था कि देवी उनकी सहायता पर हैं।

नदी के पश्चिम तटवर्ती भरको से अलीमर्दान की सेना विराटा की गढी पर आक्रमण करती थी, परन्तु वेतवा की धार उसे विफल-मनोरथ कर देती थी। असल में देवीसिंह की सेना की चपेट के कारण अलीमर्दान को विराटा के पीस डालने का अवकाश न मिल पाता था, नही तो विराटा के थोड़े से वहादुर दाँगी वहुत देर तक नही टिक सकते थे।

बिराटा-युद्ध में कुञ्जरसिंह को अव तक कोई स्थान न मिल सका था। सबदलसिंह की यह धारणा थी कि कुन्जरसिंह को हरावल में या कही पर भी कोई मुख्य पद देने से देवीसिंह का विमुख हो जाना सम्भव है। ऐसी दशा में उसे मन्दिर की रक्षा के काम पर नियुक्त कर दिया। कुन्जरसिंह को बिराटा से निकल भागना असम्भव था। सवदलसिंह को विश्वास था कि उसे वहा केवल वने रहने देने में देवीसिंह अप्रसन्न न होगे।

कुँजरसिंह हथियार लिये हुये मन्दिर में बना रहता था। जब कभी पड़े-पडे मन ऊब उठता था, तब मन्दिर की प्राचीर के पास से बेतवा की धारा कोटकटकी लगाकर देखने लगता था। कुमुद, गोमती और नरपति रात-दिन मन्दिर के उत्तर वाले खंड के निचले स्थान में नीचे की एक खोह में बने रहते थे। प्रात.काल दुर्गा-पूजन के निमित्त थोड़ी देर के लिये मन्दिर में आते थे। कुमुद से बातचीत करने का और कोई अवसर न मिलता था अथवा कुजर बात करने के लिये कोई उपयुक्त अवसर न ढूँढ़ पाता था।

एक दिन कुञ्जर ने रामदयाल को मन्दिर के पास अचानक देखा। चकित हो गया। खासा कड़ा पहरा होते हुये भी कैसे प्रवेश पा गया?

उसकी पहली इच्छा यही हुई कि तलवार के एक वार से समाप्त कर दें, परन्तु रामदयाल मुस्कराता हुआ उसी की ओर बढा। कुञ्जरसिंह अपनी इच्छा पूरी करने में हिचक गया।

रामदयाल ने कहा—'राजा मुझे शायद अपना शत्रु समझते हैं। सम्भव है, राजा की कल्पना सही हो।'

कुञ्जरसिंह इस वेधडक मन्तव्य पर क्षुब्ध हो गया और किंकर्तव्य-विमूढ़।

रामदयाल ने और पास आकर कहा—'परन्तु आप और मैं समान भाव से इस गढ़ी को रक्षा के आकाक्षी हैं। मै अब महारानी की सेवा में नही हूँ। राजा देवीसिह का सन्देश लाया हूं।'

'रानी को किस दलदल में फँसाकर चले आये हो?' कुञ्जर ने कठोरता के साथ प्रश्न किया।

'मैने किसी को दलदल में नही फँसाया है।' रामदयाल ने ठडक के साथ उत्तर दिया—मैं खुद उनके पीछे बहुत बरबाद हुआ हू, बहुत मारा-मारा फिरा हूँ। उनका मुझ पर भी विश्वास नही रहा, तब निकाल दिया। मै राजा देवीसिंह की शरण में गया। उन्होने क्षमा-प्रदान करके अपना लिया है और यहा भेजा है। राजा देवीसिंह के नाते से आप भले ही मुझे अपना वैरी समझें, परन्तु मै आपके वैर के योग्य नही हू।'

कुञ्जरसिंह ने एक क्षण सोचा। रामदयाल की बात पर उसे ज़रा भी विश्वास न हुआ, परन्तु उसे मार डालने की इच्छा में अनेक विघ्न दिखलाई दिये।

पूछा—'क्या सन्देशा लाये हो?'

उत्तर मिला—'यदि क्षमा किया जाऊँ, तो मै यह कहना चाहता हूं कि मेरा सन्देशा वहाँ के राजा सबदलसिह के लिये ही है।'

कुञ्जरसिंह का जी जल गया। बोला—'तब चलो उनके पास। मैं साथ चलता हूँ।'

'किसी को भेजकर उन्हें यही बुलवा लीजिये। सबके सामने जाने से सन्देश के रहस्य के खुलकर फैल जाने का भय है।' रामदयाल ने कहा।

पास ही एक तोप लगी हुई थी। गोलदाज़ और कई सैनिक वहाँ नियुक्त थे। जरूरी काम के नाम से कुजर ने एक सैनिक को बुलाकर कहा—'यदि मनुष्य शत्रु या मित्र पक्ष का है। अभी निश्चय नही हो सकता कि किस श्रेणी में इसे समझा जाय। राजा से कुछ बात करना चाहता है। उन्हे तुरन्त यहा भेज दो। मै इस पर तब तक पहरा लगाये हूं।'

रामदयाल गमनोद्यत सिपाही से बोला—'राजा से कह देना कि मैं यही पर वध कर दिया जाऊँ, यदि शत्रु-पक्ष का निकलूँ या यदि मेरी बात उपयोगी सिद्ध न हो।'

थोड़ी देर में वह सैनिक सबदलसिंह को लेकर आ गया। राजा ने उतावली में पूछा—'क्या बात है ?'

वह बोला—'क्या मैं राजा कुँजरसिंह के सामने कह सकता हूं ? राजा देवीसिंह का सन्देशा है।'

कुञ्जरसिंह ने झुँझलाकर बीच में ही कहा—'मै अब विराटा का शुभाकांक्षी हू, तब जो विराटा के मित्र हैं, वे मेरे मित्र हैं और जो उसके शत्र हैं, वे मेरे शत्रु।'

सबदलसिंह नोला—'तुम अपना संवाद सुनाओ।'

रामदयाल ने कहा—'कल बड़े ज़ोर का आक्रमण आपकी गढ़ी पर होगा—अलीमर्दान की सेना का। उसका ध्यान बटाने के लिये हमारे महाराज रामनगर पर बड़े ज़ोर का हल्ला बोलेंगे। आप तोपों की बाढ़ का पक्का बन्दोवस्त रक्खें।'

'और ?' सबदलसिंह ने पूछा।

'और।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'और संवाद उन्होंने अपनी भविष्य रानी के लिये भेजा है।'

सबदलसिंह ने गोमती के साथ होने वाले देवीसिंह के सम्बन्ध की चर्चा सुन रक्खी था। फिर भी प्रश्न-सूचक दृष्टि से वह रामदयाल की ओर ओर फिर तुरन्त कुञ्जरसिंह की ओर देखने लगा।

रामदयाल ने असन्दिग्ध भाव से कहा—'यदि आज्ञा हो, तो उनसे ही कह दूँ और विश्वास न हो, तो आपको बतला दूँ।'

सबदलसिंह बोला—'नहीं, वह संवाद मेरे कानों के योग्य नहीं हो सकता। तुम अकेले में कह सकते हो। परन्तु दो दिन तक तुम इस स्थान को छोड़ न सकोगे।'

रामदयाल मुस्कराकर बोला—'मेरे लिये महाराज की आज्ञा भी यही है। अगले दो दिन बड़ी कठिन अवस्था के होंगे। मेरा उनके पास रहना ज़रूरी है।'

अकेले में ले जाकर सबदलसिंह से कुञ्जर ने कहा—'यह आदमी बड़ा नीच और भयंकर है। अपनी गढ़ी में इसका ऐसे समय आना मुझे बड़े अशुभ का द्योतक मालूम होता है।'

सबदलसिंह बोला—'आपको राजा देवीसिंह के किसी मनुष्य की कम-से-कम वर्तमान समय में बुराई नहीं करनी चाहिये। आप मेरे अतिथि हैं और मान्य हैं, परन्तु यह बात आपको ध्यान में रखनी पड़ेगी कि राजा देवीसिंह हम लोगों के परम सहायक हैं। मुझे इस बात की चिन्ता है कि मिलने पर कहीं आपके लिये मुझे उत्तर न देना पड़े। यदि मान लिया जाय कि यह मनुष्य देवीसिंह का नहीं है, तो मैंने इसे कुछ समय तक रुके रहने के लिये कह ही दिया है। आप भी सावधानी के साथ इस पर अपनी दृष्टि रक्खें।'

[७८]

बिराटा मे मन्दिर की बगल में उत्तर-पश्चिम की ओर एक बड़ी टोर के नीचे एक खोह भी। उसी जगह कुमुद, गोमती और नरपति इन दिनों अपना अधिकाँश समय बिताते थे। रामदयाल वही पहुँचा। गोमती रामदयाल को देखकर प्रसन्न हुई। दिन-रात सिवा कुमुद और नरपति के साथ के और कोई तीसरा व्यक्ति उपलब्ध न था। दिन-रात सिवा गोला-बारी, मार-काट, हाय-हाय कुमुद तथा नरपति की वही बँधी हुई बातो के और कुछ सुनने को कई दिन से नही मिला था।

देखते ही रामदयाल के पास आई। बोली—'कब आये? कैसे आये? क्या समाचार लाये हो?'

रामदयाल ने कहा—'अभी आ रहा हूँ, बड़ी कठिनाइयों को पार करके एक बार तो ऐसा जान पड़ा कि अलीमर्दान की तोप मेरी छोटी-सी नाव को चकनाचूर किये देती है। अँधेरे में एक किनारे से नाव लेकर चला था, परन्तु धीरे धीरे सूर्योदय तक यहां आ पाया हूँ।'

गोमती की आखो में कृतज्ञता झलक आई। कहा—'क्यो प्राणो को इतने संकट में डाला?'

रामदयाल गोमती को जरा दूर ले जाकर एक चट्टान के पास बात-चीत करने लगा।

गोमती बोली—'तुम महाराज के बड़े आज्ञाकारी सैनिक हो।'

'नही हू।' उसने कहा—मैं आपका आज्ञाकारी सैनिक हूँ।'

'क्या समाचार है?'

'कहा है, अभी मिलना न होगा। बिराटा पहुंचने पर इतना समय न मिल सकेगा कि बातचीत भी हो सके। जब लड़ाई समाप्त हो जायगी, दलीपनगर का राज्य निष्कटक हो जायगा, महाराज का कही कोई बैरी न रहेगा, तब आप रथ में या किसी और सवारी पर दलीपनगर चली आवें।'

'क्या महाराज ने यह सब कहा है ?'

'मैं झूठ बोलने के लिये इतनी आफतों में क्यो अपनी जान डालता ?'

गोमती ने दांत पीसे। कुछ क्षण बाद बोली—'इतनी बात कहने के लिये उन्होंने तुम्हे यहाँ तक पहुँचाया ? क्या वह रामनगर में आ गये हैं ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'अभी रामनगर अधिकार में नही आया है।'

रुद्ध स्वर में गोमती ने पूछा—'क्या मुझे चिढाने और तुम्हारा प्राण लेने के लिये ही तुम्हे यहा भेजा है ?'

रामदयाल ने नीची निगाह किये हुये कहा—'एक रहस्य की बात है। इस गढी मे यदि किसी को मालूम हो जायगा, तो शायद मैं बकरे की तरह काट डाला जाऊँ।'

गोमती बोली—'तुम कहो रामदयाल। जो जी में आवे, सो कहो। मैं ठाकुर की बेटी हूं। कोई उस रहस्य को मुझसे न पा सकेगा।'

'मुझे महाराज ने निकाल दिया है। राजाओ का कभी किसी को विश्वास न करना चाहिये।'

'तुम्हे निकाल दिया है ! क्यो ?'

'क्योंकि मैंने हठ-पूर्वक कहा था कि बिराटा पर सकटों की बौछार हो रही है। भगवान् न करें, महारानी का कोई बाल बांका हो जाय, इसलिये मुझे अनुमति दीजिये कि बिराटा से दलीपनगर लिवा ले जाऊँ। बोले, मैं राजा हू, वह मेरे योग्य नही है, किसी राजा की लडकी के साथ विवाह करूँगा।'

गोमती सिहर उठी।

बोली—'फिर तुम यहां किसलिये आये ?'

रामदयाल जरा सहमा—परन्तु उसकी प्रकृति ढिठाई ने उक्त भाव तुरन्त दबा दिया। कहने लगा—'मै जिस लिये गोलों और आग की लपटो के इस तूफ़ान में होता हुआ यहाँ तक आया हू, उसका कारण स्पष्ट है। महाराज ने निकाल दिया, मेरा अब और कोई कही भी संसार में नही

है। 'आगे नाथ, न पीछे पगहा।' अब तो मैंने निश्चय किया है कि अपनी शेष जीवन धूनी रमाकर विताऊँ।'

गोमती ने दूसरी ओर देखते हुये कहा—'महाराज ने यह भी कहा था कि जब संपूर्ण राज्य निष्कण्टक हो जाय, तव मैं किसी का रथ मांगकर दलीपनगर में रहने के लिये दो हाथ ठौर की भीख मांगने जाऊँ।'

वह बोला—'इस तरह की बात तो उन्होंने तब कही थी, जब मैंने बहुत हठ पकड़ा था। उसी हठ में दुर्भाग्य-वश मैं आपे से बाहर हो गया। बहुत बक-झक की, तब महाराज ने मुझे अपने पास से हटाकर ही दम लिया। मैं उनके हुकुम से यहां नहीं आया हूं। अपनी ही प्रेरणा से उपस्थित हुआ हूं। यहां मुझ पर संदेह किया गया है। दो दिन तक एक तरह से यहाँ नज़र-कैद हूं। इस बीच में इस गढ़ीवालों को आशा है कि महाराज ससैन्य आ जायँगे और तब शायद या तो मुझे प्राण-दंड दिया जायगा, या कम-से-कम सदा के लिये देश-निकाला।'

गोमती तमककर बोली—'ऐसा कभी न होगा रामदयाल। जब तक मेरी देह में प्राण है, तब तक तुम्हे हानि न पहुंच सकेगी। तुम हम लोगों के साथ इसी खोह में रहो। काफ़ी बड़ी है। बाहर कभी-कभी गोला-गोली पड़ जाती है।'

'परन्तु एक बात का ध्यान रहे।' रामदयाल ने आग्रह के साथ कहा—'किसी तरह भी किसी को यह बात न मालूम होने पावे कि महाराज ने मुझे निकाल दिया है। यहाँ मुझे लोग राजा का सेवक समझते हैं।'

[७९]

रात का समय था। काली रात। आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। पवन ने पेड़ों को चूमकर सुला-सा दिया था। बेतवा अचेत पत्थरो से नितन्तर टकराकर अनन्त कलकल शब्द रच-रचकर रह-रह जाती थी।

कुञ्जरसिंह मन्दिर की दीवार के पास एक टोर की आड में, जहा से नदी की धार रामनगर की ओर से आई है, कन्धे से बन्दूक लगाये अकेला बैठा था। उत्साह था, हृदय में अपूर्व बल प्रतीत होता था—मन्दिर की रक्षा के लिये, मन्दिर की विभूति के लिये। दिन को गोलिया पास से निकल जाती थी, गोले धम से आकर धूल और ककडो को बखेर देते थे। एक छोटी-सी जगह उस युद्ध में सबदलसिंह ने दे रक्खी थी, उसी को उस राजकुमार ने बहुत समझा। मुस्तैदी से अपने स्थान पर डटा रहता था। केवल प्रातःकाल मन्दिर में दर्शन के लिये जाता था और एक-आध वार दिन में भी नरपति की कुशल-क्षेम पूछने को गुफा पर पहुँच जाता था। वह टोर, जहां एक कम्बल और लोटा लेकर कुञ्जर सशस्त्र डटा रहता था, उसके लिये तीर्थ-स्थान-सी हो उठी थी।

परन्तु उस रात मन बेचैन था। रामदयाल पिशाच है। उसकी पैशाचिकता को सबदलसिंह नही समझता गोमती उसे बिलकुल नही पहचानती। वह क्यो आया है? अवश्य अलीमर्दान का भेदी है। निस्सदेह कुछ उत्पात खडा करेगा, कायद बिराटा को ध्वस्त करने की चिता में हो। कुमुद इस युद्ध का लक्ष्य है। देवीसिंह बचाने के लिये आ रहा है। देवीसिंह ने जिसने मुफ्त में दलीपनगर के राज्य को खसोट लिया है, मेरे हक को पैरो तले कुचल डाला है! यदि इस समय में दलीपनगर का राजा होता, तो देवीसिंह की अपेक्षा कही अधिक प्रबलता और चातुरता के साथ युद्ध करता। राजा नायकसिंह के वीर्य से उत्पन्न एक हाथ भूमि के लिये जङ्गलो में मारा-मारा भटके और देवीसिंह दलीपनगर की सेनाओं का सञ्चालन करे! यथेष्ट हथियार चलाने के लिये एक सड़े से सरदार सबदलसिंह का मुँह ताकना पड़े!

रामदयाल क्यों आया ? वह रामदयाल जो राजा नायकसिंह की वासनाओ की तृप्ति के लिये खुल्लमखुल्ला साधन जुटाया करता था, वही जो देवीसिंह का शत्रु है और साथ ही विराटा के सब लोगो का—और अवश्य ही बिराटा निवासिनी कुमुद का भी।

कही कुमुद की गुफा के पास कोई जाल तो नही रचा जा रहा है ? रामदयाल वही ठहरा है। क्यो वहां ठहरने दिया गया ? वह यहां आया ही क्यों ? इस स्थान को रामदयाल से किसी प्रकार निस्तार मिले ?

वह कुञ्जर की शक्ति के बाहर की बात थी। 'परन्तु' उसने सोचा—'मैं इसके कुचक्रो का निवारण कर सकता हूँ। करूँगा।' फिर अपनी तोपों की ओर ध्यान गया। जिस प्रयोजन से वे वहां स्थित थी और वह स्वयं उस स्थान पर जिस धारणा को लेकर गड़ा-सा था, उस ओर भी ध्यान गया।

उस समय प्रतिकूल पक्ष की तोपे बिराटा की दिशा में विरक्त-सी थी।

कुञ्जरसिंह दबे पांव गुफा की ओर गया।

गुफा में निविड़ अन्धकार था। पत्थर से सटकर कुञ्जर ने कान लगाया। उस तमोराशि में केवल कुछ सांसो का शब्द सुनाई पड़ता था।

निद्रा ने षड्यन्त्रों पर भी अपना अधिकार कर लिया था।

इसी गुफा में वह देवी थी। कल्याण और रूप, स्निग्धता और लावण्य, वरदान और प्रेरणा की वह निधि उस कठोर गुफा के भीतर।

कुञ्जर और अधिक नही ठहरा। उसका कर्तव्य इस निधि की रक्षा के साथ सम्बन्ध था। लौट आया। मन में कहा—'क्या देवी को किसी का कोई स्वप्न भी कभी आता होगा ?'

[८०]

दलीपनगर और भाडेर की सेनायें एक दूसरे पर बिना बडा जन-सहार किये हुये तोपे और बन्दूके दागती रहती थी। इक्के-दुक्के सैनिक लड़ भिड़ जाते थे, कभी कभी छोटी छोटी टोलियो की मुठभेड भी हो जाती थी। परन्तु सौ-पचास हाथ भूमि इधर या उधर, इससे अधिक जय या पराजय किसी पक्ष को भी प्राप्त न हो पाती थी।

इधर-उधर के बड़े-बडे नाले दोनो दलो की स्वाभाविक सीमा से बन गये थे, जब तब भरको में मार-काट हो जाती थी। बीच के मैदानो से गोले और गोलियाँ भनभनाती निकल जाती थी।

इस प्रकार के युद्ध से लोचनसिंह का जी ऊबने लगा। खुले मैदान में युद्ध ठानने का उसने कई बार मन्तव्य प्रकट किया, परन्तु राजा देवीसिंह की दूरदर्शिता के प्रतिवाद ने लोचनसिंह की न चलने दी।

आज अकस्मात् राजा, जनार्दन शर्मा, लोचनसिंह इत्यादि मुसावली के निकटवर्ती नाले में इकट्ठे हो गये।

आगे क्या करना चाहिये इस पर सलाह होने लगी।

लोचनसिंह ने कहा—'यही गडे-गडे मरना तो अब बिलकुल अच्छा नही लगता। हथियार बिना चलाये ही कदाचित् किसी दिन टें हो जाना पड़े।'

'तब क्या किया जाय ?' जनार्दन ने धीरे से पूछा।

'अलीमर्दान की सेना पर तीर की तरह टूट पडना चाहिये।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया।

'और तीर की तरह छूट निकलकर कमान को खाली कर देना चाहिये।' राजा देवीसिंह ने व्यङ्ग किया।

'जैसी मर्जी हो।' लोचनसिंह ने कुढ़कर कहा—'लड़ाई के बहाने भड़भड़ करते रहिये; जब अलीमर्दान की सेना दुगुनी-चौगुनी हो जाय, तब घर चले चलिये।'

देवीसिंह का थका हुआ चेहरा लाल हो गया। सोचने लगा।

एक पल बाद बोला—'आज रात तक रामनगर पर अपनी झण्डा फहरा सकोगे ?'

लोचनसिंह उत्तर देने में ज़रा-सा हिचका।

देवीसिंह—'मौत के बदले रामनगर मिलेगा, लोचनसिंह ?'

'मैं तैयार हूँ।' लोचनसिंह ने दृढता के साथ कहा।

जनार्दन ज़रा कसे स्वर में बोला—'और आपके सरदार ?'

इस थपेड़ की परवा किये बिना ही लोचनसिंह ने कहा—'मेरे साथी सरदार कुछ करने या मरने के लिये बहुत उतावले हो रहे हैं परन्तु—'

जनार्दन—'परन्तु आज ही आपके मुँह से सुना।'

जनार्दन पर आँखे तानकर लोचनसिंह बोला—'आप रामनगर विजय करिये, महाराज से रामनगर की जागीर आपको मैं बरबस दिलवा दूँगा।'

जनार्दन भी उत्तेजित होकर कुछ कहना ही चाहता था कि देवीसिंह ने कहा—'मेरा एक मन्तव्य है।'

जनार्दन—'महाराज।'

लोचनसिंह—'क्या मर्ज़ी है ?'

देवीसिंह—'रामनगर पर शीघ्र अधिकार कर लेने के लिये बढ़ना यमराज को न्योतने के बराबर है, परन्तु अलीमर्दान पर धावा बोलने की अपेक्षा यह भी कही ज्यादा अच्छा है। रामनगर का गढ़ और तोपें हाथ में कर लेने के उपरांत अलीमर्दान से खुली मुठभेड़ करना सरल हो जायगा।'

एक क्षण सोचकर राजा ने कहा—'लोचनसिंह, तुम्हे अन्त्येष्टि क्रिया की पवित्र आवश्यकता में बहुत विश्वास है ?'

लोचनसिंह नहीं समझा। देवीसिंह बोला—'मरने जाओगे, तो कफन भी साथ लेते जाओगे या नही ?'

लोचनसिंह मुस्कराया। उसके झुर्रीदार चेहरे पर सौन्दर्य की रेखाएँ छा गईं। बोला—'महाराज ने बहुत सूझ की बात कही। हम लोग जितने आदमी रामनगर की ओर आज बढ़ेंगे, सब अपने-अपने सिर पर कफन बाधेंगे। वाह! क्या वेश रहेगा! कोई देखे, तो कहेगा कि मौत से लड़ने के लिये यमदूत जा रहे हैं।'

राजा ने कहा—'जो आज रात को रामनगर विजय करेगा, वह उसे जागीर में पायेगा।'

इसके बाद इन लोगों ने अपनी योजना तैयार की।

[८१]

दूसरे दिन सन्ध्या के पूर्व नित्य-जैसी लड़ाई होती रही। लोचनसिंह जितने मनुष्यों को रामनगर पर आक्रमण करने के लिये चाहता था, उतने उसे मिल गये। उनके चेहरे पर उत्साह था या नहीं, यह अँधेरे में नहीं दिखलाई पड रहा था, परन्तु मन के रोकने पर भी कुछ बात कहने के लिये वे उतावले-से जान पड़ते थे—परस्पर कोई करारी दिल्लगी करने के लिये सन्नद्ध-से। बिलकुल पास से देखने वाला जान सकता था कि वे लोचनसिंह के साथ होने पर भी फुसफुसाहट में ठठोली कर रहे थे और मुस्कराते भी थे।

नदी के किनारे-किनारे बिना पहचान जाना असम्भव था। इसलिये अपने भरके की सीध से कभी तैरकर और कभी भूमि पर रामनगर तक चुपचाप जाना लोचनसिंह ने तय किया। रामनगर के नीचे पहुचकर फिर आक्रमण करना था या मौत के मुँह में धँसना।

लोचनसिंह ने नदी में उतरने के लिये कपड़े कसे। पैर डालने नहीं पाया था कि समीप खड़े हुये एक सिपाही ने स्वर दबाकर कहा—'दाऊजू और कपड़े चाहे भीग जायें, परन्तु सिर से बँधा हुआ कफन न भीगने पावें।'

लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'भीगे हुये कफ़न से मुक्ति और भी जल्दी मिलेगी। पर अब फुसफुसाहट मत करो।'

लोचनसिंह पानी में जाने से पहले कुछ सोचने लगा। उसी स्वर में वह सैनिक बोला—'दाऊजू, देखते क्या हो, कूद पड़ो।'

लोचनसिंह ने कहा—'जो कुछ देखना है, वह रामनगर में देखूँगा। यहाँ देखने को रक्खा ही क्या है। नदी का तैरना शूरता का काम नहीं, केवल बल का काम है।'

सिपाही कुछ और कहना चाहता था, परन्तु लोचनसिंह पानी में सरक गया और सिपाही भी पीछे हो गये।

नदी के बहाव के अँधेरी रात को तैरना वीरता का भी काम था और खास तौर से उस समय, जब किनारो पर शत्रु बन्दूकें भरे धाँय-धाँय कर रहे थे।

घोर परिश्रम के पश्चात् रामनगर से कुछ दूरी पर सब-के-सब पहुँच गये। वहा पानी चट्टानो मे होकर आया है। धार तेज़ बहती है। विजय-प्राप्ति के लिये सुरक्षित स्थान में इकट्ठा होना आवश्यक था। परन्तु इस स्थान पर प्रकृति को पराजित करना सहज न था। यह टुकड़ी तितर-बितर होकर, इधर-उधर चट्टानो पर बैठकर दम लेने लगी।

थोड़े समय पश्चात्, किसी पूर्व-निर्णय के अनुसार दलीपनगर की सेना की ओर से रामनगर के ऊपर असाधारण रीति से गोला-बारी शुरू हो गई। लोचनसिंह को अपने निकट एक ऊँची चट्टान दिखलाई दी, जो चढाव खाती हुई रामनगर के किले की दीवार के नीचे तक चली गई थी। परन्तु बीच में तेज धार वाला पानी पडता था और साथी इधर-उधर बिखरे हुए थे।

लोचनसिंह ने आवाज़ दबाकर कहा—'पीछे-पीछे आओ।'

इस बात को किसी ने न सुन पाया।

तब और जोर से बोला—'इस ओर आओ।'

इस पुकार को उसके साथियो ने सुन लिया और पास ही एक चट्टान से अटकी हुई डोगी में चुपचाप पडे हुए किसी व्यक्ति ने भी।

'धाँयें-धाँयें' की आबाजें आगे-पीछे जल्दी-जल्दी हुईं। तेज़ बहती हुइ धार पर गोलियाँ छर्रं हो गईं। लोचनसिंह पानी में कूद पड़ा, परन्तु नाव के पास पहुचने में धार बार-बार विघ्न उपस्थित करने लगी। डोगी के भीतर से बन्दूको के पुन. भरे जाने का शब्द आने लगा। लोचनसिंह को आभास हुआ कि अबकी बार बचना असभव होगा। वह धार के खिलाफ बहुत बल लगाने लगा और धार भी उसे ज़ोर से झटके देने लगी। हाफता हुआ लोचनसिंह जोर से चिल्लाया—'क्या सब मर गये ?'

पास की चट्टान से टकराते हुए पानी को चीरते हुये आकर एक व्यक्ति ने स्पष्ट कहा—'अभी तो सिर का कफ़न गीला भी नही हुआ है ?'

'शावाश ?' लोचनसिंह बोला—'कौन ?'

उत्तर मिला—'वुदेला ।'

इस उत्तर से लोचनसिंह को तृप्ति नही हुई ।

वह सिपाही किसी दृढता में इतराता हुआ-सा, उस धार को पार करके नाव के पास जा पहुँचा । लोचनसिंह ने भी दुगना बल लगा दिया । वह भी नाव के नीचे जा लगा । पीछे से और सिपाहियो के आने की भी आवाज़ मालूम हुई । जो सिपाही पहले आया था, उसने नाव पर चढ़ने की चेष्ठा की ।

नाव के भीतर से किसी ने बन्दूक की नाल से उसे ढकेल दिया । वह नीचे गिर पड़ा और थोडा-सा बह गया । तब तक लोचनसिंह आ धमका । उसके साथ भी वही क्रिया की गई । क्रिया सफल हुई । लोचनसिंह भी नीचे घसक गया । इतने में वह सैनिक आ गया और नाव पर चढ़ गया । लोचनसिंह और उसके अन्य सिपाही भी कुछ ही समय पीछे नाव में जा घुसे । नाव में रामनगर के छः-सात सैनिक थे, परन्तु दो के सिवा और सब सो रहे थे । दूर की तोपो और पास की बन्दूकों से वे थके-थकाये जाग न सके थे परन्तु नवागन्तुको के धँस पड़ने से रस्सों से बँधी हुई नाव डगमगा उठी, इसलिये नाव थर्रा उठे । किसी अज्ञात संकट में अपने को फँसा हुआ समझकर और असाधारण शब्दों से घबराकर भाग उठे । इधर-उधर उछल-उछलकर गिरने लगे । दो सिपाही जो बन्दूके लिये तैयार थे, चला न पाये । लोचनसिह ने उन्हे तलवार से असमर्थ कर दिया । लोचनसिंह और उसके सिपाहियो को नाव में जितनी बन्दूके मिलीं, ले ली और अपने पास की पिस्तोलें पोछ-पांछकर भर ली । बोड़े सुलगा-कर और उन्हे भली भाँति छिपाकर किले की ओर आड़े लेती हुई यह टुकड़ी बढी । ऊपर से तोपे आग उगलकर दलीपनगर की सेना को जवाब देने लगी थी । कभी-कभी आग की चादर-सी तन जाती थी ।

आगे चलकर उस बातूनी सैनिक ने लोचनसिंह से कहा—'अब क्या करोगे दाऊजू ?'

'फाटक पर गोलियो की बाढ़ दागो ।' लोचनसिंह ने आज्ञा के स्वर में उत्तर दिया ।

वह सैनिक बिना किसी झिझक के बोला—'फाटक पर बाढ़ दागने की अपेक्षा उस पर जोर का हल्ला बोलना अच्छा होगा ।'

लोचनसिंह ने कड़वे कण्ठ से कहा—'यह गलत कार्रवाई होगी जो कहता हूँ, सो करो ।'

वह सैनिक बोला—'सो तो यो ही कफन सिर से बाँधकर चले हैं ।'

लोचनसिंह ने कलेजा कोंचनेवाली कोई बात कहनी चाही, परन्तु केवल इतना ही मुँह से निकला—'अच्छा, तो तुम अकेले फाटक पर जाके कुछ चिल्लाओ ।'

वह सैनिक बिना कुछ कहे सुने तुरन्त फाटक की ओर दीवार के किनारे-किनारे बढ़ गया ।

और सैनिको ने कहा—'हमें भी वही जाकर मरने की आज्ञा हो ?'

लोचनसिंह जरा सहमा । मौत की छाती पर सवार सैनिको की इस बात के भीतर किसी उलहने की छाया देखकर वह जरा-सा लज्जित भी हुआ । बोला—'हम सब वही चल रहे हैं ।'

इतने में वह वाचाल सैनिक फाटक के पास पहुँच गया । तोपो की उस धूमधाम में आवाज़ खूब ऊँचा करके वह चिल्लाया—'खोलो, हम आ गये ।'

फाटक पर रामनगर की सेना के योद्धा थे, वे घबराये । घबराकर इधर-उधर बन्दूके दाग हड़बड़ाहट में पड़ गये । उसी समय लोचनसिंह और उसके साथियो ने फाटक के पास आकर ज़ोर का शोर-गुल किया । कुछ बन्दूके भी दागी ।'

भीतर के सिपाही फाटक छोड़कर भीतर की ओर हटे । लोचनसिंह और उसके साथी कमन्द की सीढ़ी लगाकर दीवार पर चढ गये ।

भीतर घमासान होने लगा। बन्दूक-तमचे कड़कने और तलवारे खनकने लगी। रामनगर वालों को अन्धेरे में यह न जान पड़ा कि दूसरी ओर के कितने सैनिक धँस आये हैं। फाटक खुल गया और रामनगर की सेना में भगदड़ मच गई। छोटी रानी लड़ती हुई फाटक से निकल गई।

दलीपनगर की सेना ने ज़ोर के साथ जय-जयकार किया।

रामनगर में बहुत कम लड़ाके भागने से वचे। जो नही भागे थे, उन्होने हथियार डाल दिये। लोचनसिंह की सेना के भी कई आदमी मारे गये और अधिकांश घायल हो गये, परन्तु अपने अदम्य उत्साह और विजय हर्ष में घावो की पीड़ा बहुत कम को जान पड़ी। उक्त वातूनी सिपाही ने लोचनसिंह से कहा—'दाऊजू, फाटक बन्द कर लीजिये, अपनी सेना को जय-जयकार सुनाकर बुलाइये, नही तो यह विजय अकारथ जायगी।'

लोचनसिंह बिना रोष के बोला—'तुम्हारा नाम ?'

उत्तर मिला—'कफनसिंह बुन्देला।'

लोचनसिंह ने कोई प्रत्युत्तर नही दिया। फाटक बन्द करवा कर देवीसिंह का जय-जयकार करता रहा। दलीपनगर की सेना का घेरा रामनगर की बाहर वाली सेना और अलीमर्दान वाले दस्ते ने छोड़ दिया और दोनो टुकड़ियां दूर हट गईं। दलीपनगर की सेना ने रामनगर के गढ पर अधिकार कर लिया। उस अँधेरी रात में यह किसी को न मालूम होने पाया कि देवीसिंह ने कब और कहां से गढ में प्रवेश किया।

देवीसिंह के आ जाने पर गढ की ढूँढ खोज की गई। छोटी रानी तो निकल गई थी, पर बड़ी रानी मिल गईं। उन्हे कैद कर लिया गया।

[८२]

रामनगर के पतन के बाद पतराखन ने राजा देवीसिंह का अधिकार स्वीकृत कर लिया, परन्तु राजा ने उसे रामनगर में ससैन्य रहने का अवसर नहीं दिया। वेतवा के पूर्वीय किनारे पर ही पूर्ववत रहने को कहा, जिसमें आवश्यकता पडने पर उसकी सेना का उपयोग किया जा सके।

वड़ी रानी को अपनी मूर्खता पर बड़ा पछतावा था, परन्तु उनके पछतावे की मात्रा का कोई लिहाज किये बिना ही राजा ने क्षमा दे दी। दृष्टि जरूर उन पर काफी रक्खी। रानी ने इस नजरबन्दा को ही बहुत गनीमत समझा।

विजय की रात्रि के बाद ही जो सवेरे रामनगर में राजा के सरदारो की बैठक हुई, उसमें सभी लोग राजा की इस उदारता पर मन मे रुष्ट थे। छोटी रानी का जिक्र आने पर लोचनसिंह ने कहा—'महाराज यदि अपराधियो को दण्ड न देंगे, तो विजय पर विजय बेकार होती चली जायगी।'

जनार्दन अवसर पाकर मुस्कराया। बोला—'दाऊजू यह प्रश्न सेनापति के लिये नही है, इसे तो राजनीतिज्ञ ही सुलझा सकते हैं।'

लोचनसिंह को किसी बहस का स्मरण हो आया। बराबरी के घाव मारने और खाने वाले सिपाही ने रामनगर विजय के उल्लास में इस बात का बुरा न माना।

जरा-सा मुस्कराकर उसने कहा—'यह चोट! अच्छा, खैर, कभी देखा जायगा।'

फिर राजा से बोला—'रामनगर की जागीर कब और किसे दी जायगी? अब इस प्रश्न पर भी विचार कर लिया जाय।'

जनार्दन तुरन्त बोला—'चामुंडराय लोचनसिंह के सिवा उसे और कौन पायेगा? महाराज ने उसी समय तय कर दिया था। कुछ और निर्णय उसके विषय में नही करना है। मुझे तो चिन्ता छोटी रानी की है। उन्हे तुरन्त कैद करने की आवश्यकता है। उनके स्वतन्त्र रहने से बहुत-से सरदार चल-विचल हो जाते हैं और अलीमर्दान को उनकी ओट में अपना

काम बनाने का सुभीता रहता है।' फिर राजा के मुख की ओर निश्चयात्मक दृष्टि से देखने लगा।

राजा ने कहा—'छोटी रानी को जो कोई क़ैद कर लावेगा, उसे दो सहस्त्र मुहर इनाम दी जायँगी। यह घोषणा विस्तार के साथ कर दी जाय।'

जनार्दन खुशी के मारे उछल पड़ा। बोला—'सौ मुहरें महाराज के दीन ब्राह्मण जनार्दन की ओर से भी दी जायँगी।'

उस सूचना के साथ-साथ लोचनसिंह ने मुस्कराते हुये कडुवेपन के साथ पूछा—'यह भी ज़ाहिर किया जायगा या नही कि रानी चुपचाप गिरफ़्तार हो जायँ, क्योंकि पकड़ने के बाद उन्हे छोड़ दिया जायगा?'

राजा हँस पड़ा।

एक क्षण बाद बोला—'रामनगर की जागीर का सिरोपाव चामुंड-राय लोचनसिंह को इसी समय दे दिया जाय शर्माजी।'

लोचनसिंह ने बारीक आह लेकर कहा—'यदि मुझे मिल सकती होती, तो पहले ही कह चुका हूं कि मै महाराज को लौटा देता, परन्तु वह मुझे नही मिलना चाहिये।'

'क्यो?' राजा ने जरा विस्मय के साथ पूछा।

उत्तर मिला—'इसलिये कि मैंने रामनगर नही जीता।'

'तब किसने जीता?' जनार्दन ने प्रश्न किया।

राजा से लोचनसिंह ने कहा—'उसका सम्पूर्ण श्रेय मेरे एक सैनिक को है। खेद है, रात के कारण उसका नाम नही पूछ पाया। वह जीवित अवश्य है, परन्तु अँधेरे में-नमालूम कहाँ चला गया। उसकी खोज करवाई जानी चाहिये; मर गया हो, तो उसके घर में जो कोई हो, उसे यह जागीर दे दी जाय।'

राजा ने सहज रीति से सम्मति प्रकट की—'यदि सबकी सम्मति हो, तो मैं यह चाहता हूँ कि रामनगर का कुछ भाग पतराखन के पास रहने दिया जाय। अब वह शरणागत हुआ है, इसलिये बिलकुल बेदखल न किया जाय।'

लोचनसिंह ने ज़रा निरपेक्ष भाव से कहा—'हमारे उस सैनिक का पता महाराज पहले लगवाये, तब रामनगर का कोई एक टुकड़ा पतराखन को या और किसी को दें।'

राजा बिना उत्तेजना के बोला—'लोचनसिंह, तुम्हे उस सिपाही ने कुछ तो अपना नाम बतलाया होगा ?'

'बतलाया था महाराज।' लोचनसिंह ने उत्तर दिया—'परन्तु वह नाम बनावटी जान पड़ता है। कहता था, मेरा नाम कफनसिंह बुंदेला है ?'

'विचित्र नाम है।' राजा ने मुस्कराकर ज़रा आश्चर्य के साथ कहा—'तुम्हारी सेना में क्या सब योद्धा इसी तरह के बेतुके नाम रखते हैं।'

लोचनसिंह गभीर होकर बोला—'यदि मेरी सेना में सब सैनिक उस कफ़नसिंह सरीखे हो, तो आपको घर-घर चामुंडाराई की उपाधि न बाँटनी पड़े।'

राजा ने पूछा—'क्या तुम उसका स्वर पहचान सकते हो ?'

लोचनसिंह ने ज़रा लज्जित होकर उत्तर दिया—'शायद न पहचान पाऊँगा। ऐसी जल्दी में सब काम हुआ और बातचीत हुई कि याद रखना कठिन है।'

'वाह रे सेनापति !' राजा ने हँसकर चुटकी ली।

लोचनसिंह का मस्तक लाल हो गया। बोला—'सेनापति को सैनिको के स्वर याद रखने की आवश्यकता नही ?'

राजा ने तुरन्त स्वर बदलकर कहा—'कफनसिंह बुंदेला।'

लोचनसिंह का क्रोध घोर विस्मय में परिवर्तित हो गया।

क्षीर स्वर में बोला—'यही स्वर सुना था।'

'महाराज का !' जनार्दन ने आश्चर्य के साथ कहा।

देवीसिंह खूब हँसकर बोला—'महाराज का नही, कफ़नसिंह बुंदेला का।'

लोचनसिंह सँभल गया। गम्भीर होकर बोला—'तब आप जागीर चाहे जिसे दे सकते हैं।'

'तीन चौथाई लोचनसिंह को और एक चौथाई पतराखन को यदि वह स्वामिभक्त बना रहा तो।'

[८३]

अपनी सेना के प्रधान भाग से राजा देवीसिंह का सम्बन्ध रामनगर में स्थापित हो गया था, परन्तु विराटा को इससे मुक्ति नहीं हुई। अली-मर्दान की सेना की कमान रामनगर के पास से खिचकर विराटा की ओर और अधिक सिमट आई। अपनी ओर अलीमर्दान की सेना को और अधिक सिमटा हुआ देखकर राजा सबदलसिंह ने समझा, दलीपनगर की सेना पीछे हट गई है। सेना छोटी थी। मुट्ठी-भर दांगी इतनी बड़ी फौज का सामना कर रहे थे—अपनी बान पर न्योछावर होने के लिये। तोपें थोड़ी थी, साहस बहुत।

कुञ्जरसिंह तोप के काम में बहुत कुशल था। यद्यपि सबदलसिंह ने राजा देवीसिंह के भय के कारण कुंजरसिंह को छोटा-सा ही पद दे रक्खा था, तथापि अपनी दिलेरी और चतुरता के कारण बहुत थोडे समय में उसे तोपची से सभी तोपो के नायक का पद मिल गया। तोपो के नायक को उसके बाद ही सेना की विश्वासपात्रता सहज ही प्राप्त हो गई। वह बिराटा के कागजो मे सेनापति नही था, परन्तु वास्तव में था और सैनिको के हृदय में उसके शौर्य ने स्थान कर लिया था।

रामनगर-विजय के दूसरे दिन सन्ध्या समय राजा देवीसिंह ने नाव द्वारा बिराटा जाने का निश्चय किया। अलीमर्दान से आँख बचाने के लिये एक छोटी-सी नाव में थोडे से आदमी ले लिये और लोचनसिंह, जनार्दन इत्यादि से जाते समय कह गये कि आधी रात के पहले लौट आयेगे।

बेतवा का पूर्वीय तट पतराखन के शरणागत हो जाने के कारण निस्संकट हो गया था, इसलिये उसी ओर से अन्धेरे में देवीसिंह अपना नाव बिराटा ले गया और जहाँ मन्दिर के पीछे पश्चिम से पूर्व की ओर पठारी धीरे-धीरे ढालू होते-होते जल में समा गई है, वही नाव लगा ली।

अपने सिपाहियो में से दो को साथ लेकर देवीसिंह अनुमान से मन्दिर की ओर बढ़ा।

वही एक तोप लगी हुई थी। कुन्जरसिंह पास खडा था, परन्तु राजा असाधारण मार्ग से होकर आया था। इसलिये जब तक बिलकुल पास न आ गया, कुन्जरसिंह को मालूम न हुआ।

जब देवीसिंह पास आ गया, कुन्जर ने ललकारा, और तलवार खीचकर दौडा।

देवीसिंह ने शान्त, परन्तु गम्भीर स्वर में कहा—'मै हूँ दलीपनगर का राजा देवीसिंह।'

कुन्जरसिंह ने वार नही किया, परन्तु पास के सैनिकों को सावधान करके देवीसिंह के पास आगे बढ गया।

कम्पित स्वर मे बोला—'इस अन्धेरे में आपके यहाँ आने की क्या ज़रूरत थी?'

अबकी वार देवीसिंह के अकचकाने की वारी आई। बोला—'तुम कौन?'

'मै हूँ कुन्जरसिंह। महाराज नायकसिंह का कुमार।'

'आप .। तुम यहाँ कैसे?'

इस सम्बोधन की अवज्ञा कुन्जरसिंह के हृदय मे चुभ गई। देवीसिंह से कहा—'क्षत्रिय अपनी तलवार की नौक से अपने लिये ससार में कही भी ठौर बना लेता है।'

'आपको विराटा का शत्रु समझा जाय या मित्र?'

'जैसी आपकी इच्छा हो।'

'सबदलसिंह कहा है?'

'गढी की रक्षा कर रहे हैं।'

'मैं उनसे मिलना चाहता हूँ?'

'किसलिये?'

'रामनगर हमारे हाथ में आ गया है। विराटा के उद्धार के लिये सुभीता होते ही हम शीघ्र आते हैं, तब तक अलीमर्दान का निरोध दृढता के साथ करते रहे, इस बात को बतलाने के लिये।'

'यह सन्देशा उनके पास यथावत् पहुँचा दिया जायगा।'

देवीसिंह ने क्षुब्ध होकर कहा—'आप यदि इस गढ़ी में मित्र के रूप में न होते, तो आप जिस पद के वास्तव में अधिकारी हैं, वह आपको तुरन्त दे दिया जाता।'

कुञ्जरसिंह ने अपनी तोप और सुलगाते हुये पहले वोड़े की ओर, फिर रामनगर की ओर देखा। एक वार मन में आया कि सैनिको को आज्ञा देकर आगन्तुक को क़ैद कर लूँ और तोपो के मुँह से रामनगर पर गोले उगलवा दूँ, परन्तु कुछ सोचकर रह गया।

बोला—'इसका ठीक उत्तर देना मेरे लिये असम्भव हो रहा है, परन्तु कभी उत्तर दूँगा अवश्य।'

देवीसिंह ने कहा—'मुझे इस समय इस व्यर्थ विवाद के लिये अवकाश नहीं, यदि आप सवदलसिंह को स्वयं बुला सकते हों, तो बुला लाइए, नहीं तो इन सैनिको में से कोई उनके पास चला जाय और कह दे कि दलीपनगर के महाराज बड़ी देर से खड़े बाट जोह रहे हैं।'

कुञ्जरसिंह ने दाँत पीसे, परन्तु बड़े संयम के साथ अपने सैनिकों से कहा—'एक आदमी राजा के पास जाओ। जो कुछ इन्होंने कहा है, उन्हे सुना देना। इनसे मुलाकात मन्दिर में होगी। चार आदमी इन्हे लेकर मन्दिर में विठलाओ।'

'इस पर एक सैनिक सबदलसिंह के पास गया और चार देवीसिंह और उनके साथियों को मन्दिर में ले गये। उस समय कुञ्जरसिंह ने बड़े क्षोभ और क्रोध की दृष्टि से उन लोगों की ओर देखा।

मन में बोला—'इस भुक्खड़ भिखारी के दिमाग में इतना घमण्ड! दलीपनगर के महाहाज! महाराज नायकसिंह के दलीपनगर का अधिकारी यह चोर! चाहे जो हो, यदि इसके टुकड़े-टुकड़े न किये, तो मनुष्य नही।'

एक सैनिक ने कुन्जरसिंह से अपनी अपार सावधानी जताने के लिये कहा—'यह शायद देवीसिंह न हों। नवाब के आदमी हों, वेश बदलकर आये हों।'

बिना मुँह खोले हुये कुञ्जरसिंह बोला—'हूं।'

सिपाही कहता गया—'मन्दिर को कही ये लोग अपवित्र न कर दें। देवी, देवी की पुजारिन—'

कुन्जरसिंह ने जाग्रत-सा होकर कहा—'तुमने कैसे अनुमान किया?'

'मै खूब जानता हू।' वह बोला—'ये लोग मूर्तियां तोड़ डालते हैं, स्त्रियो को जबरदस्ती पकड़ ले जाते हैं। उसके साथ दो आदमी भी हैं। नाव में बैठकर आये होगे। पठारी के नीचे नाव लगी होगी। उसमें और आदमी भी होंगे।'

तमककर कुन्जरसिंह ने कहा—'और हमारे सिपाही क्या उन लोगो गुलाम हैं, जो उन्हे उत्पात करने देगे?'

वह सैनिक ज़रा सहम गया। परन्तु ढिठाई के साथ बोला—'हम लोग तो अपने प्राणो की होड़ लगा ही रहे हैं, परन्तु कोई अनहोनी न हो जाय, इसीलिये कहा। शायद उसके पास और आदमी किसी दूसरी ओर से भी आ जायँ।'

कुजरसिंह ने सोचा—'कही देवीसिंह नरपतिसिंह इत्यादि को रामनगर न लिवा ले जाय। शायद गोमती को लिवाने आया हो और उसके साथ उन लोगों से भी चलने के लिये कहे।

कुन्जरसिंह ने और अधिक नही सोचा। सैनिक से कहा—'तुम तोप पर डटे खड़े रहो। मैं देखता हूँ, वहाँ क्या होता है। राजा सबदलसिंह मन्दिर में थोड़ी देर में आते होगे। वहाँ मेरी उपस्थिति आवश्यक होगी।'

फिर मन में बोला—'देवीसिंह ने रामनगर को विजय कर लिया! मेरी तोपों के भाग्य में यह पराक्रम न लिखा था। अब देवीसिंह और अधिक शक्तिशाली हो गया। जनार्दन को प्रपंच रचने के लिये और भी

अधिक साधन सुलभ हो जायेगे और मुझे किसी और भी अधिक सघन जंगल की राय लेनी पड़ेगी। कुमुद का क्या होगा? संसार की विपत्तियों से उसे कौन बचायेगा? नरपतिसिंह के बाहुओं में इतना बल नही है। सबदलसिंह का एक तरह आश्रित होकर रहेगा।' फिर निश्चय के साथ होठो को दबाकर उसने व्यक्त रूप से कहा—'देखूँगा।'

थोड़ी देर में वह मन्दिर के द्वार पर पहुंच गया। वहां पहरे पर सिपाही थे। जो आदमी कुञ्जरसिंह ने देवीसिंह के साथ किये थे, वे भी पहरेवाले सिपाहियो के साथ रह गये।

भीतर कुछ बातचीत हो रही थी। कुञ्जरसिंह ने सोचा, वही चलकर सुनूँ। पहरे वाले सिपाही से पूछा, सबदलसिंह आ गये या नही। मालूम हुआ अभी नही आये है। कुजरसिंह और आगे बढ़ा। अभी कुमुद इत्यादि मन्दिर को छोड़कर अपनी खोह में गई थी, परन्तु आंगन में अन्धकार छाया हुआ था। केवल मूर्ति के पास घी का एक छोटा-सा दीपक टिम-टिमा रहा था। उसी जगह बातचीत हो रही थी।

कुजरसिंह पहले तो ठिठका, फिर सोचा, सबदलसिंह के आने तक बातचीत सुनने के लिये आगे न बढ़ूँ। परन्तु उसने यह विचार शीघ्र बदल दिया। मन में कहा—'देवीसिंह सरीखा आदमी इन लोगो से क्या बातचीत करता है, उसे छिपकर सुनने में कोई दोष नही।'

उसके शूर हृदय ने इस तरह के दरिद्र प्रयत्न के करने से उसे एक-आध बार रोका भी, परन्तु अन्त में उसका पहला निश्चय ही ऊपर रहा।

ज़रा आगे बढ़कर एक कोने में छिपे-छिपे कुँजरसिंह वहाँ की बातचीत सुनने लगा।

[८४]

देवीसिह अपने साथ भेजे गये चारो सिपाहियो को पहरे वालो के पास छोडकर अपने दोनो सैनिको को लिये हुये, मन्दिर में चला गया। मूर्ति के पास दीपक टिमटिमाता हुआ देखकर आगे बढा। तब निकट पहुँच गया, सबसे पहले नरपतिसिंह मिला।

उसने अकचकाकर पूछा— आप लोग कौन हैं ?'

देवीसिह ने उत्तर दिया—'तुम लोगो के मित्र।'

देवीसिह बैठने के लिये उपयुक्त स्थान देखने लगा।

नरपति एक क्षण चुप रहकर ज़रा जोर से बोला—'आपका नाम ?'

'थोडी देर में अपने आप प्रकट हो जायगा।' देवीसिंह ने जरा बेतकल्लुफी के साथ कहा।

इतने में रामदयाल आ गया।

पहले उसे सदेह हुआ, फिर सोचा, असभव है। विश्वास को दृढ करने के लिये ज़रा और आगे बढा।

पहचानने में विलम्ब नही हुआ।

तुरन्त पीछे हटने की ठानी, परन्तु देवसिंह ने पहिचान लिया। बोले—'रामदयाल ?'

'महाराज !' अनायास रामदयाल के मुँह से निकल पड़ा।

उन्होने कहा—'बडा आश्चर्य है। तू यहा कैसे आया ? और कौन तेरे साथ है ?'

राजा ने बहुत संयत भाव से प्रश्न किया था, परन्तु आत्म गौरव से प्रेरित प्रश्न का स्वर काफी ऊँचा होकर रहा।

कुमुद रामदयाल के पीछे आकर खडी हो गई।

देवीसिंह ने देख लिया, परन्तु पहिचाना नही। तो भी रामदयाल के पीछे एक स्त्री की उपस्थिति कई कारणो से असह्य-सी हुई। ज़रा प्रखर स्वर में पूछा—'जानता है रामदयाल यह मन्दिर है और मै—'

'महाराज, महाराज मैं निरपराध हू। मैंने क्या किया है ?'

'तूने जो कुछ किया है, उसका भरपूर पुरस्कार मिलेगा। तेरे सरीखे नराधम की अपवित्र देह कम से कम इस देवालय में नही आनी चाहिये थी।' फिर देवीसिंह ने स्वर की कर्कशता को कम कर के पूछा—'मन्दिर की अधिष्ठात्री कहा हैं ?'

रामदयाल सँभलकर बोला—'जिस मन्दिर की रक्षा के लिये अन्य हिन्दू प्राण हथेली पर रक्खे फिर रहे हैं, उसी की रक्षा के लिये हम लोग भी यहां जमा हैं।'

'हम लोग !' देवीसिंह आपे से बाहर होकर बोले—'बदमाश ! नीच ! यहाँ से हटना मत।'

'मै स्वामिभक्त हूं।' भर्राये हुये गले से रामदयाल बोला –'मैं स्वामिधर्मी हूँ। मुझे केवल मन्दिर अधिष्ठात्री की ही रक्षा अभीष्ट नहीं है, किन्तु जिनके एक सकेत-मात्र से मैं अपना सिर घूरे पर काटकर फेंक सकता हूं उनकी भी रक्षा वाछनीय है और यही कुछ दिनो से मेरा अपराध आपकी दृष्टि में रहा है।'

इस समय एक और स्त्री कुमुद के पीछे आकर खड़ी हो गई थी।

रामदयाल ने कनखियों से देख लिया था।

राजा ने तलवार पर हाथ रखकर कहा—'इस मन्दिर में कदाचित् नर-बलि कभी नही हुई होगी। आज हो।'

कुमुद रामदयाल के पीछे से जरा आगे आई—मानो घोर तमिस्त्र से एकाएक पूर्ण चन्द्र का उदय हुआ हो।

बोली—'यह मन्दिर है। इसमें न कभी नर-बलि हुई है और न कभी होगी।'

तलवार पर से हाथ हटाकर देवीसिंह ने विस्मित होकर प्रश्न किया—'आप कौन हैं ?'

'और आप ?' बड़ी सरलता के साथ कुमुद ने पूछा। परन्तु प्रश्न की नोक देवीसिंह को अपने भीतर घसती-सी जान पड़ी।

प्रश्न का कोई उत्तर न देकर देवीसिंह ने दूसरा प्रश्न किया—'राजा सबदलसिंह का निवास-स्थान क्या यहां से बहुत दूर है ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'ज़रा दूर हैं। मै बुला लाऊँ ? जाता हूँ।'

'नही, कदापि नही।' देवीसिंह ने कडककर कहा—'यही खडा रह।'

रामदयाल हट नही पाया। आधे क्षण उपरांत देवीसिंह ने उसी वेग से फिर पूछा—'वह स्त्री कहां है।'

रामदयाल एक दीर्घ निःश्वास परित्याग कर बोला—'वह बेचारी आफत की मारी, पद वचित और कहाँ होगी ?'

'क्या ? कहां छिपाया है ?'

'यहा। और जो कुछ मन में हो, सो कर डालिये। चूकिये नहीं।' गोमती ने पीछे से आकर कहा। अंचल के सामने के नीचे छोर पर दोनो हाथ बाँधे गोमती बेधड़क राजा के सामने आकर खड़ी हो गई। देवीसिंह ने गोमती को पहले कभी नही देखा था। घटना की आकस्मिकता से वह चकित हो गया। रामदयाल पर आँख अपने आप जा पड़ी। वह शायद पहले से तैयार था।

बोला—'महाराज ने शायद न पहचान पाया हो परन्तु मैं विश्वास दिलाता हूं कि बहुत दिन कष्ट में बीते हैं। महारानी ने कष्ट में जीवन बिताना अच्छा समझा, परन्तु स्वाभिमान-विरुद्ध अपने आप आपके पास जाना उचित नही समझा।'

गोमती क्रुद्ध होकर बोली—'रामदयाल तुम मेरे लिये कुछ भी मत कहो। वह धर्मशास्त्र को बहुत अच्छी तरह जानते हैं। सामन्त धर्म का वीरो की तरह निर्वाह करते हैं। जो कुछ शेष रह गया हो, उसे भी कर डालने दो। मेरे बीच में मत पड़ो—'

रामदयाल ने टोककर कहा—'मेरी लोथ के विषय मे महाराज गिद्धों और कौओ को वचन दे ही चुके होगे। इसलिये उस महा-प्रसंग के उपस्थित होने के पहले एक आध बात मन की कह डालने में कोई और अधिक संकट खड़ा नही हो सकता।'

फिर देवीसिंह से बोला—'महाराज को याद होगा कि उस दिन अभी बहुत समय नही हुआ, पालर में किसी के हाथ पीले करने के लिये बारात

सजाकर लाये थे। लड़ाई हो पड़ी, घायल हो गये, फिर वे हाथ पीले न हो पाये। अब तक वे ज्यों-के-त्यो हैं और ये हैं। केवल ऋतुओ ने उन्हे कुछ कृश-भर कर दिया है, परन्तु बदले नही हैं। खैर, अब मुझे मार डालिये।'

देवीसिंह का हाथ खड्ग पर नही गया। छाती पर हाथ बाँधे हुये बोला—'झूठी बात बनाने में इस धरती पर तेरी बराबरी का शायद और कोई न निकलेगा। सच-सच बतला, छोटी रानी को कहा छिपाया है? मेरे सामने पहेलियो में बात मत करना, नही तो मै इस स्थान की भी मर्यादा भूल जाऊँगा।'

फिर नरपति की ओर देखते हुये राजा ने कहा—'मैंने आपको अब पहचाना। कुछ समय हुआ, आप मेरे पास गये थे।'

नरपति कुछ देर से कुछ कहने के लिये उकताया-सा हो रहा था। बोला—'बहुत दिन से आपकी इस थाती को हम लोग टिकाये हुये थे। अब आप स्वयं गोमती को लिवाने आ गये हैं, लेते जाइये। सयानी लड़की को अपने घर ही पर रहना अच्छा होता है। इस समय जो कुछ थोड़ी-सी कड़ुआहट पैदा हो गई है, उसे बिसार दीजियेगा।'

'किसे लिवा लेता जाऊँ?' देवीसिंह ने कहा।

'किसे लिवा ले जायँगे?' गोमती ने तमककर पूछा। बोली—'क्या मैं कोई ढोर-गाय हूं?'

देवीसिंह ने नरपति से कहा—'मैंने इन्हे आज के पहले कभी नही देखा। सम्भव है, वह पालर की रहने वाली हों। आपने मुझसे दलीपनगर में कहा था। परन्तु मै इस समय इन्हे कही भी लिवा ले जाने में असमर्थ हूं लड़ाई हो रही है। तोपे गोले उगल रही हैं। मार-काट मची हुई है। जब शान्ति स्थापित हो जाय, तब इस प्रश्न पर विचार हो सकता है। मैं इस समय यह जानना चाहता हूं कि छोटी रानी कहाँ हैं? यहाँ हैं या नही?'

कुमुद बोली—'इस नाम की यहाँ कोई नही हैं। मै दूसरा ही प्रश्न करना चाहती हूँ। क्या आप समझते है कि स्त्रियो में निजत्व की कोई लाज नही होती?'

देवीसिंह ने नरम स्वर में उत्तर दिया—'आप सब लोग मेरे साथ रक्षा के स्थान में चलना चाहे, तो अभी ले चलने को तैयार हूँ, परन्तु दूसरे प्रसंग वर्तमान अवस्था के अनुकूल नही हैं।'

'मैं नही जाऊँगी।' बहुत क्षीण स्वर में गोमती ने कहा। फिर क्षीणतर स्वर में बोली—'दुर्गा मेरी रक्षा करेगी।' और तुरन्त धड़ाम से पृथ्वी पर गिरकर अचेत हो गई। कुमुद उसे सँभालने के लिये उससे लिपट-सी गई।

राजा देवीसिंह यथार्थ दशा समझने के लिये उसकी ओर झुके। ज़रा दूर से ही कुञ्जरसिंह सब सुन रहा था परन्तु इस समय दीपक के टिमटिमाते प्रकाश में उसे वास्तविक वस्तु-परिचय न हुआ। इतना जरूर भान हुआ कि देवीसिंह किसी भीषण दुर्घटना के जिम्मेदार हो रहे हैं।

इतने में रामदयाल चिल्लाया—'सर्वनाश होता है।'

कुंजरसिंह ने तलवार खींच ली। जोर से बोला—'न होने पायेगा।' और लपककर देवीसिंह के पास जा पहुँचा।

देवीसिंह ने भी तलवार खींच ली। उनके साथियो के भी खड्ग बाहर निकल आये।

पहरेवालो ने भी समझा कि कुछ गोलमाल है वे भी हथियार लेकर भीतर घुस आये।

कुञ्जर से देवीसिंह बोला—'दुष्ट, छली, सँभाल।'

कुमुद गोमती को छोड़कर खड़ी हो गई। परन्तु विचलित नही हुई। कोमल, किन्तु दृढ़ स्वर में बोली—'देवी के मन्दिर में रक्त न बहाया जाय।'

देवीसिंह रुका। कुञ्जरसिंह ने भी वार नही किया।

कुमुद ने फिर कहा—'राजा, आपको यह शोभा नही देता।'

'मेरा इसमें कोई अपराध नही।' देवीसिंह बोला—'यह मनुष्य नाहक बीच में आ कूदा।'

'देवीसिंह !' कुंजर ने दाँत पीसकर कहा—'न मालूम यहां ऐसी कौनसी शक्ति है, जो मुझे अपनी तलवार तुम्हारी छाती में ठूँसने से रोक रही है। तुम तुरन्त यहा से चले जाओ। बाहर जाओ।'

'जाइये।' कुमुद भी बिना किसी क्षोभ के बोली।

देवीसिंह की आँखो मे खून-सा आ गया। तो भी स्वर को यथा-सम्भव संयत करके, बोला—'कुञ्जरसिंह, मैं आज ही तुम्हरा सिर धड़ से अलग करना चाहता था, परन्तु यहाँ न कर सका, इसका उस समय तक खेद रहेगा, जब तक तुम्हारा सिर धड़ पर मौजूद है।'

कुञ्जर ने कहा—'गलियों के भिखारी, छल प्रपंच करके मेरे पिता के सिंहासन पर जा बैठा है, इसलिये ऐसी बातें मार रहा है। मन्दिर के बाहर चल और देख ले कि पृथ्वी माता को किसका प्राण भार-समान हो रहा है।'

देवीसिंह गरजकर बोला—'चल बाहर, दासी-पुत्र, चल बाहर। महाराज नायकसिंह के सिंहासन पर शुद्ध बुन्देला ही बैठ सकता है, बांदियों के जाये उसे छू भी नही सकते।'

कुमुद ने कहा—'यहां अब और अधिक बातचीत न करिये, अन्यथा देवी के प्रकोप से आपकी बहुत हानि होगी।'

इस निवारण पर भी दोनो दल वहां से नहीं हटे। पैतरे बदल गये और वहां केवल एक क्षण इसलिये गुजरा कि कौन किस पर किस तरह का वार करे कि नरपतिसिंह ने उस छोटे से रणक्षेत्र में बड़ा भारी गोलमाल उपस्थित कर दिया।

वह मन्दिर में किसी तरह लड़ाई बन्द कर देना चाहता था परन्तु उसके ध्यान में उस क्षण केवल एक उपाय आया। उसने चुपचाप मुँह की फूँक से दीपक बुझा दिया।

प्रकाश के यकायक तिरोहित हो जाने से मन्दिर के भीतर का पूर्व-संचित अन्धकार और भी अधिक काला मालूम होने लगा।

कुमुद ने अपने सहज, कोमल स्वर से जरा बाहर कहा—'कुमार, अपनी रक्षा करो।'

वहां कुन्जर को या किसी को इस प्रकार के किसी भी सकेत की जरूरत न थी। जो मारने के लिये उतारू होता है, वह प्राय· मरने के लिये भी तैयार रहता है परन्तु ऐसे मनुष्य बहुत थोडे हैं जिन्हे वार कर पाने का रत्ती भर भी भरोसा न हो और मारे जाने का सोलहो आने सन्देह जान पड़े। इसलिये वे सब अपने बचाव के लिये तलवार भाजते हुये मन्दिर के निकास द्वार के लिये अग्रसर हुये। इतनी हडवडी मची कि अपनी ही ठोकर और अपनी ही तलवार से कई लोग थोड़े-थोड़े से घायल हो गये। किसी-किसी को दूसरे के भी हथियार के छोले लग गये, परन्तु गम्भीर घाव किसी के नही लगा।

थोडे समय में आगे-पीछे सब योद्धा निकल गये।

मन्दिर के बाहर एक चट्टान के पास देवीसिंह ने खड़े होकर पुकारा—'मेरे सिपाही !'

उत्तर देकर एक-एक करके देवीसिंह के सैनिक उसकी आवाज़ पर आ गये।

कुँजरसिंह मन्दिर के बाहर जरा पीछे आ पाया था। पहरा ठीक करके वह आगे बढा। उसके साथ उसके सिपाही भी थे। थोडी दूर से देवीसिंह की आवाज़ सुनकर कुन्जर ने तैश में आकर कहा—'मारो जाने न पावे।'

उसके साथी सिपाही भी चिल्लाये—'मारो।'

उस अन्धेरे में तारो के प्रकाश में मार्ग टटोलता हुआ देवीसिंह पत्थरो और पठारियो की ऊबड-खाबड़ भूमि लाघता हुआ नदी की ओर उतर गया। बेतवा की लम्बी-चौड़ी धार उस अन्धेरे में बहुत स्पष्ठ दिखलाई पड़ती थी।

कुन्जरसिंह के सिपाहियो ने दूर तक पीछा नही किया। परन्तु उसके तोपची ने रामनगर की ओर तोप दाग दी। प्रखर प्रकाश और प्रखर तर शब्द हुआ। उस प्रकाश में देवीसिंह को अपनी बँधी हुई नाव और उस पर बैठी हुई सैनिक स्पष्ट दिखलाई पड गये। वह अपने दोनो साथियो को लिये हुये नाव की ओर बढ़ा।

थोड़ी देर में सबदलसिंह मन्दिर के पास आया। चिल्लाकर बोला—'कुँवर कुन्जरसिंह, यह क्या है ? कहां हो ?'

चिल्लाहट के पैने, किंतु बारीक स्वर में किसी ने मन्दिर से कहा—'शत्रुओ का निवारण कर रहे हैं।'

यह स्वर कुमुद का था। सबदलसिंह पहचान नही पाया, परन्तु समझ गया कि दो में से किसी स्त्री का है और अवस्था सङ्कटमय है। तोप की ओर जल्दी-जल्दी डग बढाकर उसने फिर कुन्जरसिंह को पुकारा।

कुन्जरसिह ने उत्तर दिया और साथ ही सिपाहियो को ज़ोर से आज्ञा दी—'बचने न पावे। नाव लेकर दूर नही गया होगा।'

इस समय देवीसिंह नाव पर पहुँच गये थे। बेतवा से पूर्वीय किनारे की ओर नाव खेते हुये उसी किनारे किनारे वह रामनगर की ओर चले गये।

कुन्जरसिह के पास पहुच कर सबदलसिंह ने पूछा—'क्या था कुमार ? क्या राजा देवीसिंह आये थे ?'

कुन्जरसिह उत्तर नही दे पाया। उनके उसी सैनिक ने, जिसने देवीसिह पर बिराटा-गढी के पास आने के समय ही सन्देह किया था, कहा—'देवीसिह कैसे हो सकते थे ? मुसलमान लोग हिन्दुस्तानी वेश रखकर घुस आये थे। मैंने उसी समय कह दिया था, परन्तु कुँवर को विश्वास था कि दलीपनगर के राजा ही हैं। इनके साथ कुछ बातचीत भी हो पड़ी थी। न-मालूम क्यो उसी समय काटकर नही डाल दिया ?'

'मुसलमान थे।' सबदलसिंह ने आश्चर्य से कहा—'पठारी का पहरा कमज़ोर हो गया था ?'

'न।' वह सिपाही तुरन्त बोला—'कुँवर तलवार खीचकर तुरन्त दौड़ पडे थे और हम लोग सब तैयार थे, परन्तु उसके वेश और देवीसिंह की नकल के धोखे में आ गये।'

उस सिपाही को अपने मन में इस अन्वेषण पर बडा हर्ष हो रहा था।

'क्या बात थी ?' सबदलसिंह ने कुजर से पूछा—'आप चुप क्यो हैं ?'

कुँजर ने उत्तर दिया—'यह सिपाही ठीक कह रहा है। हम लोग धोखे में आ गये थे।'

'तब रामनगर-पतन की बात निरी गप थी?' सबदलसिंह ने रामनगर-गढ़ी की ओर देखते हुये प्रश्न किया—'न-मालूम कब विपद् से छुटकारा मिलेगा?'

कुँजरसिंह ने बेतवा की दूर बहती हुई धार की ओर देखते हुये उत्तर दिया—'अभी तक हम थोडे-से आदमियो ने जैसी और जिस तरह से लड़ाई लड़ी है, वह आपसे छिपी नही है। अब और घोर—घोरतर—युद्ध होगा, आप विश्वास रक्खे। हमारे गोलन्दाज़ आज रात में रामनगर को चकनाचूर कर डालेगे।'

सबदलसिंह क्षमा-प्रार्थना के स्वर में बोला—'आपके कौशल से ही अब तक हम इने-गिने मनुष्य अपने पैरो पर खड़े हुये हैं।' और प्रश्न किया—'बात क्या थी।'

कुञ्जरसिंह ने बात बनाने का निश्चय कर लिया था। कहा—'शायद कोई देवीसिंह का रूप धरकर आया था मन्दिर में। गया। मै भी पीछे-पीछे गया। अपने चार सैनिक उसके साथ भेज दिये गये। वहाँ देखा, वह स्त्रियो से कह रहा है कि हमारे साथ चलो, नाव तैयार है। गोमती से उसने कुछ कहा-सुनी की। वह अचेत होकर गिर पड़ी। मैने गडबड़ समझकर तलवार खीची, इतने में हवा से दीपक बुझ गया। इस कारण वह, जो वास्तव में देवीसिंह-सा मालूम होता था, अपने साथियो को लेकर खिसक गया। मैने पीछा किया, परन्तु हाथ न आया।'

सब्रदलसिंह का इतने से कदाचित् समाधान हो गया। वह अपने स्थान की ओर चला गया।

थोडी देर में रामदयाल उसके पास आया। हाथ जोड़कर बोला—'क्या मेरा अपराध क्षमा किया जायगा?'

कुञ्जर ने थोड़ी देर पहले रामदयाल को शत्रु रूप में देखा था। उसके जी में रामदयाल के लिये इस समय बहुत घृणा न थी। उसने

उत्तर दिया—'और बातें पीछे देखी जायेंगी। हम इस समय यह चाहते हैं कि देवीसिंह के इस तरह यहां घँस आने का समाचार इधर-उधर न फैलने पावे।'

रामदयाल ने इस प्रस्ताव को समझ लिया। कहा—'इसमें मेरा लाभ ही क्या है ? उलटे मुसीबत में पड़ने का डर है।'

'मन्दिर में कुशल है ?' कुञ्जर ने पूछा।

'मेरे इस समय यहां आने का कारण वहीं की बात है।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'गोमती की हालत खराब मालूम होती है। आप एक क्षण के लिये चलिये।'

गोलन्दाजों को रामनगर पर अनवरत गोले बरसाने का हुक्म देकर कुञ्जर रामदयाल के साथ चला गया।

[८५]

कुञ्जर के मन्दिर में पहुँचने के पहले नरपति ने फिर दीपक जला दिया था। जब कुञ्जर भीतर पहुचा, वह पूर्ववत् टिमटिमा रहा था। नरपति ने बड़े भोलेपन के साथ कहा—'कभी-कभी ऐसी हवा चल उठती है कि दीपक अपने आप बुझ जाता है। उस समय जब तलवारें खिच गई थी और पैतरे बदल गये थे। ऐसे कुसमय प्रकाश लोप हो गया कि आप उन लोगों को काट-कूट न पाये।'

नरपति कुछ और भी पवन की इन आकस्मिक निष्ठुरताओ पर कहता, परन्तु कुञ्जर का ध्यान दूसरी ओर था। इसके सिवा उसे एक औषधि के लिये रामदयाल के साथ खोह में जाना था, जहा वह उसके साथ कुञ्जर के आने पर चला गया।

कुमुद गोमती का सिर अपनी गोद में रक्खे टकटकी बाधे कुञ्जर की ओर देख रही थी—मानो समय से उसकी प्रतीक्षा कर रही हो।

कुञ्जर ने बड़े उत्साह, बड़ी उत्कण्ठा के साथ कुमुद से पूछा—'अवस्था बहुत बुरी तो नही है?'

दया के कोमलता-पूर्ण कठ से कुमुद बोली—'बहुत बुरी तो नही जान पड़ती, परन्तु कुछ उपचार आवश्यक है।'

अपने को कुछ असमर्थ-सा समझकर कुञ्जर ने पूछा—'मुझसे जिस उपचार के लिये कहा जाय, तुरन्त करने को प्रस्तुत हूँ।'

कुमुद ज़रा मुस्कराकर बोली—'आपकी तलवार की कदाचित् आवश्यकता पड़ेगी। उपचार तो मै कर लूँगी।'

ज़रा आश्चर्य के साथ, परन्तु बहुत संयत स्वर में कुञ्जर ने कहा—'आज्ञा हो।'

कुमुद के मुख पर एक हलकी लालिमा दौड़ आई। गोमती की ओर आँख फेरकर बोली—'यह दुःखिनी है और कोमल। हम लोगो का कुछ ठीक नही, यहां क्या हो। शीघ्र अच्छी हो जायगी। परन्तु अच्छे होते ही

इसे किसी सुरक्षित स्थान में विराटा से बाहर पहुँचा देना चाहिये।'

'पहुंचा दिया जायगा।' कुञ्जर ने उत्तर दिया।

'कब ?' फिर पूछा।

कुमुद ने फिर उसी मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया—'एक आध दिन मे, जब वह अच्छी हो जाय।'

'साथ किसे भेजा जाय ?' कुञ्जर ने बढ़ती हुई उत्कंठा के साथ पूछा।

कुमुद ने उत्तर दिया—'रामदयाल के सिवा और यहां कोई ऐसा नही दिखलाई पड़ता, जिसका नाम ले सकूँ।'

'रामदयाल !' कुञ्जर अपनी उठती हुई अस्वीकृत को दबाकर बोला—'देखा जायगा। यह अच्छी हो ले।'

अपनी बडी-बड़ी आँखें पसारकर कुमुद बोली—'रण-क्षेत्र में होकर सुरक्षित स्थान में इसे पहुचाना पड़ेगा। आप अपने कुछ सैनिक इसके साथ भेज दीजियेगा।'

'मै स्वयं जाऊँगा।' कुञ्जर ने कहा।

कुमुद गोमती को होश में लाने के लिये दुलार के साथ उपाय करने लगी।

गोमती की आँखे बन्द थी, उसी दशा में बोली—'यह मेरे कोई नही हैं।'

बड़े मीठे स्वर में कुमुद ने कहा—'गोमती।'

वह अचेत थी।

कुञ्जर ने प्रश्न किया—'इसे कही चोट तो नही आई है ?'

कुमुद ने उत्तर दिया—'ऊपर तो कही नही आई है, परन्तु इसके हृदय को जान पड़ता है, कठोर पीड़ा पहुँची है।'

कुञ्जर बोला—'वह मनुष्य बडा नृशंस है।'

कुमुद ने फिर आँख ऊपर उठाई। उस दृष्टि में बड़ी अनुकम्पा थी। कहा—'उस चर्चा को जाने दीजिये। भावी प्रबल होती है। जो होना होता है, बिना हुये नही रहता। इस लड़की को बाहर पहुँचाकर फिर हम लोग और बाते सोचेगे। मै जानती हूँ, उस मनुष्य ने केवल गोमती को ही संकट में नही डाला है।'

'मैं क्या कहूँ।' कुञ्जर कम्पित स्वर में बोला—'मेरा इतिहास व्यथा-पूर्ण है, मेरे साथ बड़ा अन्याय हुआ है।' फिर तुरन्त उसने कहा—'परन्तु—परन्तु आपका शुभ दर्शन-मात्र मेरी उस सम्पूर्ण कहानी में एक बड़ी भारी मार्ग-प्रदर्शन ज्योति है। वह समय मेरी अँधेरी रात के अवसान की ऊषा है। केवल उसी प्रकाश के सहारे मैं ससार में चलता-फिरता हूँ।'

कुँजर कुछ और कहता, परन्तु कुमुद ने रोककर पूछा—'वह यहां तक कैसे आये? चारो ओर मुसलमानो और उनके सहायको की सेनायें रुकी हुई हैं।'

कुमुद के साथ वह छल नही कर सकता था। एक बहुत बारीक आह को दबाकर उसने उत्तर दिया—'रामनगर पर उसका अधिकार हो गया है। कम से कम वह कहता यही था। इसीलिये शायद यहां तक चला आया।'

कुमुद ने कहा—'आपकी तोपे किस ओर गोले फेंक रही है।'

'रामनगर पर।' कुञ्जर का सहज उत्तर था।

कुमुद ने अपने आचल से गोमती पर हवा करते हुये कहा—'मैं भी यही सोच रही थी।'

'क्यो?' कुञ्जर ने जरा डरते हुये प्रश्न किया।

कुमुद बोली—'आपको कभी न कभी देवीसिंह से लडना ही पड़ेगा। आज या फिर कभी, परन्तु अवस्था कुछ भयानक हो जायगी।'

'मैंने एक उपाय सोचा है।' कुञ्जरसिंह ने कहा—'मुझे एक चिन्ता सदा लगी रहती है।'

आखें नीचे ही किये हुये कुमुद ने पूछा—'क्या?'

'यह खोह सुरक्षित नही है। किसी दूसरे स्थान में आपको पहुँचाकर फिर निश्चिन्तता के साथ यहां लडता रहूगा।'

'मै नही जाऊँगी।' कुमुद ने धीरे से कहा।

'मैं नही जाऊँगी।' क्षीण स्वर में अचेत गोमती बोली।

कुमुद चौंक पड़ी। गोमती अचेत थी। कुन्जर ने कहा—'यह स्थान अब आपके रहने योग्य नहीं रहेगा। बड़ा घमासान युद्ध होगा। मैं गोमती को रामदयाल के साथ किसी अच्छे स्थान में छोड़ दूंगा और आपको भी किसी सुरक्षित स्थान में।'

कुमुद बोली—'आपके लिये यदि यह स्थान सुरक्षित है, तो मेरे लिये भी।' फिर मुस्कराकर कहा—'मुझे आपकी तोपों पर विश्वास है।'

कुंजर की देह भर में रोमांच हो आया। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो आकाश के नक्षत्र तोड़ लाने की सामर्थ्य रखता हो। कुछ कहना चाहता था। अवाक् रह गया। उसी समय नरपति और रामदयाल के आने की आहट मालूम हुई।

कुमुद ने जल्दी से कहा—'यदि रामदयाल अविश्वसनीय हो, तो उसके पास गोमती को नहीं छोड़ना चाहिये।'

रामदयाल सब से पहले आया। आतुरता के साथ बोला—'इस बीच में अवस्था और तो नहीं बिगड़ी।'

कुंजर ने उत्तर दिया—'नहीं।'

औषधोपचार के बाद गोमती को चेत आने लगा।

अर्द्ध-चेतनावस्था में बोली—'वह कहाँ हैं?'

कुमुद ने अपने बड़े-बड़े स्नेह पूर्ण नेत्रो से मानो उसे ढंक दिया। उसके मुँह के बहुत पास अपनी आखे ले जाकर कहा—'घबराओ मत, दुखी मत होओ।'

जब गोमती को बिलकुल चेत आ गया, वह अपने सिर को कुमुद की गोद से उठाने लगी। कुमुद ने रोक लिया। बोली—'लेटी रहो।'

कुंजर ने कहा—'रात बहुत हो गई है। अब आप लोग अपनी खोह में चले जायें।'

रामदयाल बोला—'अभी वह चलने-फिरने योग्य नहीं जान पड़तीं।'

'थोड़ी देर में सही।' कुञ्जर ने कहा—'परन्तु रात को रहना वहीं चाहिये। आज की रात बहुत गोला-बारी होगी।'

'हम लोग जाते हैं।' कुमुद ने कहा—'आज रात में खोह पर कुशल-क्षेम पूछने के लिये न आना।'

कुमुद इत्यादि वहाँ से चली गईं।

उस रात कुञ्जरसिंह कदाचित् इच्छा होने पर भी खोह के पास न जा सका। रात भर बेतरह रामनगर पर गोले ढाये। उधर से भी जवाब में कुछ गोला-बारी हुई, परन्तु बिराटा की कोई हानि नही हुई। रामनगर पर अलीमर्दान की भी तोपे गोला उगलती रही। परन्तु एक बात का आश्चर्य कुञ्जरसिंह को रहा था। अलीमर्दान की ओर से बिराटा पर एक तोप ने भी वार नही किया। कुञ्जर ने भी शायद यह समझकर कि पहले एक शत्रु से समझ लें, फिर दूसरे को देख लेंगे, अलीमर्दान को नही छेड़ा।

उस रात कुञ्जसिंह के कान में कुमुद के अन्तिम वाक्य ने कई बार झंकार की—उसने कहा था—'आप रात में खोह पर कुशर्ल-क्षेम पूछने न आना।'

उस निषेध में कुँजर को एक अपूर्व मोह-सा जान पड़ा था।

[८६]

सवेरे सबदलसिंह कुञ्जर के पास आया। उदास था। विना किसी भूमिका के बोला—'रामनगर पर देवीसिंह का अधिकार हो गया है। आपने रामनगर पर गोले क्यो बरसाये ?'

कुञ्जर ने उत्तर दिया—'पहले मेरे मन में भी कुछ इसी तरह की कल्पना जगी थी, परन्तु पीछे विश्वास हो गया कि रामनगर पर अभी देवीसिंह का दखल नही हुआ है।'

'परन्तु नरपतिसिंह दूसरी ही बात कहते हैं।'

'वह धोखे में आ गये हैं।'

'और गोमती।'

'वह भी; और रामदयाल भी। वह छद्मवेश था।'

रामदयाल कहता था कि धोखा-सा था। मान लीजिये, देवीसिंह ही थे, तो वह इस तरह क्यो और कैसे आये ?'

'कैसे आये वे लोग, सो तो आपको मालूम ही हो चुका है; परन्तु मुझे उस व्यक्ति के देवीसिंह होने में बिलकुल सन्देह है।'

'यदि वह देवीसिंह थे, तो ब हुतकरके गोमती के लिये आये होगे। मैं नरपति से सब हाल सुन चुका हू। केवल इतनी बात प्रकट करने के लिये आने की अटक न थी कि रामनगर उनके हाथ में आ गया है। इस समाचार को तो वह किसी के भी द्वारा कहला सकते थे। रामदयाल उनकी सेवा में रहा है, नरपति विश्वास दिलाते हैं। परन्तु यह सब फिर क्या और क्यो हो पड़ा, कुछ समझ में नही आता। नरपति त्यागी-विरागी पुरुष हैं, उनके दिमाग में सांसारिक बातो को यथावत स्थान नहीं मिलता। कुमुद कहती है कि धोखा-सा हो गया है शायद ऐसा ही हो।'

'मैं आपको विश्वास दिलाता हूं।'

'खैर, दो एक दिन में मालूम हो जायगा, परन्तु यदि वास्तव में रामनगर देवीसिंह के अधिकार में है, तो उस ओर गोला-बारी करना आत्मघात के समान होगा।'

'और यदि रामनगर अलीमर्दान या रानियों के हाथ में है, तो उस गढ़ पर गोले न चलाना आत्मघात से भी बुरा सिद्ध होगा।'

सबदल किंकर्तव्य-विमूढ था।

कुछ क्षण पश्चात् बोला—'यदि देवीसिंह का हमसे कुछ अपराध भी हो जायगा, तो हम क्षमा माग लेगे।' निस्सहायों की-सी आकृति बनाकर उसने कहा—'इस समय हम किसी को बाहर भेज कर इस बात का ठीक-ठीक अनुसन्धान भी नही कर सकते।'

कुञ्जर ने अपनी बात की पुष्टि का प्रण कर लिया था। बोला—'यदि आपकी इच्छा हो, तो मैं तोपो का मुँह मुरका दूँ?'

सबदल तोपो का कुल भार कुञ्जर को सौप चुका था। वह सहमत न हुआ। कहा—'तोपो के सञ्चालन का सम्पूर्ण कार्य आपके हाथ में है। मैं हस्तक्षेप नही करना चाहता। असली बात एकआध दिन में ही मालूम हो जायगी। यदि वास्तव में रामनगर देवीसिंह के अधीन हो गया है, तो कुछ-न-कुछ समाचार किसी-न-किसी प्रकार हमारे पास बिना आये न रहेगा, तब तक आपको जैसा उचित जान पड़े, करिये।'

सबदलसिंह चला गया। दो-एक दिन में क्या होगा, इसे वह या कोई भी उस समय नही जान सकता था।

आंख से ओझल होते हुये सबदल को कुञ्जर ने देखा। सरल, दृढ व्यक्ति। कुञ्जर को झूठ बोलने के कारण अपने ऊपर बडी ग्लानि हुई। तुरन्त ही उसने मन में कहा— इसने जितना विश्वास मेरा कर रक्खा है, उससे कही अधिक मूल्य इसे दूँगा। इस गढी की रक्षा में अन्तिम श्वास की होड़ लगाऊँगा। इसे भ्रम में डालने के सिवा मुझे कोई और उपाय न सूझा। क्या करूँ, देवीसिंह ने झूठ बोलने के लिये विवश किया।

[८७]

दूसरे दिन रामदयाल गोमती के लिये उपयुक्त स्थान की खोज में सन्ध्या के उपरान्त बिराटा से चल पड़ा।

कहना न होगा कि वह इधर-उधर बहुत न भटककर और चक्कर काटकर अलीमर्दान की छावनी में गया और सीधा अलीमर्दान के पास पहुंचा। प्रातःकाल हो गया।

उसने रामदयाल को पहचान लिया।

बोला—'तुम्हारी रानी साहबा तो वहुत पहले आ गई हैं। तुम कहाँ थे?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'मै भी हुजूर का कुछ काम कर रहा था।'

'वह क्या ?'

'बिराटा से रामनगर पर गोले पड़ रहे हैं।'

रामनगर के नाम पर अलीमर्दान की ज़रा त्योरी वदली।

रामदयाल उसके भाव को समझ गया। बोला—'जहाँ तक मैंने सुना है, इस समय आपका अधिकार रामनगर पर नही है।'

अलीमर्दान बोला—'रनिवास में रहकर भी तुम्हे बात करने की तमीज़ न आई।'

'मैं माफ़ किया जाऊं।' रामदयाल ने क्षमा-प्रार्थना का कोई भी भाव प्रदर्शित न करते हुये कहा—'यदि अब भी रामनगर आपके हाथ में है, तो मैंने रामनगर पर बिराटा से गोले बरसवाने मे गलती की है।'

इस पर अलीमर्दान ज़रा मुस्कराया। बोला—'रामनगर पर इस समय मेरा क़ब्जा नही है, परन्तु भरोसा है कि जल्दी होगा। यह सचमुच समझ में नही आ रहा है कि तुमने बिराटा को रामनगर के खिलाफ किस उपाय से किया। इस रात हमारी छावनी की तरफ एक भी गोला नही आया, यह अचरज की बात है।'

'वह एक लम्बी कहानी है।' रामदयाल ने कहा—'परन्तु बिराटा इस समय कुन्जरसिंह के हाथ में है और उसे यह मालूम हो गया है कि उसका विकट वैरी देवीसिंह रामनगर में जा पहुंचा है। कुन्जरसिंह इस

समय इस भर्रे पर काम कर रहा है कि पहले देवीसिंह को मिटाऊँ, फिर आप पर वार करूँ।'

अलीमर्दान हँसा। बोला—'इतनी बड़ी अक़ल की बात क्या तुमने कुञ्जरसिंह को सुझाई है? फिर गम्भीर होकर उसने कहा—'कुन्जरसिंह हमसे नाहक बुरा मान गया। असल में तुम लोगों ने सिंहगढ़ में उसे हाथ से निकल जाने दिया। वह आदमी साथ में रखने लायक था।' फिर सोचकर बोला—'उसमें बेहद हेकड़ी है। यह भी एक कारण उसके भाग खड़े होने का हुआ।'

रामदयाल ने इस बात को अनसुनी करके कहा—'अब उस सुन्दरी के प्राप्त होने में भी बहुत विलम्ब नहीं है।'

अलीमर्दान बहुत गम्भीर हो गया। बोला—'तुम उस विषय में मेरी सहायता कर सको, तो जैसा मैं कह चुका हू, तुम्हे भारी इनाम दूँगा।'

'अब उसका समय आ गया है।' रामदयाल ने भी गम्भीर होकर कहा—'बिराटा पर धावा बोल दीजिये। देवीसिंह कोई सहायता बिराटा को न दे सकेगा। सीधा मार्ग मैं बतला दूँगा।'

अलीमर्दान मन-ही-मन प्रसन्न हुआ परन्तु बिना कोई भाव प्रकट किये बोला—'आज ही रात को अजमाओ।'

'आज रात को नही।' रामदयाल ने प्रस्ताव किया—'एक आध रोज ठहर जाइये। बिराटा में निस्सीम गोला-बारूद या मनुष्य नही हैं। कुन्जरसिंह को ज़रा थक जाने दीजिये।' फिर नीची आँख करके बोला—'एक ज़रा-सा काम मेरा है। पहले वह हो जाने दीजिये।'

आँख चमकाकर अलीमर्दान ने कहा—'क्या माजरा है भाई?'

बडी नम्रता और लजा का नाट्य करते हुये रामदयाल बोला—'मैंने भी सोचा है, अब अपना घर बसा लूँ। हमारी महारानी आपकी दया से दलीपनगर का राज्य पा जाये और मैं अपनी एक मड़ैया डालकर घर की देख-भाल करूँ, बस, यही प्रार्थना है।'

अलीमर्दान ने हँसकर कहा—'इसमें मेरी सहायता की किस जगह जरूरत पड़ेगी ?'

'उस स्त्री को।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'यथासम्भव मैं कल विराटा से लिवा लाऊँगा। मैं चाहता हूं, यहीं कहीं सुरक्षित स्थान में उसे रख दूं। न मालूम विराटा में कब कितना उपद्रव उठ खड़ा हो। ऐसी हालत में उसका वहां रखना ठीक नहीं है। यहां थोड़ा-सा सुरक्षित स्थान मिल जायगा ?'

'बहुत-सा।' अलीमर्दान बोला—'तुम्हारी महारानी यहीं पर हैं। उनके पास उस स्त्री को छोड़ देना हर तरह उचित होगा।' रामदयाल सोचने लगा।

इतने में अलीमर्दान का एक सरदार आया। उसने रामदयाल को पहचान लिया। बोला—'हुजूर, रानी साहबा के सिर के लिये दो हज़ार मुहरें इनाम के तौर पर राजा देवीसिंह ने रखी हैं।'

अलीमर्दान ने पूछा –'रानी साहबा को मालूम है या नहीं ?'

उसने जवाब दिया—'अभी सवेरे उनके किसी सेवक ने ही बतलाया था।'

'मुझे मालूम था।' अलीमर्दान ने कहा—'और उसके साथ यह भी मालूम हो गया था कि दीवान जनार्दन शर्मा ने भी अपनी तरफ़ से दो सौ मुहरें उसी सिर के लिये इनाम में और रक्खी हैं।'

रामदयाल चकित होकर बोला—'क्या ये लोग पागल हो गये हैं ?'

अलीमर्दान ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। सरदार से कहा—'इस समय विराटा पर गोला-बारी न की जाय। आज दिन भर और रात भर बराबर रामनगर पर ही गोले बरसाओ और लगातार दलीपनगर की सेना पर हमले करो। इसी समय महारानी के पास जाओ। कहना, थोड़ी देर में हाज़िर होता हूं। रामदयाल को भी साथ लेते जाओ।

वे दोनों गये।

[८८]

सरदार और रामदयाल छोटी रानी के डेरे पर पहुंचे। कालपी की सेना की छावनी के एक सुरक्षित कोने में एक छोटा-सा तंबू खडा था। उसी में छोटी रानी अपने कुछ आदमियो के साथ थी। भाग कर जब रामनगर में रानी आई थी तब से अब उनके गौरव में और भी बड़ी कमी हो गई थी।

रामदयाल तम्बू के भीतर चला गया। सरदार बाहर रह गया। भीतर की हीनता रामदयाल को और भी अधिक अवगत हुई। रानी के चेहरे पर अब सहज दृढ़ता और सुलभ कोप के सिवा स्थायी निराशा के भी चिन्ह अङ्कित थे।

रामदयाल को देखकर रानी ने कहा—'इन दिनो कहाँ छिपा था? क्या मेरा सिर काटने के लिये आया है।'

रामदयाल ने कुछ डरते हुये हाथ जोडकर उत्तर दिया—'मैं बिराटा में जासूसी के काम पर नियुक्त था।'

'वहा, क्या जासूसी की?'

देवीसिंह का सेवक बनकर कुछ समय तक रहा। कुँजरसिंह ने कल पहचान लिया। लगभग उसी समय देवीसिंह भी वहा आ गये। उन्होने भी पहचान लिया। दोनो को लड़ा-भिड़ाकर यहा चला आया हू। देवीसिंह रामनगर चले गये हैं और अब कुँजरसिंह रामनगर पर गोले बरसा रहे हैं।'

रानी ज़रा चिड़चिड़ाकर बोली—'जब कालपी की इतनी बड़ी सेना ने रामनगर को न ले पाया, तब बिराटा की तोपे क्या कर पायेगी।'

रामदयाल ने तुरन्त उत्तर दिया—'बिराटा की तोपो का संचालन कुँजरसिंह ऐसा अच्छा कर रहे हैं कि रामनगर में देवीसिंह को रहना कठिन हो जायगा।'

अपनी दशा की याद करके रानी ने कहा—'अब और किसी के हाथ से कुछ होता नही दिखाई देता। परन्तु यदि दिलेर आदमियों की एक छोटी-सी सेना मुझे मिल जाय, तो मैं कुछ करके दिखला दूं। क्या कुंजरसिंह अपना पुराना पागलपन छोड़कर हमारा साथ देने को तैयार हो जायगा ?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'कुञ्जरसिंह का पागलपन अब और बढ़ गया है। जिसे बिराटा में देवी का अवतार या देवी की पुजारिन बतलाया जाता है, वह उनके कुल कर्तव्य की लक्ष्य है। उनके किये जो कुछ हो, सो हो। नवाब की एक बड़ी सेना शीघ्र ही यहां आने वाली है।'

धीरे स्वर में छोटी रानी बोली—'अब वही एक आधार है। मुझे चाहे राज्य न मिले, कुन्जरसिंह राजा हो जाय या कोई और, परन्तु देवीसिंह और वह पिशाच जनार्दन धूल में मिल जायँ। रामदयाल मेरा प्रण न पूरा हो पाया! यदि मेरे मरने के पहले कम-से-कम जनार्दन का सिर काट लाता, तो मुँह माँगा इनाम देती, परन्तु तेरे किये कुछ न हुआ।'

रामदयाल ने उत्साहित होकर कहा—'नही महारानी, जनार्दन का सिर अवश्य किसी दिन काटकर आपके सामने पेश करूँगा।'

रानी एक ओर टकटकी बाँधकर कुछ सोचने लगी।

रामदयाल बोला—'आप बिलकुल अकेली है, मुझे इधर-उधर भटकना पड़ेगा। आज्ञा हो, तो एक लडकी आपके पास कर जाऊँ।'

रानी ने चौककर कहा—'लड़की तेरी कौन है ?'

चालाक रामदयाल भी अपने चेहरे के रङ्ग को फक होने से न रोक सका। बोला—'वैसे तो मेरी कोई नही है, परन्तु कुछ दिनो से जानने लगा हूं इसलिये चाहता हूँ कि आपके पास रह जाय। जब देवीसिह ने दलीपनगर के सिहासन की ओर आँख नहीं डाली थी, उसके साथ विवाह करना चाहते थे, जब वह सिहासन खसोट लिये, तब इस बेकारी का त्याग कर दिया। दु:खिनी है और देवीसिह से बहुत नाराज है।'

रानी ने नाम इत्यादि और थोड़ी-सी ऊपरी पूछ-ताछ के बाद रामदयाल को गोमती के लिवा लाने की अनुमति दे दी। कहा—'उसे वास्तव में देवीसिंह ने परित्याग कर दिया है ?'

'हा, महाराज।'

'परन्तु मेरे पास रहने में उसे और भी अधिक कष्ट होगा। शायद किसी समय उसके प्राणो पर भी आ बने।'

'मैं भी तो आपकी सेवा में रहूंगा।'

'और तुम्हारा प्रण ?'

'सदा सेवा में न रहूंगा—प्रायः रहा करूंगा।'

रानी बोली—'तुम उसे लिवा लाओ, परन्तु दूसरे डेरे में रहेगी और उसके ऊपर चौकसी भी रक्खी जायगी। किसी दिन शायद देवीसिंह उसे अपनाने के लिये तैयार हो जाय या शायद किसी दिन वही देवीसिंह के पास दौड जाय और हम लोगो को यो ही किसी आकस्मिक विपद् में डाल जाय।'

रामदयाल ने कहा—'मेरे सामने ही देवीसिंह ने उस स्त्री का घोर अपमान किया था। वह अचेत होकर गिर पड़ी थी। देवीसिंह ने उससे कहा था कि मै तो तुम्हे पहचानता नही हूँ।'

रानी बोली—'तू उसे ले आ। आजकल और कोई साथ में नही है। उसके साथ कुछ मन बहलेगा।'

रामदयाल वहां कुछ समय ठहर कर चला गया।

सरदार से कहता गया—'अब हम सब लोगो की मुरादे पूरी होंगी।'

वह बोला—'इन्शा अल्लाह।'

[८६]

रामदयाल विराटा के उत्तर वाले जङ्गल और भरकों में होकर इधर उधर फैले हुये भाडेर सैन्यदल की आंख बचाता हुआ अँधेरे में विराटा पहुचा। विराटा के सिपाही उसे पहचानने लगे थे, इसलिये प्रवेश करने में दिक्कत नही हुई। सीधा कुजरसिंह के पास पहुंचा। बोला—'मैं गोमती के ठहरने का उचित प्रबन्ध कर आया हूँ।'

'वहाँ जाने की वह अभिलाषा रखती हो, तो मै न रोकूगा।' कुंजर ने कहा।

रामदयाल ज़रा चकित होकर बोला—'उस दिन आप ही ने कहा था कि इन लोगो के ठहरने का प्रबन्ध कही बाहर कर देना चाहिये, सो मैंने कर दिया। अब यदि दूसरी मर्ज़ी हो, तो मुझे कहना ही क्या है?'

कुँजरसिंह ने झुँझलाकर कहा—'अच्छा, अच्छा। ले जाओ उसे, जहां वह जाना चाहे और कोई साथ नही जायगा। कहां ले जाओगे?'

रामदयाल इस प्रश्न के लिये तैयार था। बोला—'यहां से चेलरा थोडी दूर है। वहां एक ठाकुर रहते हैं। उनके यहां प्रबन्ध कर दिया है। मैंने तो सबके लिये ठीक-ठाककर लिया है। यदि सब लोग वही चले चलें, तो बहुत अच्छा होगा।'

'सब लोग नही जायेंगे, पहले ही बतला चुका हूं और यदि उन लोगों की इच्छा होगी, तो मैं साथ पहुँचाने चलूगा।' कुजरसिह ने कहा। फिर एक क्षण ठहरकर बोला—'यदि अकेली गोमती जायगी तो भी मै साथ चलूंगा।'

रामदयाल ने आहत निर्दोषिता के स्वर में कहा—'मैं मार्ग बतलाये देता हूँ। ठाकुर का नाम प्रकट किये देता हूं। आप किसी को साथ लेकर गोमती को या जो जाना चाहे, उसे लिवा जाइये। यदि मेरी बात में कोई फ़र्क निकले, तो जो जी चाहे, सो कर डालियेगा।'

इस पर कुञ्जरसिंह रामदयाल को लेकर खोह पर गया।

कुञ्जर ने रामदयाल के आने का कारण बतलाया। ज़रा विचलित स्वर में कुमुद से कहा—'आप यदि जाना चाहे, तो इस सङ्कटमय स्थान से चली जायें। मैं पहुंचाने के लिये चलूंगा।'

कुमुद ने दृढता, परन्तु कोमलता के साथ उत्तर दिया—'बिराटा के योद्धाओ की सफलता के लिये मैं यही रहकर दुर्गा से प्रार्थना करूंगी। गोमती को अवश्य बाहर भिजवा दीजिये। उस दिन से यह बड़ी अस्वस्थ रहती है।'

गोमती की इच्छा जानने के लिये कुन्जर ने उसकी ओर दृष्टिपात किया।

गोमती ने कुमुद की ओर देखकर कहा—'मुझे मृत्यु का कोई भय नही है। प्राणो के बनाये रखने की कोई कामना नही है। कही भी रहूं, सर्वत्र समान है। यदि बहिन के पास ही रह कर मेरा प्राणात होता, तो सब बात बन जाती।' फिर ज़रा नीचा सिर करके बोली—'परन्तु अभी मरना नही चाहती हूं।'

'कुमुद ने उसकी ओर स्नेह की दृष्टि से देखा।'

एक क्षण बाद गोमती बोली—'ऐसी भली छत्रच्छाया छोड़कर कही भी जाना पागलपन है, परन्तु यहां और अधिक ठहरने से मैं सचमुच बावली हो जाऊंगी। मन्दिर में अब धँसा नही जाता, खोह में पड़े रहने से अनमनापन बढता जाता है, इसलिये रामदयाल के साथ जहा ठीक होगा, चली जाऊँगी। केवल एक विनती है।'

दयार्द्र होकर कुमुद ने प्रश्न किया—'वह क्या है बहन ?'

उस लड़की का गला रुँध गया। बोली—'केवल यह कि मुझसे जो कुछ भी अपराध हुआ हो, वह क्षमा हो जाय।'

कुमुद ने उसे कन्धे से लगा लिया।

इसके बाद कुमुद ने कुन्जर से कहा—'आप इस किले की रक्षा कर रहे हैं। कैसे कहू कि आप इस बेचारी को सुरक्षित स्थान तक पहुंचा आवें ?'

'मैं अवश्य जाऊँगा और दुर्गा की कृपा से अभी लौटूंगा।' कुन्जरसिंह ने उत्तर दिया।

रामदयाल अभी तक चुपचाप था। उसने प्रस्ताव किया—'इन्हे पुरुष का वेष धारण करके चलना चाहिये।'

इस प्रस्ताव को कुंजरसिंह और गोमती दोनो ने स्वीकृत किया।

[६०]

कुञ्जरसिंह गोमती को लेकर गढ के उत्तर की ओर से जाने की दुविधा मे था। वह सोचता जाता था कि रामदयाल के ऊपर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है परन्तु कुमुद ने कहा था कि साथ जाओ, इसलिये जा रहा था। निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचाकर लौटने में समय लगेगा और इस बीच में गढ की समस्या कुछ उलट-पलट गई, तो क्या होगा ? यह बात उसके मन में गड़ रही थी।

उसी समय सबदलसिंह मिला। कुञ्जर से उसने पूछा—'कहाँ जा रहे हो ?'

उसने उत्तर दिया—'यह एक निरीह स्त्री गढ से बाहर जाना चाहती है। चेलरे तक पहुंचाने जा रहा हूँ।'

सबदलसिंह बोला—'लौटने में बहुत देर लग जायगी। तब तक अगर यहाँ आपकी ज़रूरत पड़ गई, तो क्या होगा ? साथ में यह आदमी तो है। दो के जाने की क्या ज़रूरत है। इस स्त्री से आपका कोई नाता है ?'

कुञ्जर ने झिझक के साथ उत्तर दिया—'कोई भी नाता नही है। कहा गया था, इसलिये जा रहा हूं।'

रामदयाल तुरन्त बोला—'मेरे बाहु-बल और विवेक का यदि भरोसा किया जाय, तो मैं अकेला ही इस काम को निभा सकता हूं।'

कुञ्जरसिंह को उत्तर देने में हिचकते हुये देखकर सबदल ने रामदयाल से कहा—'तुम्हारा इनसे कोई नाता है ?'

'क्या बतलाऊँ।' रामदयाल ने उत्तर दिया—'इसे वह जानती हैं, मैं सेवक-मात्र हूं।'

सबदल ने कुछ विनम्र और कुछ अधिकार-युक्त स्वर में कुञ्जर से कहा—'राजा, आप न जा सकेंगे। देवी ने मानो आप ही को तोपों पर

नियुक्त किया है। थोड़े समय के लिये भी आपका यहाँ से चला जाना न-मालूम कब हम सब लोगो के लिये भयंकर हो उठे।'

कुञ्जर असमंजस में पड़ गया।

एक क्षण बाद ही एक आकस्मिक घटना ने उसे निर्णय के किनारे पहुँचा दिया। उसी समय एक ओर से नरपति दौड़ता हुआ आया। घबराहट में बोला—'मन्दिर की दालान पर एक गोला अभी आकर गिरा है। दीवार का एक हिस्सा टूट गया है। देखिये, धूल उड़ रही है। शायद हमारी खोह पर भी गोले पड़े।'

कुञ्जर ने भी देखा।

कुन्जर ने कहा—'आप खोह के भीतरी हिस्से में रहे। मै अपनी तोपो की मार से उधर की तोपो के मुंह बन्द किये देता हू।' उसी क्षण रामदयाल से बोला—'तुम इन्हे सुरक्षित स्थान में ले जाओ। मैं न जा सकूंगा। इन्हे कोई कष्ट न होने पावे। खबरदार!'

रामदयाल आश्वासन देता हुआ गोमती के साथ चला गया।

[९१]

गोमती को रामदयाल सहारा देता हुआ, एक तरह से घसीटता हुआ अलीमर्दान की छावनी की ओर ले चला।

खैर, मकोय और हीस के काटेदार जङ्गल में होकर चलना पड़ा। ऊबड़-खाबड भूमि और भरको की भरमार में यात्रा और भी कष्ट-पूर्ण हो गई। ऊपर से गोली-गोले कभी-कभी समीप आकर ही गिरते थे। काँटों के मारे रामदयाल का शरीर जगह-जगह से लोहू-लुहान हो गया। पसीने के साथ मिलकर रक्त पतली धारो में बह रहा था। परन्तु वह अर्द्ध-चेतना गोमती को अपनी थकी हुई बाहो में कसे हुआ था। उसके जो अङ्ग रामदयाल के शरीर द्वारा सुरक्षित नही थे, वे कही कही कांटों से छिल गये थे और रामदयाल को शायद उसी की अधिक चिन्ता मालूम होती थी। परन्तु बिलकुल थक जाने के कारण एक जगह वह वैठ गया। गोमती भी रामदयाल के पास ही वैठ गई।

थोड़ी देर तक दोनों कुछ न वोले—जब रामदयाल की हांफ शान्त हो गई। तब धीरे परन्तु भर्राये हुये स्वर में बोला—'बहुत कष्ट हुआ है, क्यो ?'

गोमती ने जरा रीती दृष्टि से रामदयाल की ओर देखा, परन्तु उत्तर कुछ न दिया।

थोड़ी देर और चुप रहने के बाद रामदयाल वोला—'आपके शरीर में काँटे अटक गये होंगे, उन्हे निकाल दूँ।'

गोमती ने कहा—'कही इधर-उधर पैरों में भले हों, उन्हें ठिकाने पर पहुंचकर निकाल लूँगी, अभी रहने दो।'

रामदयाल को अपने काँटे भी काफी कसक रहे थे। गोमती के न पूछने पर भी उसने कहा—'मेरे शरीर को तो काँटों ने छलनी कर दिया है। मै नही जानता था कि इस मार्ग मे इतना बुरा जङ्गल मिलेगा।' और अपने लोहू-लुहान हाथों को गोमती के सामने करके देखने लगा। गोमती ने भी देखा।

रामदयाल ने कहा—'अगर कुञ्जरसिंह आते, तो यहां हम लोगों की क्या सहायता कर सकते थे ? कांटो में फँसकर मुझे ही बुरा-भला कहते हैं। खैर, उसे भी सह लेता, क्योंकि कुछ उनके लिये तो मैं सब कर नहीं रहा हूं।'

गोमती बोली—'मैं अब पैदल चलूँगी। जैसे तुम इतना कष्ट भोग सकते हो, वैसे ही मैं भुगत लूँगी।'

रामदयाल ने एक आह भर कर कहा—'मैं काटो ककडो में घिसटना कैसे देखूँगा।

'तुम भी तो थक गये हो ?'

'थक तो अवश्य गया हूँ, परन्तु अभी मरा तो नहीं हूँ।'

गोमती थोडी देर चुप रहकर बोली—'थोड़ी दूर चलकर देख लूं। यदि चलते न बना, तो सहारा ले लूँगी।'

उसने आग्रह के साथ गोमती का हाथ पकडकर कहा—'मेरे गठीले शरीर को देखो। इस बहते हुये रक्त को देखो। पैरो की उङ्गलियां ठोकरों से फट गई हैं, उन्हे भी देख लो, अब मालूम हो जायगा कि पैदल चलना कितनी आफत का काम है।'

गोमती रामदयाल के हाथ में हाथ दिये रही, परन्तु उसने वह सब कुछ नहीं देखा।

रामदयाल ने यकायक गोमती का वह हाथ झटककर, अपने हृदय पर चिपटाकर रख लिया और असाधारण आवेश के साथ बोला—'और मेरे घायल हृदय को देखो।'

गोमती अपने हाथ को रामदयाल की छाती पर कुछ क्षण रक्खे रही और फिर उसने खीच लिया।

रामदयाल ने उसी आग्रह के स्वर में कहा—'देखोगी ?'

गोमती ने कोई उत्तर [illegible] दिया।

रामदयाल कहता गया—'मैं पापी हूं, नीच हूँ, बुरा हूं और सभी कुछ हूं। मेरे राजा ने जैसा कुछ मुझे बनाया, वह मैं सब हूं, परन्तु तुम्हारे लिये मैं कुछ और हूं।'

आवेश के अतिरेक में एक क्षण के लिये वह रुद्ध हो गया, परन्तु अपने ऊपर शीघ्र अधिकार स्थापित करके बोला—'मेरे लिये केवल दो मार्ग हैं—एक तो यह कि तुम्हे किसी सुरक्षित स्थान में पहुंचाकर तुरन्त मर जाऊँ, या खैर, तुम्हारे मुँह की बात सुनकर फिर कुछ कहूंगा।'

गोमती ने पूछा—'कहाँ चलोगे ?'

'ऐसे स्थान पर, जहां तुम्हें किसी तरह का कष्ट न हो सकेगा।'

'मैं लौट न जाऊँ ?' गोमती ने क्षीण स्वर में प्रस्ताव किया।

रामदयाल ने कहा—'उस ककरीली भूमि पर बैठे बैठे कष्ट होने लगा होगा, वहां मत बैठो।'

गोमती बोली—'अच्छा, जहां चलना हो, चलो। भाग्य में जो कुछ होगा, देखूँगी।' खड़ी हो गई। रामदयाल उसका हाथ पकड़कर चलने लगा। थोड़ी दूर चलकर वह फिसल कर गिर पड़ी। अधिक चोट आ जाती, परन्तु रामदयाल ने सम्भाल लिया। तो भी उसका घुटना छिल गया। रामदयाल ने उसे उठाकर कन्धे से लगा लिया। बोला—'अब पैदल नही चलने दूँगा। क्या कहती हो ?'

गोमती बोली—'क्या कहू ?'

रामदयाल ने गोमती को उठा लिया। रामदयाल को जान पड़ा, जैसे उसकी सब थकावट यकायक कही चल दी हो। उसे अपने एक-एक रोम में विलक्षण बल प्रतीत होने लगा। गोमती को हृदय से सटाकर रामदयाल ने प्रश्न किया—'तुम यदि समझो कि मैं तुम्हारे साथ कोई घात कर रहा हूं तो इस क्षण या जब चाहो, मुझे छुरी के घाट उतार देना। परन्तु मैं जीते-जी तुम्हे अपने से अलग न होने दूँगा।'

थोड़ा-सा स्थान ज़रा साफ-सुथरा मिल जाने से गोमती को बात-चीत का सुभीता मिला। बोली—'यहाँ जगह चलने लायक है। मुझे पैदल ही चलने दो।'

रामदयाल ने काँपते हुये कठ से कहा—'मै अपने को जैसा इस समय पा रहा हूँ वैसा कभी न पाया था। मैं बडी स्वच्छता के साथ अपने जीवन को विताऊँगा। जो कुछ मैने किया है, उसे भूल जाऊँगा और तुम्हारे योग्य वनूँगा। तुम मुझे अवसर दोगी ?'

गोमती ने थोड़ी देर कोई उत्तर नही दिया। फिर बोली—'यहा से कहां चलोगे ?'

रामदयाल ने तुरन्त उत्तार दिया—'मै छोटी रानी के पास जाना चाहता था, परन्तु अव मैं सोचता हू कि वहाँ न जाऊँ। किसी ऐसे स्थान पर चलूँ, जहां हम दोनो निरापद रह सके।'

गोमती ने अनुरोध के-से स्वर में कहा—'मैं उन्ही के पास चलना चाहती हूँ। मैं अभी युद्ध-भूमि छोड़ना नही चाहती।'

'वहा संकट में पड जाने का भय है।'

'तुम भी तो वहाँ रहोगे ?'

'रहूगा। परन्तु गोला-बारी हो रही है। ऐसा न हो कि तुम बिछुड़ जाओ।'

'वही चलो। मैं वही कुछ कर सकूँगी।'

रामदयाल ने कुछ क्षण पश्चात इस प्रस्ताव को मान लिया। फिर यकायक उसे हृदय के पास समेटकर बोला—'गोमती, तुम मेरी होकर रहना। रहोगी न ?'

गीमती ने कोई उत्तर नही दिया।

[९२]

रामदयाल को बहुत चक्कर काटकर चलना पड़ा। थोड़ी देर बाद गोमती थकावट के मारे रामदयाल की बाहों में सो गई या अचेत हो गई। रामदयाल थोड़ी दूर चल-चलकर दम लेने के लिये रुक जाता, परंतु गोमती को गोद से न उतारता।

जब शिविर थोड़ी दूर रह गया और सवेरा होने में भी बहुत विलम्ब न था, रामदयाल एक जगह कुछ समय के लिये थम गया। उसने गोमती को गोद में आराम के साथ लिटाया। गोमती सोती रही।

रामदयाल ने उसे जगाया।

गोमती ने पूछा—'कितनी दूर निकल आये होगे? अभी तो जंगल में ही मालूम पड़ते हैं?'

रामदयाल ने उत्तर दिया—'बहुत दूर निकल आये हैं। उद्दिष्ट स्थान निकट आ गया है। कुछ कष्ट तो नही है?'

'अब मै पैदल चलूँगी। खूब गहरी नीद आ जाने के कारण फुर्ती मालूम होने लगी है। छोड़ दो।'

'अभी नही छोड़ूँगा। पहले एक बात बतलाओ।'

'क्या?'

'तुम मुझे प्यार करती हो?'

गोमती ने कोई उत्तर नही दिया।

रामदयाल ने और भी आवेश के साथ कहा—'गोमती, मैं राजा तो नही हूं, परन्तु मेरा हृदय राजमुकुटो के ऊपर है। उसे मै तुम्हारे चरणों में रखता हूं।'

गोमती धीमे स्वर में बोली—'तुम अपने राजा के सम्मुख जब जाओगे, क्या कहोगे?'

'मैं उनके सम्मुख अब कभी नही जाऊँगा। बहुत दिनों से गया भी नही। अब तो मै छोटी रानी के पास रहूँगा, यदि तुम भी वहाँ रहना पसन्द करोगी तो; नहीं तो; इस विशाल जगत में कही भी हम लोग अपने लिये ठौर ढूँढ़ लेंगे।'

'रानी के पास किसके हित के लिये जा रहे हो ? किसके होकर जा रहे हो।'

'अपने हित के लिये और अपने होकर। मै इस समय अपने और तुम्हारे सिवा और किसी चीज़ को नही देख रहा हूँ।'

'मुझे राजा से एक वार मिलना है।'

'किसलिये ?' रामदयाल ने ज़रा चौककर पूछा।

'दो वातें कहना चाहती हूँ। उस विश्वासघाती को कुछ दंड भी दिया चाहती हूं, यदि सम्भव हुआ तो।'

रामदयाल ने सतोष की सांस लेकर पूछा—'इसके बाद क्या करोगी ?'

गोमती ने उत्तर दिया—'इसके बाद जो कुछ भाग्य में लिखा है, होगा। कुमुद के ही पास चली जाऊँगी।'

रामदयाल ने कुछ क्षण चुप रहने के बाद कहा—'यदि इस लड़ाई से वचने के बाद कुञ्जरसिंह और कुमुद का स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध हो गया, तो तुम वहां क्या करोगी ?'

गोमती चुप रही।

रामदयाल कहता गया—'कुमुद और कुञ्जर में प्रेम है, इसे मैं भी जानता हूँ और तुम भी। प्रेम का जो आवश्यक परिणाम है, यह भी होकर रहेगा, यानी वे दोनों अपना एक कुटुम्ब बनावेंगे। क्या हम लोग ऐसा नही कर सकते ? तुम्हारा शायद यह खयाल है कि मैं तो केवल एक नौकर-मात्र हूँ। मैं पूछता हूँ, हृदयो में क्या कोई भेद होता है ? और फिर मेरे पास सम्पत्ति भी काफी होगी। इसमें सन्देह नही कि तुम महारानी न कहला सकोगी, परन्तु तुम सदा मेरी रानी होकर रहोगी, इसमें भी कोई सन्देह नही। राजा ने जैसा बर्ताव तुम्हारे साथ किया है, उसमें क्या तुम यह आशा करती हो कि वह तुम्हे अब ग्रहण कर लेंगे ? तुमने उन्हे दण्ड देने के विषय में जो प्रस्ताव किया है, वह महज़ अपने को धोखा देना है तुम उन्हे कोई दण्ड न दे सकोगी। जिस समय उनके

सामने जाकर उन्हें कोई उल्टी-सीधी सुनाओगी, उस समय वह तुम्हारा और अधिक अपमान करेंगे। हां, मैं दण्ड भी दे सकता हूँ, परन्तु तुम कहो, तो।'

गोमती ने कहा—'कुमुद-जैसी स्त्री अब कभी न मिलेगी।' और एक लम्बी आह खींची।

रामदयाल ने साँस खींचकर कहा—'तुम अब भी उधर का ही ध्यान कर रही हो? यदि तुम्हारी इच्छा वहा फिर लौट चलने की हो, तो आज दिन-भर यही भरकों में छिप जाओ, सन्ध्या-समय में तुम्हें वही पहुँचा दूँगा और अपने को किसी तोप के गोले के नीचे खपा दूँगा।' वह सूक्ष्मता के साथ गोमती की ओर देखने लगा।

गोमती को चुप देखकर ज़रा जोश के साथ रामदयाल बोला—'बोलो गोमती। मैं इसके लिये भी तैयार हूँ। सवेरा होने वाला है। दिन में बाहर चलना-फिरना अनुचित होगा। यदि काफी रात होती, तो मैं इसी समय विराटा लौट पड़ता, यद्यपि सारा शरीर चूर-चूर हो गया है और काँटों के मारे बिच्छू के डको-जैसी ताड़ना हो रही है।'

गोमती ने सिर नीचा करके कहा—'मैं तुम्हारे साथ चलूँगी। अब विराटा नही जाऊँगी।'

रामदयाल का शरीर कांप उठा। उसने तुरन्त असहाय गोमती को उठाकर अपने गले से लगा लिया। गोमती की आंखो से आँसू बह निकले।

[९३]

उन दिनों छावनियों के आस-पास पहरो की वह कडाई न थी, जो आजकल की रण-क्रिया में दिखलाई पड़ती है। इसलिये रामदयाल और गोमती को छावनी के बाहर के थानेवालो ने सबेरा हो जाने के बाद देखा। कुछ रोक-टोक और कठिनाई के बाद रामदयाल गोमती को लिये हुये छोटी रानी के तम्बू के पास आ खड़ा हुआ। रानी उन दोनों को देखकर प्रसन्न नही हुईं।

रामदयाल से कहा—'इस बेचारी को इस घोर संग्राम में क्यों ले आया ?'

रामदयाल ने निर्भयता से उत्तर दिया—'गोमती की रक्षा और कही हो ही नही सकती थी। इनका यहा बाल भी बांका न हो सकेगा। आपकी रावटी में रहेगी यह।'

रानी की आंखो से चिनगारी-सी छूट पड़ी, परन्तु गोमती के म्लान मुख और दुर्दशा-ग्रस्त नेत्रो को देखकर असाधारण सयम के साथ बोली—'अच्छा इस लड़की को मेरे पास छोड दो। मैं इसकी रक्षा करूँगी। तेरा कार्य-क्रम अब क्या है ?' गोमती को रानी ने अपने निकट बिठला लिया।

रामदयाल का तू-तड़ाक का यह वार्तालाप आज अपूर्व श्रुति-कटु जान पड़ा, परन्तु उसकी चतुरता ने उसका साथ न छोडा। कहने लगा—'जो आपका कार्य-क्रम है, वही मेरा भी। जनार्दन शर्मा को ठिकाने लगाना है, यही न ?'

रामदयाल की बातचीत के सक्षिप्त ढङ्ग से रानी ज़रा चकित हुई। रोष में आकर बोली—'तू इस लड़की को सँभाले रहना। मैं जनार्दन का सिर काटूगी।'

ज़रा लज्जित स्वर में रामदयाल ने उत्तर दिया—'देख-भाल के लिये तो मैं इन्हे यहाँ लाया ही हूं। यह हथियार चलाना जानती हैं। आपको इनसे सहायता मिलेगी, परन्तु जनार्दन से लड़ने के लिये न तो आपको जाना पड़ेगा और न इन्हे, मैं जाऊँगा।'

रानी ने बेधड़क गोमती से पूछा—'तुम्हारा इसका क्या नाता है ?'

गोमती के होठ फडके, माथे की नसे फूल गई और चेहरा लाल हो गया। कुछ कहने को हुई कि गला रुँध गया।

रामदयाल ने दबे हुये स्वर में तुरन्त उत्तर दिया—'इस समय मैं इनका केवल रक्षक हूँ। इससे ज्यादा आपको जानने की ज़रूरत भी क्या है ?'

रानी ने सिंहनी की दृष्टि से रामदयाल की ओर देखा। फिर यथा-संभव नरम स्वर में गोमती से बोली—'तुम ठीक-ठीक बतलाओ, यह तुम्हारा सत्यानास करने को तो नही लिवा लाया है ? यह बड़ा झूठा और फ़रेबी है।'

रामदयाल ने कुपित कण्ठ से कहा—'ठीक है महाराज ! मेरी सेवाओं का यह पुस्कार तो मिलना ही चाहिये। मान लीजिये, मै इनका सत्यानास करने को ही यहां लिवा लाया हूं, तो इनकी जितनी दुर्दशा हो चुकी है, उससे और अधिक तो होगी नही, और यदि मै आपको बहुत खलने लगा हूँ, तो इसी समय चले जाने को प्रस्तुत हूँ।'

गोमती ने स्पष्ट स्वर में कहा—'मैं रानी के ही पास रहूंगी।'

रानी नरम पड़ गईं। बोली—'रामदयाल, तुम हमें ऐसे अवसर पर छोड़कर न जाओगे, तो कब जाओगे ? इसीलिये तो तुम्हे झूठा और फ़रेबी कहा। छुटपन से तुम्हें देखा है। छुटपन से तुम्हे गालियां दी हैं। अब क्या छोड़ दूँगी ?'

सिर नीचा कर के रामदयाल ने अपने सहज स्वभाविक ढङ्ग से उत्तर दिया—'सो आपके सामने सदा सिर झुका है। आपको जब कभी रंज या क्रोध में देखता हूं, बुरा लगता है। मै आपको धार में छोड़कर कैसे जा सकता हूं ? आपकी सहायता के लिये ही गोमती को लिवा लाया हूं। आपका इनसे मन-बहलाव होगा और यदि लडाई के समय आपके ऊपर कोई सङ्कट उपस्थित होगा, तो मेरे अतिरिक्त यह भी आपकी सहायक होंगी।'

इसके बाद गोमती को कुछ संकेत करता हुआ रामदयाल छावनी में अलीमर्दान के पास चला गया। अपना जितना अपमान आज उसने अवगत किया, उतना जीवन में पहले कभी न किया था।

[९४]

अलीमर्दान के शिविर में रामदयाल और गोमती के पहुच जाने के बाद ही विराटा की गढी पर गोला-बारी बढ गई। कुञ्जरसिंह की तोपें उत्तर देने लगी। परन्तु कुञ्जरसिंह ने एक घण्टे के भीतर ही देख लिया कि समस्या अत्यन्त विकट हो गई है और अधिक समय तक विराटा की गढी को सुरक्षित रखना सभव न होगा।

तोपो के ऊपर अपने चुस्त तोपचियो को छोड़कर वह कुमुद के पास गया। खोह में इस समय नरपति न था।

कुञ्जरसिंह ने धीमे स्वर में कहा—'विदा माँगने आया हूँ।'

कुमुद उनके असाधारण तने हुये नेत्र देखकर चकित हो गई। कोमल स्वर में पूछा—'क्यो? क्या—'

'अन्तिम विदाई के लिये आया हूं। आज की सन्ध्या देखने का अवसर मुझे न मिलेगा। ४-६ घण्टे में यह गढ ध्वस्त हो जायगा और रामनगर की सेनायें प्रवेश करेंगी। कुछ डर मत करना। खोह में ही बनी रहना। कोई सेना आपका अपमान नही कर सकेगी। यदि आप भी कल रात को बाहर चली जाती, तो बड़ा अच्छा होता।'

कुमुद कुछ क्षण चुप रही। स्वर को संयत करके बोली—'दुर्गा कल्याण करें, विश्वास रखिये।'

'दुर्गा और आपका विश्वास ही तो मुझसे काम करवा रहा है।' कुञ्जरसिंह ने कहा—'इसीलिये आपसे इसी समय बिदा मागने आया हू—दुर्गा से मरते समय विदा मागूंगा।' कुंजर मुस्कराया। मुस्कराहट क्षीण थी, परन्तु उसमे न मालूम कितना जल था।

कुमुद की आँखे तरल हो गईं। ऐसी शायद ही कभी पहले हुई हो; जैसे गुलाब की पखुडी पर बडे-बडे ओस-कण ढलक आये हो।

उन्हे किसी तरह वही छिपाकर कुमुद ने कम्पित स्वर में कहा—'मै आपके साथ चलूंगी।'

'मेरे साथ!' सिपाही कुंजर बोला—'नही कुमुद, यह न होगा। गोलो की वर्षा हो रही है। उस सकट में आपको नही जाने दूंगा।

'मै चलूँगी ।'

कुमुद की आँखो में अब आँसू न था। कुंजर ने दृढ़ता के साथ कहा—'देवीसिंह की महत्त्वाकांक्षा पर मुझे बलिदान होना है आपको नही आप इसी खोह में रहे ।'

'मैं दुर्गा के पास प्रार्थना करने जाती हूं ।' कुमुद बोली।

उसने पैर उठाया ही था कि एक गोला मन्दिर की छत पर और आकर गिरा और वह ध्वस्त हो गई।

कँजर ने कहा—'वहाँ मत जाइये, दुर्गा का ध्यान यहीं करिये। मैं अब जाता हूं। मरने के पहले मे देवीसिह को अपनी तोपो की कुछ करामात दिखलाना चाहता हू। उसे विजय सस्ती नही पड़ने दूँगा।'

'अभी मत जाओ।' क्षीण स्वर में कुमुद ने कहा—'ज़रा ठहर जाओ। गोला-बारी थोड़ी कम हो जाने दो।' और बड़े स्नेह की दृष्टि से कुमुद ने कुंजर के प्रति देखा।

कुँजर उत्साह-पूर्ण स्वर में बोला—'मैं अभी थोड़ी देर और नहीं मरूँगा। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि देवीसिंह के सिर पर तलवार बजाकर फिर मरूँगा।'

कुमुद चुप रही। जल्दी-जल्दी उसकी साँस चल रही थी। आँखें नीची किये खड़ी थी। कुञ्जर भी चुप था। तोपों की घूम-घड़ाम आवाजें आ रही थी।

कुञ्जर ने पूछा—'तो जाऊँ ?' परन्तु गमनोद्यत नही हुआ।

कुमुद बोली—'जाइये, मैं पीछे-पीछे आती हूँ।'

'तब मै न जाऊँगा।'

'यर मोह क्यो ?'

'मोह ?' कुञ्जर ने ज़रा उत्तेजित होकर कहा—'मोह ! मोह ! न था। अब मरने का समय आ रहा है, इसलिये मुक्त होकर कह डालूँगा कि क्या था......।' परन्तु आगे उससे बोला नही गया।

कुमुद उसकी ओर देखने लगी।

कुछ क्षण बाद कुञ्जर ने कहा—'तुम मेरे हृदय की अधिष्ठात्री हो, मालूम है ?'

कुमुद का सिर न-मालूम ज़रा-सा कैसे हिल गया। आँखे फिर तरल हो गईं।

'तुम मेरी हो ?' आवेश-युक्त स्वर में कुञ्जर ने प्रश्न किया।

कुमुद ने कुछ उत्तर न दिया।

कुंजर ने उसी स्वर में फिर प्रश्न किया—'मै तुम्हारा हूँ ?'

कुमुद नीचा सिर किये खड़ी रही।

कुञ्जर ने बडे कोमल स्वर में प्रस्ताव किया—'कुमुद, एक बार कह दो कि तुम मेरी हो और मैं तुम्हारा हू—सम्पूर्ण विश्व मानो मेरा हो जायगा और देखना, कितने हर्ष के साथ में प्राण विसर्जन करता हूँ।' कुञ्जर को यह न जान पडा कि वह क्या कह गया।

कुमुद ने सिर नीचा किये ही कहा—'आप अपनी तोपो को जाकर सँभालिये। मैं दुर्गाजी से आपकी रक्षा और विजय के लिये प्रार्थना करती हूँ।'

कुञ्जर ने हँसकर कहा—'उसके विषय में तो दुर्गा ने पहले ही कुछ और तय कर दिया है।'

किसी पूर्व-स्मृति ने कुमुद के हृदय पर एकाएक चोट की। दुर्गा ने पहले ही कुछ और तय कर दिया है।'

इस वाक्य ने कमुद के कलेजे में बर्छी-सी छेद दी। वह विस्फारित लोचनो से कुंजर की ओर देखने लगी। चेहरा एकाएक कुम्हला गया। होठ कांपने लगे। उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे लड़खडाकर गिरना चाहती हो। सहारा लेकर बैठ गई। दोनो हाथो से सिर पकड लिया।

कुंजर ने पास आकर उसके सिर पर हाथ रक्खा—'क्या हो गया है कुमुद ? घबराओ मत। तुम दूसरो को धैर्य बँधाती हो। स्वयं अपना धैर्य स्थिर करो। सम्भव है, मै आज की लड़ाई में बच जाऊँ।'

कुमुद फिर स्थिर हो गई। बोली—'मैं आज लड़ाई में तुम्हारे साथ ही रहूगी। मानो।'

कुञ्जर कुछ क्षण कोई उत्तर न दे पाया। कुमुद ने फिर कहा—'वहाँ पास रहने से आपके कर्तव्य-पालन में विघ्न होगा और मैं दुर्गा की प्रार्थना न कर सकूँगी।'

कुञ्जर बोला—'केवल एक बात मुँह से सुनना चाहता हूँ।

बहुत मधुर स्वर में कुमुद ने पूछा—'क्या ?'

'तुम मुझे भूल जाना।'

नीचा सिर किये हुये ही कुमुद ने कुँजर की ओर देखा। थोड़ी देर देखती रही। आँखों से आँसुओ की धार बह चली।

कम्पित स्वर में कुन्जरसिंह ने पूछा— भुला सकोगी ?'

कुमुद के होठ कुछ कहने के लिये हिले, परन्तु खुल न सके। आंखों से और भी अधिक वेग से प्रवाह उमड़ा।

कुन्जर की आंखें भी छलक आईं! बड़ी कठिनाई से कुन्जर के मुँह से ये शब्द निकले—'प्राण प्यारी कुमुद, सुखी रहना। एक बार मेरी तलवार की मूठ छू दो।'

तुरन्त कुमुद उसके सन्निकट आकर खड़ी हो गई। एक उसका कोमल कर कुन्जर की कमर में लटकती हुइ तलवार की मूठ पर जा पहुँचा और दूसरा उसके उन्नत भाल को छूता हुआ उसके कन्धे पर जा पड़ा।

ऊपर गोले सायँ-सायँ कर रहे थे। तोपचियो ने कुन्जरसिंह को पुकारा। कुन्जर ने अपना एक हाथ कुमुद की पीठ पर धीरे से रक्खा और फिर ज़ोर से उसे हृदय से लगा लिया। कुमुद ने अपना सिर कुन्जर के कन्धे पर दिया।

तोपचियो ने कुन्जरसिंह को फिर पुकारा।

कुन्जरसिंह कुमुद से धीरे से अलग हुआ। बोला—'यही रहना, बाहर मत आना। सुखी रहना।' कुमुद कुछ न बोल सकी।

खोह से बाहर जाते हुये पीछे एक बार मुड़कर कुन्जर ने फिर कहा—'अगले जन्म में फिर मिलेंगे—अवश्य मिलेंगे अर्थात् यदि आज समाप्त हो गया तो।'

[९५]

उसी दिन राजा देवीसिंह ने देखा कि गोलाबारी केवल बिराटा की तरफ से ही नही हो रही है, किन्तु अलीमर्दान की तोपे गोले उगल रही हैं।

रामनगर के नीचे गहरे नाले के एक सकीर्ण भरके मे लोचनसिंह के पास देवीसिंह और जनार्दन आये। देखते ही लोचनसिंह ने कहा—'मालूम होता है, अलीमर्दान और कुन्जरसिंह का मेल हो गया है। अब तो यहा छिपे-छिपे नही लड़ा जाता।'

देवीसिंह पास आकर बोला—'हमारी तोपे रामनगर से अलीमर्दान की छावनी पर आग उछालेंगी। परन्तु आढ-ओट के कारण कुछ हो नही पाता है। व्यर्थ ही गोला-बारूद खराब हो रहा है। यदि किसी तरह अलीमर्दान को मुसावलीपाठे की ओर से हटा सकें और बिराटा की गढ़ी को हाथ में कर ले, तो स्थिति तुरन्त बदल जाय।'

'मैं अलीमर्दान को मुसावलीपाठे से हटा दूँगा।' लोचनसिंह ने कहा।

देवीसिंह बोले—'आप भरको को ही पकड़े रहिये। मै किनारे-किनारे आड-ओट लेता हुआ बिराटा पर धावा करता हू। आप भरको में से दाव वोलकर हमारी टुकडी की रक्षा करते हुये बढिये। जनार्दन मुसावलीपाठे पर हल्ला बोले। अलीमर्दान की सेना दो ओर से दबोची जाकर मैदान पकड़ेगी। तब खूब खुलकर हाथ करना। इस बीच में हम लोग बिराटा गढी को घर दबायेगे और वहा से अलीमर्दान का सफाया कर देगे।'

लोचनसिंह ने अस्वीकृति के ढङ्ग पर कहा—'इस तरह की सलाहे सदा बनती और बिगड़ती हैं। मैं तो इस तरह की लड़ाई लड़ते-लडते थक गया हू। लडना हो, तो अच्छी तरह से खुलकर लड़ लेने दीजिये। यहा बैठे-बैठे रेंगते-रेगते फिट-फिट करने से तो मर जाना अच्छा है।'

देवीसिंह ने उत्तेजित होकर श्राश्वासन दिया—'नही, श्राधी घड़ी के भीतर ही इसी योजना पर काम होगा। परन्तु पहले हमें नदी के किनारे श्रपनी टुकड़ी के साथ हो जाने दो। उसके वाद तुम जोर का हल्ला बोल कर श्रागे बढो। तुम्हारे हल्ले के पश्चात् तुरन्त ही जनार्दन मुसावली पाठे के पीछे से हमला करेंगे।'

लोचनसिंह ने कहा—मैं श्रभी वढ़ता हूँ। दीवान जी श्रपनी जानें, परन्तु श्राज श्रागे पैर रख कर पीछे हटाने का काम नही है।'

जनार्दन इस स्पष्ट व्यङ्ग से श्राहत होकर बोला—'श्राप श्रपने की खबर लिये रहियेगा, मेरे पैरों की उङ्गलियां एड़ी में नही लगी हैं।'

लोचनसिंह का शरीर जल उठा। परन्तु देवीसिंह ने जनार्दन को तुरन्त वहां से निर्दिष्ट कार्य के लिये भेज दिया।

[९६]

अलीमर्दान शीघ्र युद्ध समाप्त करना चाहता था। दीर्घ काल तक लगातार लड़ते रहना किसी पक्ष के भी मन में हठ के रूप में न था। छोटी रानी को कुछ समय पहले वह सहायक समझता था, परन्तु अब उसके लिये भार-सी होती जा रही थी। बिराटा की पद्मिनी के लिये उसका जी उत्सुकता से भरा हुआ था, देवीसिंह को यदि वह ४-६ कोस ही पीछे हटा सकता और थोड़ा-सा अवकाश पाकर कुमुद को बिराटा से अपने साथ ले जाता, तो भी वह अपने को विजयी मान लेता। बिराटा और रामनगर के छोटे से राज्य उसकी महत्त्वाकांक्षा के क्षितिज नहीं थे। उसकी राजनीति कल्पनाओं के केन्द्र दिल्ली और कालपी थे।

अपनी ही उमङ्ग और सनक से उत्तेजित होकर उसने अपने एक सरदार को बुलाया। कहा—'देवीसिंह पर ज़ोर का हमला कर के उसे पीछे हटाना बहुत ज़रूरी है। बिराटा को भी आँख से ओझल नहीं होने देना चाहिये। यदि बिराटा वालों के ध्यान में पूर्व दिशा की ओर भाग खड़े होने की समा गई, तो फिर कुछ हाथ नहीं लगेगा। सारी मेहनत बेकार हो जायगी।'

'जब तक कुञ्जरसिंह बिराटा में हैं।' उसने मन्तव्य प्रकट किया—'तब तक वहां की चिन्ता नहीं। वह बराबर देवीसिंह की सेना पर गोला-बारी करता रहेगा।'

अलीमर्दान उत्तेजित स्वर में बोला—'मैं चाहता हूं अपने सिपाही बढ़कर हाथ करें। देवीसिंह पीछे हटाया जाय। तुम रानी को साथ लेकर हमला करो। मैं एक दस्ता लेकर बिराटा पर धावा करता हूं। आगे तकदीर।'

सरदार ने अकचकाकर कहा—'सेना को टुकड़ों में बांटना शायद हानि का कारण हो बैठे।'

ज़रूर हो सकता है।' अलीमर्दान ने चुटकी ली—'यदि हमारी फ़ौज इस कायदे और पाबन्दी के साथ लड़ती रही, तो।'

वह मुँह लगा नायक था, परन्तु जब नवाब को उत्तेजित देखा, तब उसने विरोध करने का साहस नही किया। इसके सिवा कुञ्जरसिंह के दो ओर से दबोचे जाने के प्रस्ताव में एक हिंसा-मूलक आशा थी, इसलिये वह शीघ्र सहमत हो गया। आक्रमण के सब पहलुओ पर बातचीत करके योजना को सांगोपांग तैयार कर लिया। रानी को इस प्रकार की लड़ाई के लिये सहमत कर लेना वह बिलकुल सहज समझता था।

रानी तो सहज सरल गति को घृणा के साथ शिथिलता की संज्ञा देने की मानों प्रतिभा रखती थी। परन्तु अलीमर्दान जानता था कि रानी को अपनी तैयार की हुई योजना को निर्णय के रूप में बतलाने से वह तत्काल उत्साह-पूर्ण सहमति प्राप्त न होगी, जो उसी के मुँह से अपनी योजना पर उसके निश्चय की छाप लगवाने से होती। इसलिये उन दोनों ने छोटी रानी के डेरे पर जाने का संकल्प किया।

अलीमर्दान और सरदार इस अभीष्ट से अपने स्थान से बाहर जाने को ही थे कि एक हरकारा सामने आया।

'हुजूर।' हांफता हुआ बोला—'दिल्ली से खान्दौरान का पत्र आया है।'

जैसे तेज़ी के साथ बहने वाले नाले को एकाएक एक बड़ी चट्टान की बाधा सामने मिल जाय और उसके आगे की धार क्षीण हो जाय, उसी तरह अलीमर्दान सन्न-सा हो गया। सम्भलकर उसने हलकारे से कहा—'कहाँ है लाओ।'

हरकारे ने अलीमर्दान के हाथ में चिट्ठी दी। दिल्ली का सिंहासन सकट में था। दिल्ली में ही दिल्ली का एक सरदार विमुख हो गया था। और सरदारो पर इतना भरोसा न था, जितना अलीमर्दान पर। राज-पथ को स्वच्छ करने के लिये अलीमर्दान को तुरन्त शेष सेना-समेत दिल्ली आने के लिये पत्र में लिखा था। पत्र पर बादशाह की मुहर थी। खानदौरान ने उसे भेजा था। खानदौरान के बनने-बिगड़ने पर अली-मर्दान का इस तरह के अनेक सरदारों की भाँति, भविष्य निर्भर था। इसलिये वह पत्र फरमान के रूप में था और अनिवार्य था।

अलीमर्दान ने सरदार को पत्र या फरमान दे दिया, उसने पढ़कर मुस्कराकर कहा—'हुज़ूर को शायद पहले से कुछ मालूम हो गया था। कल के लिये लडाई का जो कुछ ढग तय किया गया है, वह इस फरमान की एक लकीर के खिलाफ नही जा रहा है।'

अलीमर्दान भी उत्साहित होकर बोला—'इसमें सन्देह नही कि इस परवाने से कल की लडाई को दोहरा ज़ोर मिलना चाहिये। भाई खां, अगर लड़ाई चीटी की रफ्तार से चली, तो कल ही या ज्यादा-से ज्यादा दो दिन बाद हमें देवीसिंह से सुलह करनी पड़ेगी और जीते-जिताये मैदान को छोड़कर चला जाना पड़ेगा। अन्त में कुञ्जरसिंह और उनके देवी-देवता कही कूच कर देंगे और फिर हजार लड़ाइयो का भी वह फल न होगा, जो कल की एक कसदार लड़ाई का होना चाहिए। क्या कहते हो?'

सरदार ने उत्तर दिया—'इंशाअल्ला कल ही सबेरे लीजिये, चाहे हमारी आधी सेना कट जाय।'

[९७]

जब से गोमती छोटी रानी के पास से आई, वोली कम, किसी गंभीर चिन्ता में, किसी गूढ विचार में डूवती-उतराती रही अधिक। छोटी रानी का अनुराग कथोपकथन में अधिक दिखलाई पड़ता था, परन्तु गोमती हाँ-हूं करके या बहुत साधारण उत्तर देकर अपनी विषय रुचि-भर प्रकट कर देती थी।

छोटी रानी की रावटी विराटा के उत्तर पश्चिम में. एक गहरे नाले के छोटे से द्वीप पर थी। इसी नाले के छोर पर अलीनर्दान का डेरा था। रात हो रही थी। गोमती को अपने अंगों में शिथिलता अनुभव हो रही थी। रानी बातचीत करने के लिये आतुर थीं। गोमती कोई वचाव न देखकर बातचीत करने के लिये तत्पर हो गई।

छोटी रानी वोली—'कई बार पहले भी कह चुकी थी कि इस लड़ाई में मै स्वयं तलवार लेकर भिड़ूँगी। पुरुषो की ढीलढाल के कारण ही देवीसिंह अब तक मौज में हैं।'

'हां, सो तो ठीक ही है।' गोमती ने जमुहाई लेकर सहमति प्रकट की।

''मैं केवल यह चाहती हूँ कि देवीसिंह के सामने तक किसी तरह पहुँच जाऊं।' रानी बोली।

गोमती ने सिर हिलाया।

रानी कहती गईं—'अब और अधिक जीने की इच्छा नही है, दलीपनगर के राज्य की भी आकांक्षा नही है, परन्तु छलियो और अधर्मियों को अपने मरने से पहले कुचला हुआ देखने की अभिलाषा अवश्य है। देवीसिंह को रण में ललकार सकूँ, जनार्दन शर्मा का मांस कौओं-कुत्तों को खिला सकूँ, केवल यह ललक है। अलीमर्दान के पास इतनी सेना है कि यदि वह डटकर लड़ डाले, तो देवीसिंह की सेना नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। अवसर भी अच्छा है। विराटा उस छलिया पर आग बरसा ही रहा है। इधर से एक प्रचंड हल्ला और बोल दिया जाय, तो युद्ध के सफल होने में विलंब न रहे। तब दलीपनगर, फिर उसके सच्चे अधिकारी के

हाथ में पहुंच जाय, नीच, राक्षस जनार्दन अपनी करनी को पहुँचे, स्वामिधर्मी सरदारो के जी में जी आवे और बागी भय के मारे दलीपनगर छोड़कर भागें। धर्म का राज्य हो और सब लोग शाँति के साथ अपना-अपना काम करें। कुञ्जरसिंह को एक अच्छी-सी जागीर मिल जाय, तो वह भी सुख के साथ अपना जीवन-निर्वाह करे परन्तु बड़ी सरकार से कुछ न बना।'

इसी क्षण रानी ने अपने स्थान के एक कोने में दृष्टि डाली। वहाँ राज-पाट का कोई सामान न था। परन्तु उसे अपनी वर्तमान वास्तविक अवस्था का फिर ध्यान हो आया।

भर्राये हुये कठ से वह बोली—राज्य नही चाहिये और न वह कदाचित् मिलेगा परन्तु हाथ में तलवार लेकर देवीसिंह के कवच और झिलम को अवश्य फाडूँगी और फिर मरूँगी। इसे कोई नही रोक सकेगा, यह तो मेरे भाग्य में होगा, गोमती।'

गोमती की शिथिलता कम हो गई थी। शरीर में सनसनी थी, गले में कप।

धीरे से बोली—'आप जो कुछ करें, मै आपके संग में हू, मैं भी मरना चाहती हू। मुझे ससार में अब और कुछ भी देखने की इच्छा नही। कुमुद—विराटा की देवी—सुखी रहे, यही लालसा है।'

'बिराटा की देवी!' रानी ने उत्तेजित होकर कहा—'दाँगी की छोकरी को देवी किसने बना दिया?'

गोमती ने भी ज़रा उत्तेजित स्वर में उत्तर दिया—'संसार उसे मानता है। और कोई माने या न माने, मैं उसे लोकोत्तर समझती हूँ। यदि इसी समय प्रलय होने वाली हो, तो मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगी कि कम-से-कम एक वह बची रहे।'

रानी जोर से हँसकर एकाएक चुप हो गई और तुरन्त बोली—'नही, मै प्रार्थना करूँगी कि मैं और देवीसिह बचे रहे और मेरी तलवार। मे अपनी तलवार से या तो गला काट लूँ और या उसी तलवार को अपनी छाती में चुभो लूँ।'

'जनार्दन ?' गोमती ने क्षीण तीक्ष्णता के साथ पूछा।

'मेरे साथ हँसी मत करो।' रानी ने निषेध किया—'जनार्दन बचा रहेगा, तो उसके मारने के लिये रामदयाल भी तो बना रहेगा।'

गोमती का चेहरा एक क्षण के लिये तमतमा गया। परन्तु अपने को संयत करके बोली—'जब मैं स्वयं तलवार चला सकती हूं, तब किसी के आसरे की कोई अटक नही है।' फिर तुरन्त अपने असंगत उत्तर पर कुपित होकर बोली—'मैं अपनी बकवाद से आपको अप्रसन्न नही करना चाहती, परन्तु इसमें कोई सन्देह नही कि—'

'क्या ?' रानी ने असाधारण रुचि प्रकट करते हुये पूछा—'किस बात में सन्देह नही ?'

गोमती ने लिलकुल संयत स्वर में कहा—'इसमें कोई सन्देह नहीं कि मै लड़ना चाहती हूं उसके साथ, जिसने मेरा अपमान किया है, मेरे जीवन का नाश किया है—आपके साथ नही।'

रानी ने एक क्षण पश्चात् प्रश्न किया—'रामदयाल कहाँ है ?'

'मुझे नहीं मालूम।' गोमती ने उत्तर दिया।

'तुमसे कहकर नही गया ?'

'न। आपसे कुछ कहकर गये होगे -'

'वह तुम्हारे साथ ब्याह करना चाहता है अर्थात् यदि तुम उसकी जाति की होओ, तो।'

'और न होऊँ, तो ?'

'तो भी वह अपना घर बसना चाहता है, तुम्हे यों ही रख लेगा।'

गोमती ने दाँत पीसे। बहुत धीरे और कांपते हुये स्वर में पूछा—'वह कौन जाति के हैं ?'

'दासी-पुत्र है।' रानी ने प्रखर कण्ठ से उत्तर दिया—'दासी-पुत्रों की कोई विशेष जाति नही होती, उनका सम्बन्ध परस्पर हो जाता है। परन्तु वह स्वामिभक्त है।'

'यहां तो मुझे सब दासी-पुत्र दिखलाई दे रहे हैं।' गोमती ने मुक्त होकर कहा—'मुझे तो कोई भी वास्तविक क्षत्रिय नही दिखलाई देता। क्षत्रियत्व की डीग मारनेवालो मे क्षत्रिय का क्या कोई भी लक्षण बाकी है? अपने को क्षत्रिय कहने वाला कौन-सा मनुष्य दुर्बलो को सबलो से, पतितो को उत्थितों से, पीड़ितो को पीड़को से, निस्सहायो को प्रपन्नों से बचाने में अपने को होम देता है? मैं तो यह देख रही हू कि क्षत्रित्व की डीग मारने वाले अपने अहंकार की झंकार को बढाने और पर-पीड़न के सिवा और कुछ नही करते।' फिर नरम स्वर में तुरन्त बोली—'आपसे पूछती हूँ कि विराटा के मुट्ठी-भर दांगियों ने आपका या दलीपनगर का क्या विगड़ा है, जो उन पर प्रलय बरसाई जा रही है? क्या जिस प्रेरणा के साथ आपके दलीपनगर के राजा या छलिया के साथ लोहा लिया चाहती हैं, उसकी आधी भी उमग के साथ आप बिराटा की उस निस्सहाय कुमारी की कुछ सहायता कर सकती हैं?'

रानी कुछ कहना चाहती थी कि रामदयाल आ गया। उसके चेहरे पर उमङ्ग की छाप थी, एक तीक्ष्ण दृष्टि से उसने रानी की ओर देखा और आधे पल एक कोने से गोमती को देखकर बोला—'कल बहुत जोर की लड़ाई होगी, ऐसी कि आज तक कभी किसी ने न देखी और न सुनी होगी।'

क्रुद्ध स्वर में रानी ने कहा—'तू उस लड़ाई में कहां होगा? ले जा इस लड़की को ससार के किसी कोने में और कर अपना जन्म सफल। मरने-मारने के लिये मुझे अब किसी साथी की जरूरत नही।'

किसी भाव के कारण गोमती का गला रुद्ध हो गया। कुछ कहने को ही थी कि छोटी रानी के स्वभाव और अभ्यास से परिचित राम-दयाल मानो दोनो ओर के वारो के बीच में ढाल बन गया हो। बोला—'नवाब साहब एक बहुत महत्वपूर्ण विषय पर बातचीत करने के लिये आपके पास आये हैं। यही खड़े हैं, तुरन्त मिलना चाहते हैं। लिवा लाऊँ।'

रानी ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी। कुछ ही पल बाद रामदयाल अलीमर्दान को लिवा लाया। रानी ने साधारण-सी आड़ कर ली और रामदयाल ने उसके बैठने के लिये आसन रख दिया।

[९८]

'कल देवीसिंह को उसके सब पापो का फल मिलेगा महारानी साहब।' अलीमर्दान ने कहा—'चाहे इस लड़ाई में मेरी आधी फौज खतम हो जाय, इस पर मोर्चा लिये बिना चैन न लूँगा। खुदा ने चाहा, तो कल शाम को इस वक्त हम लोग रामनगर और विराटा पर पूरा अधिकार कर लेगे।'

रानी ने रामदयाल के द्वारा कहलवाया—'मुझे आपसे यही आशा है। मेरी समझ में हल्ला रात में ही बोल दिया जाय। सेना को कई दलों में बाँट दिया जाय। कुछ तो समय-कुसमय के लिये तैयार बने रहे, बाकी दल कई ओर से चढ़ाई करके डटकर लड़ जायँ।'

अलीमर्दान बोला—'मैंने भी कुछ इसी तरह का उपाय सोचा है। मै एक विनती करने आया हूँ।'

रामदयाल ने पूछा—'क्या आज्ञा है?'

'विनती यह है।' अलीमर्दान ने नम्रता-पूर्वक उत्तर दिया—'कि इस धावे का सेनापतित्व महारानी साहब और मेरे नायक के हाथ में रहे। महारानी साहब की शूरता हमारे सैनिक की छाती को लोहे का बना देगी।'

रानी ने रामदयाल के द्वारा कहा—'आपकी आज्ञा का पालन किया जायगा। आप न भी चाहते, तो भी मैं सेना के आगे रहकर अपने पद और मर्यादा का मन मनाती।'

रामदयाल कहने में शायद कुछ भूल गया था, इसलिये आड़-ओट की अपेक्षा न करके रानी स्वयं बोली—'कल मै बतलाऊँगी कि छत्राणी इसे कहते हैं।'

इस नये अनुभव से अलीमर्दान एक क्षण के लिये ज़रा चंचल हुआ।

रानी ने अपनी सहज उत्तेजना की साधारण सीमा से आगे बढ़कर कहा—'मै कल इस समय आपसे बात करने के लिये जिऊँ, या न जिऊँ परन्तु

वह काम करूँगी, जिसे स्मरण करके पुरुषों के भी रोमाँच हो जाया करेगा।'

रानी का गला रुँध गया। रुँधे हुये स्वर में बोली--'मैंने कपटाचारियों के छल और अधर्म के कारण जो कुछ सहा है, उसे मेरे ईश्वर जानते हैं। मैंने कदाचारियो और विद्रोहियो के सामने कभी सिर नही नवाया और न कभी नवाऊँगी। अभिमान के साथ उत्पन्न हुई थी और अभिमान के साथ मरूँगी।' रानी अपने भरे हुये गले और आदोलित हृदय को सम्भालने के लिये ज़रा ठहरी। अलीमर्दान इस उद्गार का कोई उपयुक्त उत्तर सोचने लगा। रानी अपने को न सँभालकर बोली -- 'मेरे स्वामी वैकुण्ठवास की तैयारी कर रहे थे; निर्दयी राक्षसो ने उनके सिरहाने बैठे-बैठे एक प्रपंच-जाल रचा और उसमें दलीपनगर के मुकुट को फासकर उसे पद-दलित किया। यदि इन आततताइयो को मैंने दण्ड न दे पाया, तो मेरे जीवन और मरण दोनो व्यर्थ हुये।'

रामदयाल अपने कोने मे हटकर रानी के पास आ गया। सांत्वना देने लगा—'आप रोएँ नही। थोडी-सी घडियो के बाद ही घमासान होगा। उसमें जो कोई कुछ कर सकता है, करेगा।'

अलीमर्दान को कोई विशेष उत्तर याद न आया, तो भी बोला—'आपके रोने से हम सबको बहुत रंज होगा। आप भरोसा रक्खें, कल लड़ाई का सब नकशा बदल जायगा। आपकी बहादुरी हमारे सब सिपाहियो को शहीद बनाने का बल रखती है।'

रानी ने गला साफ करके कर्कश स्वर में कहा—'मेरे पास जो थोड़े-से सरदार बचे हे, वे धावे में मेरे निकट रहेगे। मैं लड़ूँगी, वे लड़ेगे। मैं आगे रहकर लडूँगी, परन्तु सेना का सचालन आप अपने सरदार के हाथ में दीजिये। मैं जिस दिशा से डाकू देवीसिंह का व्यूह वध करूँगी, उस ओर फिर शायद ही लौटूँ। मुझे सैन्य-सचालन का अवकाश न मिलेगा।'

अलीमर्दान तुरन्त बोला—'सरदार आपके नजदीक ही रहेंगे।'

गोमती ने रामदयाल से ऐसे स्वर में पूछा, जिसे अलीमर्दान सुन सके—'नवाब साहब कहाँ रहेंगे ?'

अलीमर्दान इस प्रश्न के लिये तैयार था। तपाक से बोला—'समय-कुसमय के लिये जो एक बड़ा दल तैयार रहेगा, उसका संचालन मैं करूँगा। उसके सिवा मुझे विराटा की भी थोड़ी-सी चिन्ता है। विराटा का राजा हम लोगों से लड़ता रहा है। एक दो दिन से ज़रूर वह देवीसिंह की तरफ ध्यान दिये हुये है, पर उसकी ओर से हम लोगों को असावधान न रहना चाहिये। यदि उसने पीछे से हमारी सेना को धर दबाया, तो सब बना-बनाया बिगड़ जायगा।'

गोमती ने सीधा अलीमर्दान को संबोधन करके कहा—'आप विराटा के राजा की सन्धि-प्रार्थना को क्यो स्वीकार नही कर लेते ? आप तो बहुत शक्तिशाली नवाब हैं। आपको भगवान् ने सब कुछ दिया है, तो भी जो कुछ थोड़ी-बहुत धन-सम्पत्ति विराटा के राजा के पास बची है, वह आपको भेंट कर देगा। आप उसे क्षमा कर दें।'

अलीमर्दान ने रामदयाल से सकेत में पूछा—'यह कौन है ?'

रामदयाल ने बहुत धीरे से अलीमर्दान को उत्तर दिया—'यह वहां रही हैं। इस समय महारानी की आश्रित हैं, हम लोगों के पक्ष की हैं। मैंने एक बार कहा था न ?'

इसे रानी ने चाहे सुना हो, चाहे न सुना हो, गोमती ने सुन लिया। बोली—'मै भी महारानी के पास रहकर लड़ूँगी। ठाकुर की बेटी हूं। अपना कर्तव्य पालन करूँगी। इससे अधिक जानने से आपको कोई लाभ न होगा।'

अलीमर्दान ने कहा—'यों तो मैं महारानी साहब के इशारे पर नाचने को तैयार हूं, परन्तु विराटा के राजा ने जो गुस्ताखी की है, उसका दण्ड देना ज़रूरी जान पड़ता है। परन्तु यदि महारानी साहब का हुक्म होगा, तो मै उसे भी माफ कर दूँगा।'

रानी बिना किसी उत्साह के बोली—'हमारा लक्ष्य दलीपनगर के बागी हैं। देवीसिंह और उसके सहायक जनार्दन के टुकडे उडाना हमारा कर्तव्य है। बिराटा को हम लोग इस समय छोड दें, तो बहुत अच्छा होगा। बिराटा के राजा की उस लडकी पर कोई वार न होना चाहिये। आगे जैसी नवाब साहब की मर्जी हो।'

अलीमर्दान ने कहा—'आपकी आज्ञा हो, तो मैं स्वय थोड़े-से आदमियो को अपने साथ बिराटा ले जाऊँ और वहा के ठिकानेदार को कायदे के साथ वहां का राजा बना आऊँ। मेरा उसके साथ कोई बैर नही है।'

'न।' रानी ने उत्तर दिया—'आप यदि उस ओर चले जायँगे, तो यहाँ गड़बड़ फैलने का डर है। आप यदि लड़ाई में आरम्भ से ही भाग न ल, तो अपनी कुमुद के साथ निकट ही बने रहे। आप अभी बिराटा न जायँ। रामदयाल को आप चाहे, तो अपने साथ रक्खे।'

'न।' रामदयाल ने तेजी के साथ कहा—'महारानी जहाँ होगी, वही मै भी रहूगा। मैं भी लड़ना जानता हू। महारानी के शत्रुओं को मै भी पहचानता हूं।'

अलीमर्दान 'बहुत अच्छा' कहकर वहाँ से चल दिया। जाते-जाते कहता गया—'थोड़ी देर में धावा कर दिया जायगा। थोड़ा-सा आराम करके तैयार हो जाइये।'

सरदार अलीमर्दान के साथ आया था और साथ ही गया। डेरे पर पहुंचने पर बोला—'तो क्या हुजूर बिराटा पर हमला न करेंगे?'

'कौन कहता था?' अलीमर्दान ने रुखाई के साथ कहा—'आधी रात के बाद ही मैं एक दस्ता लेकर बिराटा की ओर जाता हूं। शायद बिना किसी जोखिम के बिराटा में दाखिल हो जाऊँगा, परन्तु मेरे यहा से कूच करने के पहले तुम्हारी तैयारी में किसी तरह की कसर न रहनी चाहिये। मैं अगर पद्मिनी को लेकर जल्द लौट पड़ा, तो तुम्हारी मदद के लिये आ मिलूँगा, अगर देर लग गई तो मेरी बाट मत देखना और न मेरी

चिन्ता करना । अब यों भी सारी लडाई की ज़िम्मेदारी तुम्हारे ऊपर रहती है। शायद ऐसा मौक़ा आजाय कि मुझे पद्मिनी को लेकर भांडेर चला जाना पडे, तो मामूली शर्तो के साथ देवीसिंह के साथ सन्धि करके चले आना। दिल्ली से लौटकर फिर कभी देखेंगे, परन्तु विराटा का मोर्चा हाथ से न जाने देना चाहिये। जब तक विराटा से मेरे लौट पड़ने की खबर तुम्हे न लगे, तब तक लड़ाई जारी रखना।'

[६६]

राजा देवीसिंह ने भी सन्ध्या होने के उपरान्त दूसरे दिन की समर-योजना के सब छोटे-बड़े अङ्गो पर विचार करने के बाद यह तय किया कि प्रातःकाल के लिये न ठहरकर आधी रात के बाद ही लड़ाई आरम्भ कर दी जानी चाहिये। लोचनसिंह सन्तुष्ट था।

देवीसिंह ने इस योजना में बिराटा को भी स्थान दिया। उसने अपना निश्चय जिन शब्दो में प्रकट किया था, उसका तात्पर्य यह था—बिराटा व्यर्थ ही हमारे कार्य की सरलता में बाधा डालता है। प्रातःकाल होने के पूर्व ही उस पर अधिकार कर ही लेना चाहिये। फिर दिन में रामनगर और बिराटा दोनो गढो की तोपो के गोले अलीमर्दान की सेना पर फेंके जायें। इधर लोचनसिंह और जनार्दन खुले में उसकी सेना के पैर उखाड दें।

दलीपनगर की सेना खुली लड़ाई की आशा की उमङ्ग मे तीन दलो में विभक्त होकर सावधानी के साथ आधी रात के बाद आगे बढ़ी। एक दल उत्तर की ओर नदी कै किनारे-किनारे बिराटा की ओर चला। इसका नायक देवीसिंह था। दूसरा दल जनार्दन के सेनापतित्व में नदी के भरको और किनारो को देवीसिंह के दल की ओट बनाता हुआ उसी दिशा में बढा। लोचनसिंह का दल पश्चिम और उत्तर की ओर से चक्कर काट कर अलीमर्दान की सेना को आगे से युद्ध में अटका लेने और पीछे से घेरकर दबा लाने की इच्छा से उमड़ा। बिराटा की गढी से रामनगर पर उस रात कभी थोडे और कभी बहुत अन्तर पर गोले चलते रहे, परन्तु देवीसिंह के पूर्व-निर्णय के अनुसार रामनगर से उन तोपो का जवाब नही दिया जा रहा था। रामनगर के तोपचियों को आदेश दिया जा चुका था कि जब एक बँधा हुआ सकेत उन्हे अपनी क्षेत्रवर्ती सेना से मिले, तब वे तोपो में बत्ती दें।

लोचनसिंह ने उस रात देवीसिंह के आदेश के अनुसार बहुत सावधानी के साथ कूच किया। उसने अपने सैनिको से कहा था—'बिल्ली की तरह

दवे हुये चलो और समय आने पर की विल्ली तरह ही झपाटा मारो ।'

थोड़ी देर तक लोचनसिंह और उसके सैनिकों ने इस सतर्क-वृत्ति का पूरी तरह पालन किया, परन्तु पग-पग पर लोचनसिंह को उसका अधिक समय तक पालन कर पाना दुष्कर और दुस्सह जान पड़ने लगा। मार्ग बहुत बीहड और ऊंचा-नीचा था। सावधानी के साथ उस पर चलना सम्भव न था। किन्तु अनिवार्य था। परन्तु जहां मार्ग सुथरा और विस्तृत मैदान पर होकर गया था, वहां सावधानी का व्रत वनाये रखना स्थिति की व्यग्रता और लोचनसिंह की प्रकृति के विरुद्ध था। इसलिये लोचनसिंह अपने दल के आगे विरुद्ध उमंग से प्रेरित हुआ सपाटे के साथ बढने लगा। निकट भविष्य में किसी तुरन्त होने वाले भयंकर विस्फोट की कल्पना से उन पके-पकाये सैनिको का कलेजा धक-धक नही कर रहा था, परन्तु पैर के पास ही किसी छोटी-सी असाधारण आकस्मिक ध्वनि के होते ही सैनिक चौकन्ने हो जाते थे, कभी-कभी थर्रा भी जाते थे और आधे क्षण में उनका धैर्य फिर उनके साथ हो जाता था।

इस तरह से वे लोग करीव आध कोस वढ़े होंगे कि लोचनसिंह एकाएक रुक गया और जमीन से घुटनो और छाती के वल सट गया। उसके पीछे आने वाले सैनिक एकाएक खड़े हो गये। उनके चलते रहने से जो शब्द हो रहा था, वह मानो सिमटकर केन्द्रित हो गया और एक बड़ी गूंज-सी उस जंगल में उठकर फैल गई।

आकाश में चन्द्रमा न था। बडे-बड़े और छोटे-छोटे तारे प्रभा में डूबते-उतराते-से मालूम पड़ते थे। छोटे तारे टिमटिमा रहे थे। तारिकायें अपनी रेखामयी आभा आकाश पर खीच रही थी। पक्षी भर-भराकर वृक्षों से उड़-उड़ जाते थे। आकाश के तारो की टिमटिमाहट की तरह झींगुरों की झंकार अनवरत थी। लोचनसिंह ने अपने पास खडे हुये सैनिक का पैर दवाया। लोचनसिंह के इस असाधारण ढङ्ग से उस सैनिक को तुरन्त यह धारणा हुई कि कोई वड़ा और विकट संकट सामने हैं। वह भी घुटनों और छाती के वल पृथ्वी से सट गया। लोचनसिंह के पास अपना कान ले जाकर धीरे से वोला—'दाऊजू, क्या बात है ?'

'सामने और दायँ-बायँ से कोई आ रहा है। शायद अलीमर्दान की सेना बढ़ी चली आ रही है—बड़ी सावधानी के साथ।'

'तो क्या किया जाय ?'

ज़रा ठहरो। पीछे वालो को तुरन्त संकेत करो कि वे सब इस तरह पृथ्वी से सट जायँ।'

उस सैनिक ने धीरे से यह संकेत अपने पीछे के सैनिको में पहुचाया। परन्तु जैसा कि बिलकुल स्वाभाविक था, इस संकेत के सब ओर पहुँचने में काफी विलम्ब हो गया। जो लोग मार्ग की दुर्गमता के कारण आगे-पीछे हो गये थे, उन तक तो वह संकेत पहुँचा ही नही।

कुछ ही क्षण बाद लोचनसिंह को सामने आने वाला शब्द एकाएक बन्द होता हुआ जान पड़ा और उसके दाहनी ओर नदी की दिशा में बन्दूक की आवाज़ सुनाई पड़ी।

लोचनसिंह ने अपने पास वाले सैनिको से धीरे से कहा—'अभी हिलना-डुलना मत।'

जिस दिशा में बन्दूक चली थी, उस दिशा में शोर हुआ। एक ओर से कालपी और दूसरी ओर से दलीपनगर की जय का शब्द परस्पर गुँथ गया। तब भी लोचनसिंह का हाथ बन्दूक या तलवार पर नही गया।

पास पड़े हुये सैनिक ने लोचनसिंह से पूछा—'दाऊजू, क्या आज्ञा है ?'

लोचनसिंह ने कडुवाहट के साथ उत्तर दिया—'चुप रहो। जब तक मैं कुछ न कहू, तब तक बिलकुल चुप रहो।'

जिस दिशा में जय की गूँज उठी थी, उस दिशा में बन्दूकों की नाल से निकलने वाली लौ प्रतिक्षण बढने लगी और वह नदी की ओर बढ़ने लगी।

लोचनसिंह ने धीरे से अपने पास के सैनिक से कहा—'जान पड़ता है, अलीमर्दान की सेना सब ओर से बढती आ रही है। इस समय जनार्दन की टुकडी के साथ मुठभेड़ हो गई है। होने दो। बोलो मत। उसका करतब थोड़ी देर देख लिया जाय।'

पास के सैनिक ने कोई उत्तर नहीं दिया। परन्तु पीछे के सैनिकों में से कुछ चिल्ला उठे—'दाऊजू, क्या आज्ञा है ?'

इस प्रकार की आवाज उठते ही सामने से कुछ बन्दूको ने आग उगली। लोचनसिंह के पीछे वाले सैनिकों ने उत्तर दिया, परन्तु आगे की क़तार जो पृथ्वी से सटी हुई थी, उसने कुछ नही किया। लोचनसिंह के उन साथियो की बन्दूको की गोलियाँ वायु में फुफकार मारती हुई कही चल दी, किसी के बाल को भी उन्होंने न छुआ होगा, परन्तु अलीमर्दान की सेना के उस दल की बाढ ने लोचनसिंह के कई सैनिको को हताहत कर दिया। इसका पता लोचनसिंह को उनके कराहने से तुरन्त लग गया।

बहुत शीघ्र लोचनसिंह की दाहनी ओर लड़ाई ने गहरा रंग पकड़ा। उसकी टुकड़ी का एक भाग और जनार्दन की सेना का बड़ा खण्ड उसी केन्द्र पर सिमट पड़े। देवीसिंह नदी-किनारे पर अपने दल को लिये स्थिर हो गया।

लोचनसिंह के निकटवर्ती सैनिक सोचने लगे कि वह कहीं मारा तो नही गया, नही तो ऐसा किंकर्तव्य-विमूढ क्यों हो जाता ? अलीमर्दान की सेना के उस भाग ने, जो लोचनसिंह के सामने था, सोचा कि इस ओर क्षेत्र रीता है। वह बढा। जब वह लोचनसिंह के बहुत पास आ गया, तब तारो के प्रकाश में लोचनसिंह को एक बढ़ता हुआ झुरमुट-सा जान पड़ा।

लोचनसिंह ने कड़ककर कहा—'दागो।'

पृथ्वी से सटे हुये उसके सैनिकों ने बन्दूकों की बाढ़ एक साथ दागी। पीछे के सैनिको ने भी गोली चलाई। इस बाढ़ से कालपी की सेना का वह भाग बिछ-सा गया। थोड़ी देर में बन्दूकों को फिर भरकर लोचनसिंह अपने उस दल को झपटकर लेकर बढ़ा। कालपी की सेना के योद्धा भी इस मुठमेड़ के लिये सन्नद्ध थे। एक क्षण में ही बंदूकों ने आग और लोहा उगला। फिर धीरे-धीरे बन्दूकों की ध्वनि कम और तलवारों की

झनझनाहट अधिक बढने लगी। लोचनसिंह पल-पल पर अपने दल के एक भाग के साथ आगे बढ रहा था, परन्तु वह नदी से बराबर दूर होता चला जा रहा था। उसके दल का दूसरा भाग नदी की ओर कट-कर आगे-पीछे होता जाता था। उसी ओर से जनार्दन का दल खूब घमासान करने में लग पड़ा था। कालपी की सेना का भी अधिकांश भाग इसी ओर पिल पड़ा।

कुछ घड़ियो पीछे अलीमर्दान के सरदार को मालूम हुआ कि दलीप-नगर की एक सेना का भाग उसके पीछे घूमकर युद्ध करता हुआ बढ रहा है। वह धीरे-धीरे पीछे हटने लगा। परन्तु लोचनसिंह के बढते हुये दबाव का विरोध करने के लिये उसे जाना पड़ा। युद्ध कभी थमकर और कभी बढ़-घटकर होने लगा। अंधेरे में मित्र-शत्रु की पहचान लगभग असंभव हो गई। सैनिक केवल एक धुन में मस्त थे—'जब तक बाँह में बल है, अपने पास वाले को तलवार के घाट उतारो।'

[१००]

मुसलमान नायक छोटी रानी, गोमती और रामदयाल को साथ-साथ जिस ओर और जिस प्रकार घुमाना चाहता था, वे नही घूम पाते थे। इसलिये उसकी प्रगति को बड़ी बाधा पहुंच रही थी। तो भी वह स्थिर-चित्त होने के कारण धैर्य और चतुरता के साथ सैन्य-संचालन कर रहा था। ज़िस स्थान पर लोचनसिंह के दल के साथ उसकी टुकड़ी की मुठभेड़ हो गई थी, वहाँ पर वह न था। वह जनार्दन के मुकाबले में था।

लड़ाई के आरंभ में जितना उत्साह गोमती के मन में था, उतना दो घड़ी पीछे न रहा। वह बच-बचकर युद्ध में भाग ले रही थी और रानी बढ़-बढ़कर। रामदयाल प्राय: गोमती के साथ रहता था। रानी को बार-बार इस बात का बोध होता था और बार-बार वह एक अनुदृष्टि क्रोध से भभक उठती थी। परन्तु थोड़ी ही देर में उन्हे भी मान होने लगा कि हाथ उस तेज़ी के साथ काम नही करता, जैसा प्रारम्भ में कर रहा था। वह भी पीछे हटी। मुसलमान नायक की एक चिन्ता कम हुई।

वह सँभलकर, डटकर लड़ना चाहता था। परन्तु अँधेरी रात में अपनी इच्छा के ठीक अनुकूल सारी सेना का संचालन करना उसके लिये क्या, किसी के लिये भी असम्भव था। इधर-उधर सारी सेना गुथ गई, कोई नियम या संयम नही रहा। केवल लोचनसिंह के साथ सैनिकों का एक खंड और देवीसिंह का दल इस पक्ष का और मुसलमान नायक के निकटवर्ती सैनिको का भाग और बिराटा की ओर अग्रसर होता हुआ अलीमर्दान का दल उस पक्ष का, ये लड़ाई में कोई बड़ा भाग न लेने के कारण कुछ व्यवस्थित थे। अलीनर्दान का दूसरा दल कुछ दूरी पर मुस्तैद खडा था। वह बिलकुल सुव्यवस्थित और किसी अवसर की ताक में था। परन्तु सभी दल उमग के साथ अपने-अपने कार्य में दत्त-चित्त हो जाने के बाद शीघ्र प्रात.काल होने के लिये लालायित हो रहे थे।

रामनगर से बिराटा पर तोपें नही चल रही थीं। बिराटा से इसी कारण उत्तरोत्तर तोपों की बाढ बढने लगी। कोई निशाना चूकता था और कोई लगता। रामनगर की अस्त-व्यस्त दीवारे और दृढ़ बुर्ज धीरे-धीरे भर-भराकर टूट रहे थे। गढवर्ती सैनिको की चिंता पल-पल पर बढ़ती जा रही थी, परन्तु देवीसिंह का बँधा हुआ सकेत अभी तक नही मिला था।

देवीसिंह ठीक नदी-किनारे था। दोनों किनारो के भीतर तोपों और बन्दूको की आवाज दुगुनी-चौगुनी होकर गर्जन कर रही थी। घायलो का चीत्कार धूम-धडाके से मथे हुये सन्नाटे को बीच-बीच में चीर-चीर-सा देता था।

बेतवा अपने अक्षुण्ण कलरव के साथ बहती चली जा रही थी। तारों का नृत्य बेतवा की जल-राशि पर अनवरत रूप से होता जा रहा था।

राजा ने अपने पास खड़े हुये एक सरदार से कहा—'यदि कुञ्जरसिंह थोड़े समय के लिये भी अपनी मूर्खता के साथ सन्धि कर ले, तो आज का युद्ध अलीमर्दान के लिये अन्तिम हो जाय।' एक क्षण बाद बोला—'आज रात शायद रामनगर से तोप चलाने का अवसर ही न आवे।'

सरदार ने कोई मन्तव्य प्रकट नही किया, परन्तु प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा।

'इसलिये कि।' देवीसिंह ने उत्तर दिया— रामनगर से तोप चलते ही विराटा का नदी-कूल भी बिलकुल सतर्क हो जायगा और हम लोग आसानी से बिराटा की गढी में प्रवेश न करने पायेगे।'

इसके बाद देवीसिंह अपने दल को लेकर बहुत धीरे-धीरे और साव-धानी के साथ विराटा की ओर बढ़ा।

[१०१]

रात की इसी उथल-पुथल ने सचेत विराटा को और भी सचेत कर दिया। विराटा में थोड़े से सैनिक थे। साधारण बने रहने में ही उसकी रक्षा थी। उस रात के भयानक हल्ले असाधारण आक्रमण ने विराटा के प्रत्येक शस्त्रधारी को किसी अनहोनी के लिये बिलकुल तैयार कर दिया। उस रात जब तक देवीसिंह को अलीमर्दान के दलो में टक्कर नही हुई थी, तब तक कुन्जरसिंह की तोपें केवल इस बात का प्रमाण देती रही कि उनके तोपची सोये नही हैं, परन्तु जब बन्दूकों की बाढें उन दोनो दलो की भभकी तब किसी सङ्कट के तुरन्त सिर पर आ पड़ने की आशंका ने कुँजरसिंह को बहुत सक्रिय कर दिया।

आक्रमणो के होने के कुछ घड़ी पीछे ही अलीमर्दान अपने दल के साथ बिराटा के नीचे, नदी के किनारे आ गया। उसके बिलकुल पास ही देवीसिंह का दल भी आकर ठिठक गया था। परन्तु दोनो इतनी सावधानी से चले थे कि एक ने दूसरे की गति को नही समझ पाया था। तो भी बिराटा के सतर्क योद्धा की दृष्टि से उन दोनो की गति-विधि न बच पाई। उसने तुरन्त अपने गढ़ में इसकी सूचना दी। अभी तक देवीसिंह और अलीमर्दान की सेनाये एक दूसरे के सम्मुख मोर्चा लिये हुये डट रही थी, इसलिये भी विराटा के थोड़े से मनुष्यो की कुशल-क्षेम बनी रही, परन्तु उस प्रहरी को मालूम हो गया कि उनमें से एक का, कदाचित दोनो का, लक्ष्य बिराटा है। यही समाचार तुरन्त विराटा के भीतर पहुचाया गया।

बिराटा के सैनिक बारी-बारी से थोड़ी देर के लिये शस्त्र लगाये हुये ही विश्राम करते आये थे। उन्हें बहुत दिन से यथेष्ट भोजन न मिला था। फटे कपड़ो से अपना शरीर ढाँके थे। चोटो की मरहम-पट्टी अपने हाथ से ही कर लेते थे—वह भी अपने फटे कपड़ो के चिथड़े फाड़ फाड़-कर। जो कुछ उनके पास था, वह तो और बारूद पर न्योछावर कर

चुके थे और कह रहे थे। जो कुछ हथियार उनके पास थे, उन्हें अच्छी हालत में रखने की चेष्टा करते थे, परन्तु उनकी भी बहुतायत न थी।

हथियार उनके साफ-सुथरे थे, परन्तु शरीर धूल और पसीने में ऐसे सने हुये कि उनकी त्वचा के प्राकृतिक रङ्ग का यकायक पता लगाना कठिन हो गया था। आंखे धंस गई थी गाल की हड्डियाँ तीव्रता के साथ ऊपर उठ आई थी। बाल बढ गये थे।

हृदय की ज्वाला आंखों में आ बैठी थी। परन्तु जङ्गली पशुओ की तरह दिखाई देने वाले उन लोगो की आँखो में कभी-कभी जो मर मिटने की दृढ़ता छलक उठती थी, वह निराशा के घास-घूस के ढेर में उज्ज्वल अंगार की तरह थी। टूटी-फूटी गढी पर अस्त-व्यस्त शरीर रखवालो के जीवन में आभा को ग्रसने के लिये राहु-केतु की तरह दो तरफ से दो अलग-अलग उद्देश्यो से प्रेरत होकर दलीपनगर और कापली के सुसज्जित योद्धा पिल पडने को ही थे। दो वक्र रेखाओ की तरह वे दोनो एक ही केन्द्र पर सिमट पड़ने के लिये खिचने को ही थे।

प्रहरी के समाचार को पाते ही, जैसे प्रचड झंझावत से पल्लव झक-झोर खा जाते हैं, वैसे ही सबदलसिंह और उनकी सेना जिस फटियल लड़ाकुओ की भीड़ की उपाधि से ही सम्बोधित किया जा सकता है, विश्राम और थकावट से उचटकर सजग हो गई और एक मार्के के ठोर पर इकट्ठी हो गई। सबदलसिंह थोड़ा ही सो पाया था। धँसी हुई आँखो को पोंछता-पाँछता आ गया। कुन्जरसिंह भी अपने तोपचियो को कुछ सलाह देकर उसी समय आया। एक बडे पीपल के पेड के नीचे वे सब इकट्ठे हो गये। कुन्जरसिंह ने कहा—'आज हम लोगो की विजय-रात्रि है।'

'कदाचित् अन्तिम भी।' सबदलसिंह बोला।

'क्यो ?' कुंजरसिंह ने ज़रा आश्चर्य के साथ कहा—'मैं यदि गलती नही कर रहा हूं, तो रामनगर की गढ़ी मेरी तोपो ने ध्वस्त कर दी है। अलीमर्दान और देवीसिंह की सेनायें सबेरा होते-होते आपस में लड़-कटकर समाप्त हुई जाती हैं। तब कल विजय अवश्यम्भावी है।

सबदलसिंह ने क्षीण मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया—'हमें जो समाचार अभी मिला है, वह किसी दूसरे भविष्य की ही सूचना देता है। अलीमर्दान की सेना का एक बड़ा भाग किनारे पर आ पहुंचा है। दूसरी ओर से देवीसिंह का एक दल भी निकट आ गया है। रामनगर पर गोले चलाने में कोई बुद्धिमानी नही जान पड़ती।'

ज़रा उद्धत स्वर मे कुँजरसिंह ने कहा—'तब किस बात में बुद्धिमानी है?'

'मरने में।' तीक्ष्णता के साथ सबदलसिंह बोला—'मरने में। देवीसिंह से कोई सहायता प्राप्त नही हो सकती। उस ओर से हम बिलकुल निराश हो चुके हैं। एक-एक पल हमारे लिये बहुमूल्य है। मालूम नही, कब अलीमर्दान की सेना यहाँ घुस पड़े और हमारी मर्यादा पर आ बने।'

कुञ्जरसिंह ने कुछ सोचकर कहा—तब मैं मैदान की ओर तोपों का मुँह फेरता हू। उन्हे छठी का दूध याद आवेगा।'

'और एक ही क्षण पश्चात्।' सबदलसिंह ज़रा रोष-पूर्ण स्वर में बोला—'उन सबको अपनी प्रबल और हमारी हीन स्थिति का भी स्मरण हो आवेगा।' कुँवर साहब, यह लड़ाई कल से और अधिक आगे नही जा सकेगी।'

इस मन्तव्य पर कुञ्जरसिंह को कुछ कहने का सहास नही हुआ। और लोगों में से भी कोई कुछ न बोला। सबदलसिंह ने धीरे, परन्तु दृढता के साथ कहा—'हम लोगो ने सन्धि के धर्म-सम्मत सब उपाय कर छोड़े। अलीमर्दान हमारी मर्यादा चाहता है, वह हम उसे नही देंगे। बाहर से अब किसी सहायता की कोई आशा नही है, इसलिये मेरी समझ में केवल एक उपाय आता है।'

उपस्थित लोगों की दृष्टियाँ तारो के क्षीण प्रकाश में उस उपाय के सुनने के लिये सबदलसिंह की ओर घिर गईं।

सबदलसिंह ने उसी दृढ़ स्वर में कहा—'हम सब गढ़ी से निकलकर शत्रुओ से लड़ने-लड़ते मरें। किसी को इनकार हो, तो कह डालने में संकोच न करे।'

कोई न बोला।

सबदलसिंह कहता गया—'परन्तु हम अपने पीछे अपने बाल-बच्चों को अनाथ नहीं छोड़ सकते। अपनी बहू-बेटियों को मुसलमानों के घरों में भेजने से जो कालिख हमारे नाम पर लगेगी, उसे सहस्र गङ्गा नदियाँ नहीं धो सकेंगी। इसलिये ग्वालियर, चित्तौर और चँदेरी में जो कुछ हुआ था, वही विराटा में भी हो।'

'वह क्या ?' जरा व्याकुलता के साथ कुंजरसिंह ने प्रश्न किया।

'जौहर।' धीरज के साथ सबदलसिंह ने उत्तर दिया—'हमारी स्त्रियाँ और बच्चे हम सबको मरा हुआ समझकर चेतन चिता पर चढ़ जायँगे और हम सब थोड़े समय बाद ही अपनी तलवारो के विमान पर बैठकर उनसे स्वर्ग में जा मिलेंगे।'

कुंजरसिंह को यह काव्यात्मक कल्पना कुछ कम पसन्द आई। बोला—'मुझे यह बहुत अनुचित जान पड़ता है। जिन बालकों को गोद में खिलाया है, जिन स्त्रियो के कोमल कंठो के आशीर्वाद से बाँहों ने बल पाया है, उन्हे अपनी आँखों जीते-जी खाक होते हुये कभी नही देखा जा सकता। जब लोग सुनेगे कि हमने अपने हाथो से निर्दोष बालकों को जला मारा, तब क्या कहेगे ?'

सबदलसिह ने कहा—'क्या कहेगे ? कहे। हमारे मर जाने के पीछे लोग हमारे लिये क्या कहते हैं, उसे हम नही सुनेगे और फिर ऐसी अवस्था में हमारे बड़ों ने भी तो जगह-जगह यही किया है।'

'यहाँ कदापि न हो।' कुञ्जरसिंह बोला—'इसमें संदेह नही कि जैसे सो जाने के बाद कुछ पता नही रहता कि क्या हो रहा है, वैसे ही मर जाने के बाद की अवस्था है। इसलिये जीते जी ऐसा काम क्यो किया जाय कि मरने के समय जिसके लिये पछताना हो और आसानी के साथ मरने में बाधा पहुचे ?'

दर्शन शास्त्र की इस संगत या असंगत बात के समझने की चेष्टा न करके सबदलसिंह ने क्षीण स्वर में कहा—'हम लोग कई दिन से यही

बात सोच रहे हैं। मरने से यहाँ कोई नहीं डरता। परन्तु हमारे पीछे जो विधवायें और अनाथ होंगे, उनकी कल्पना कलेजे को तड़पा देती है।'

'क्या पहले कभी विधवायें या अनाथ नही हुये हैं?' अपने मन को आश्वासन देने के लिये अधिक और अपने श्रोताओं को अपेक्षाकृत कम। कुंजरसिंह ने कहा—'यदि हमारा यही सिद्धान्त है, तो हमें कभी न मरने का ही उपाय सोचना चाहिये और जब हमारे सामने हमारे सब प्रियजन समाप्त हो जायँ, तब हमें मरना चाहिये। जब रण-क्षेत्र में सैनिक जाता है, तब क्या वह यह सब सोच-विचार लेकर जाता है? चलो, हम सब मरने के लिये बढ़े। एक-एक प्राण का मूल्य सौ-सौ प्राण ले और अपने बाल-बच्चो को परमात्मा के भरोसे छोड़े। उनके लिये हमें इसलिये भी नही डरना चाहिये कि हमारे विरोधियों में अनेक हिन्दू भी हैं।'

सबदलसिंह के साथियो ने इस बात को मान लिया। वे सब मरने से नही हिचकते थे, परन्तु अपने नन्हे-नन्हे बच्चो को अपने हाथ से नष्ट नहीं कर सकते थे।

'परन्तु।' उनमें से एक असाधारण उत्साह के साथ बोला—'केशरियावाना हम अवश्य पहनेंगे। मौत के साथ हमारा ब्याह होना है, हम सादा कपड़ा पहनकर दूल्हा नही बनेंगे।'

घोर विपत्ति में भी मनुष्य का साथ हँसी नही छोड़ती। वे सब इस बात पर थोड़े हँसे और सभी ने इस बेतुकी-सी बात को पसन्द किया।

सबदलसिंह बोला—'परन्तु केशर शायद ही बिराटा भर में किसी के घर मिले।'

उन सैनिको में से जिसने दूल्हा बनने का प्रस्ताव किया था, कहा—'मैं अभी ढूँढ़कर लाता हूं। केशर न मिलेगी, तो हल्दी तो मिलेगी। मौत के हाथ भी तो उसी से पीले होंगे।' और तुरन्त वहाँ से अदृश्य हो गया।

सबदलसिंह ने कुंजर से कहा—'अब अपनी तोपों से और अधिक आग उगलाओ।'

कुंजरसिंह बोला—'परन्तु जान पड़ता है, अन्धेरी रात के युद्ध में दोनो दल गुँथ गये होगे।'

'तब जहाँ इच्छा हो, गोले बरसाओ।' सबदलसिंह ने कहा—'परन्तु शत्रु के हाथ गोला-बारूद न पढने पावे।'

कुञ्जरसिंह अपने तोपचियो के पास गया। तोपो के मुँह मुरकाये। बहुत देर लग गई। लक्ष्य बाँधने में कम समय नही लगा। जब इस लक्ष्य पर गोला-बारी आरम्भ करा दी, तब सबदलसिंह के पास लौटा।

इस बीच में सबदलसिंह के उन सब सैनिकों ने अपने फटे कपडे हल्दी से रङ्ग लिये थे। थोडी-सी केशर भी एक जगह मिल गई थी। सबदलसिंह ने उसका टीका सबके भाल पर लगाया। कुन्जरसिंह ने भी अपने वस्त्र हल्दी में रगे। सबदलसिंह ने केशर का टीका उसके भाल पर लगाते हुये कहा—'आज दागियो की लाज ईश्वर और तुम्हारी तोपो के हाथ है।'

'राजा!' कुन्जर ने कहा—'निराश नही होना चाहिये। क्या ठीक है, शायद ईश्वर कोई ऐसा ढङ्ग निकाल दे कि बात रह जाय और सब बच जायँ।'

'और कुछ रहने की जरूरत नही है, रहे या न रहे।' एक अधेड सैनिक बोला—'हम लोग केसरिया बाना पहन चुके हैं। यह बिना ब्याह के नही उतारा जा सकता। सगाई पक्की करके अब विवाह से भागना कैसा? बचने-बचाने के सब विचार ध्यान से हटाओ। यदि यही बात मन में थी, तो भाल पर केशर का तिलक किस बिरते पर लगाया? अब ब्रह्मा के सिवा उसे कौन पोछ सकता है? इतने दिनों धीरे-धीरे बहुत लड़े, अब जी खोल-कर हाथ करेंगे और स्वर्ग में विश्राम लेंगे। सच मानिये देह भार-सी जान पड़ने लगी है।'

सबदलसिंह चिल्लाकर बोला—'मूठ पर हाथ रखकर राम-दुहाई करो कि सब के सब मरने का प्रयत्न करेंगे।'

सबने तलवार की मूठों पर हाथ रखकर जोर से कहा—'राम-दुहाई, राम-दुहाई।'

ये शब्द कई बार और देर तक दुहराये गये। उत्तरोत्तर उस ध्वनि में प्रचण्डता आती गई। वे लोग इधर-उधर घूम-घूमकर दुहाई देने लगे। इन लोगों के बढते हुये शोर को अलीमर्दान ने भी सुना। उसने सोचा, खेल बिगड़ गया, अब चुपचाप काम नही बन सकता। यही विचार उसके सरदारों और सैनिकों के भीतर भी उठा। किसी एक ही भाव से प्रेरित होकर वे लोग पहले थोड़े से और कुछ पल उपरान्त ही बहुत से गला खोलकर बोले—अल्ला हो अकबर।

'राम दुहाई' की पुकार इस प्रहर और प्रबल स्वर की गूंज में पतली और फीकी-सी पड़ गई। एक बार विराटा के सिपाहियों का कलेजा धसक-सा गया। परन्तु 'अल्लाहो अकबर' की प्रबल गूंज के ऊपर कुंजर की तोपो की प्रबलता धायँ-धायँ हो रही थी, इसलिये सबदलसिंह के सैनिकों के हृदय में मरने-मारने की धुन ने, एक निराश-जनित भयंकर नवीन अनुभव शीघ्र ही प्राप्त करने की कामना ने पुनः साहस का संचार कर दिया। उन्हे आशा हो चली कि लड़ाई की लम्बी घसीटी हुई थकावट से निस्तार पाने में विलम्ब नही है।

देवीसिंह ने भी 'राम-दुहाई' और 'अल्लाहो अकबर' के जयकार सुने और उसे भी अपनी योजना को बदलना पड़ा। उसने सोचा—'अलीमर्दान बिराटा पर आक्रमण करना ही चाहता है। अब किसी उपयुक्त अवसर की बाट जोहना बिलकुल व्यर्थ है। विराटा पर जिसका अधिकार पहले होगा, वही इस युद्ध को जीतने की आशा करे। इन मूर्खो की तोपे बिना किसी भेद के गोले बरसा रही हैं। यदि शीघ्र हमारे हाथ में आ गई, तो हम रामनगर और विराटा दोनो स्थानो से अलीमर्दान की सेना को कुचल सकेंगे।' वह अपनी सेना लेकर जरा और आगे बढ़ा, सबेरा होने में दो-तीन घंटे की देर थी। वह थोड़ा-सा और ठहरना चाहता था, कम से कम उस समय तक, जब तक अपने दल को खुलकर लड़ने योग्य परिस्थिति में प्रस्तुत न देख ले।

[१०२]

जैसे जंगल के कुपित पशु बिना किसी नियम-संयम के आगे-पीछे, नीचे–ऊँचे कही भी लड़ जाते हैं, उसी तरह रात के उस पहर में वह युद्ध होता रहा। बिराटा की तोपे कभी अपने गोले दलीप नगर के सैनिकों पर कभी कालपी के सैनिको और कभी वृक्षों, पत्थरों पर फेंकती रही।

पूर्व दिशा में क्षितिज से नभ की ओर एक रेखा खिची। उसकी आभा स्पष्ट न थी, परन्तु गगन की नीलिमा और तारिकाओ को प्रभा के ऊपर उसका तिलक सा लग रहा था। वह जिस आगमन की सूचना दे रही थी, कौन जानता था कि उसमें क्या है।

इस समय बड़ी देर बाद छोटी रानी और गोमती का एक भरके में मिलाप हो गया। दोनो ने एक दूसरे के लिये तलवारे तानी और दोनों ने एक दूसरे के पास पहुँचकर मोड़ ली।

'महारानी !' गोमती ने कहा।

'अरे ! मैं समझी थी कोई और है।' छोटी रानी ने भी आश्चर्य के साथ कहा।

गोमती बोली—'अच्छा हुआ, आप मिल गईं। मुझे कुछ कहना है।'

'जल्दी कहो। समय नही है।' छोटी रानी ने कहा।

'मैं रामदयाल के साथ विवाह न करूँगी विश्वास रखिये।'

'इन बातों की चर्चा का यह समय नही है। तुम चाहे उसके साथ विवाह करना, चाहे उसका गला काट डालना, मुझे दोनो बातो में से एक से भी कोई मतलब नही।'

'मैं उसका गला भी न काटूँगी। जितना आश्रय या स्नेह मुझे इन दिनों संसार में रामदयाल से मिला है, उतना कुमुद को छोड़कर मैंने किसी से नही पाया है।'

[१०३]

उसी रात की धूमधाम ने नरपति और कुमुद को भी सजग किया। मन्दिर के पास ही राम 'दुहाई' की ध्वनियों ने नरपति को कारण का पता लगा लाने के लिये विवश किया। कारण की खोज कर लेने में कोई कठिनाई नही हुई। थोड़ी ही देर में वह लौटकर आ गया। भरे हुये स्वर में उसने कुमुद से कहा—'जौहर हो रहा है।'

'जौहर ?' कुमुद ने अकचकाकर नरपति से पूछा—'क्या इसके लिये सब लोग तैयार हो गये हैं ? हम लोगों से किसी ने नही पूछा ?'

'मैंने भी यह प्रश्न राजा से किया था।' नरपति ने उत्तर दिया—'और बडी रुखाई के साथ बोले—तुम्हे मरना हो, तो तुम भी आ जाओ।' तुम्हारे विषय में उनकी सम्मति मागी, तो कहा—'जो मन में आवे, सो करें।' तुम्हारी सम्मति क्या है ? इसी के लिये मैं व्याकुल हो रहा हूं। सब दांगी केशरिया बाना पहने उछलते-कूदते फिर रहे हैं।'

कुमुद ने गला साफ किया। दो पल चुप रही। फिर अर्द्ध-कंपित स्वर में बोली—'मै तो कभी की मरने के लिये तैयार हूं। यदि इस युद्ध का कारण पहले ही मिट जाता, तो आज बिराटा के इतने शूर-सामन्तो का व्यर्थ बलिदान न होना। मैं न-जाने क्यो जीवित रही ? किसके लिये ?' फिर तुरन्त चुप हो गई। एक क्षण पश्चात् फिर कहा—'आप तैरना जानते हैं। तैरकर उस पार चले जाइये।'

'उस पार तो जाऊँगा।' नरपति ने उत्तेजित होकर कहा—'परन्तु तैरकर नही। पानी में प्राण देना मुझे कठिन जान पड़ता है। अथाह जल-राशि है। उसमें बड़े-बड़े भयानक मगरमच्छ हैं। जगह-जगह बड़ी-बड़ी भँवरे पड़ती हैं और बहुत चौड़ा पाट है। मैं तो तलवार की धार पर मरना अधिक श्रेयस्कर समझता हूं। मै मूर्ख भले ही हूँ, परन्तु इतना मूर्ख नही कि तुम्हे छोड़कर भाग जाऊँ। तुम उस पार चलो, तो तुम्हे लेकर चल सकता हूं। देवी का स्मरण करो। वह बेड़ा पार लगावेंगी। उठो, चलो। मै तुम्हे अभी सुरक्षित स्थान में पहुंचाऊँगा।'

स्थिर स्वर में कुमुद बोली—'यह असम्भव है। सब लोग यही हैं, मैं भी यही रहूंगी पार्थ, सारथी और तोपो के चलानेवाले जब यहां हैं, तो मेरा बाल वांका नही हो सकता और जब कुछ भी न रहेगा, तो मां बेतवा तो सदा साथ हैं। आप अपनी रक्षा की चिन्ता अवश्य करें। मैंने जिस गोद में जन्म लिया है, उसे नष्ट होता हुआ नही देखना चाहती। आप जाये। अकेले आपके यहां रहने से कोई सुविधा नही बढेगी। देवी की आज्ञा है, दुर्गा का आदेश है, आप जाये। आपके यहां ठहरने से अनिष्ट हो सकता है। आप जाये। अभी चले जाये।

'मैं कदापि न जाऊँगा।' नरपति ने हँसकर कहा—'मै भी दाँगी हूं। मैं भी अपने कपड़े हल्दी में रँगता हूँ। हम सब दाँगियो को अपना अन्तिम आशीर्वाद दो। हम थोडे हैं और दरिद्र हैं। तुम एक अनेक हो। शक्ति हो शक्तिशालिनी हो। हमें वरदान दो, जिसमें पुरुष की तरह मरें।' फिर आँखे फाड़कर प्रखर स्वर में ऊपर की ओर देखकर बोला—'दुर्गे देवी! हम थोड़े से दांगियो ने अपने अन्तिम रक्त-कण से आपके देवालय की रखवाली की है। हमारे हृदय को अब इतना बल दो कि अन्त समय हमारे भीतर किसी तरह की हिचक न आवे और हम हँसते-हँसते तुम्हारे झूले की डोर पकड़कर पार हो जायँ। मा, मा आशीर्वाद दो।' 'दो, दो' की अन्तिम गूँज उस खोह में कई बार गूँजी। नरपति का शरीर थिरकने लगा। वह प्रमत्त होकर गाने लगा और ताली बजाने लगा—

"मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-बन के।

ऊँची-नीची घटिया डगर पहार
जहाँ बीरा लँगुरा लगाई फुलवार
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-बन के।

छोटी-सी रे मालिन लम्बे ऊके केस,
फुलवा बीने पुरुष के बेस।
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-बन के।

बीन-बीन फुलवा, लगाई बड़ी रास,
उड़ गये फुलवा, रह गई बास।
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-वन के।"

नरपति उठ खड़ा हुआ। गीत की गूँजती हुई तान में वह अपनी खोह के बाहर हो गया। शायद हल्दी के रङ्ग में अपने फटे हुये कपड़े रंगने के लिये। कुमुद ने सिर नवा लिया। हाथ जोड़कर अपने कोमल कण्ठ से गाने लगी—

"मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-वन के।
बीन-बीन फुलवा लगाई बड़ी रास,
उड़ गये फुलवा रह गई बास।
मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-वन के।"

उस खोह में, उस रात्रि में, उस धूमधाम में, उस प्रकार चीत्कार में, उस धाँय-धांय, सांय-सांय में उस कोमल कण्ठ की वह स्वर्गीय तान समा गई—

"उड़ गये फुलवा, रह गई बास।"

[१०४]

प्रभात-नक्षत्र क्षितिज के ऊपर उठ आया। दमक रहा था और मुस्करा-सा रहा था। वनराशि और नीचे की पर्वत-श्रेणी पर उसका मन्द मृदुल प्रकाश झर-सा रहा था।

देवीसिंह ने देखा प्रातःकाल होने में अब अधिक विलम्ब नही है। उसने रामनगर की ओर वह बँधा हुआ संकेत किया, जिसे पाकर उस गढ़ी की तोपों को दिराटा पर गोले बरसाने थे। उस सकेत के पाने के आधी घड़ी बाद बिराटा पर गोले आने लगे।

तब देवीसिंह ने सोचा, यह अच्छा नही किया। यदि हमारी तोपों ने इन पागल दांगियो को पीस डाला, तो अलीमर्दान का विरोध करने के लिये केवल हम हैं। अब किसी तरह यहां से अलीमर्दान को हटाना चाहिये। दिन निकलने के पहले यदि हम बिराटा पहुँच गये, तो कदाचित् हमारी ही तोपों से हमारा ही चकनाचूर हो जाय, इसलिये सूर्योदय तक केवल अलीमर्दान को खदेड़ने का उपाय करना ही ठीक जान पडता है।

देवीसिंह ने अपने दल को आक्रमण करने का आदेश दिया। 'अल्लाहो अकबर' के साथ 'दलीपनगर की जय, महाराज देवीसिंह की जय' पुकारे सम्मिलित हो गईं। अलीमर्दान को अनजानी दिशा के आकस्मिक आक्रमण के धक्के को झेलने में विचलित हो जाना पड़ा, परन्तु उसके सैनिक दलीपनगर के सैनिकों की तरह ही युद्ध के लिये तैयार खड़े थे। मुठभेड़ के प्रथम धक्के से पहले ज़रा पीछे हटकर फिर आगे बढ़े। आज अलीमर्दान बेतरह सचेष्ट था। देवीसिंह भी कोई कसर नही लगा रहा था। दोनों ओर के सैनिक भी हाथ और हथियार दोनों पर प्राणों की होड़ लगा रहे थे। बराबरी का युद्ध हो रहा था। दोनों संयत तेजस्विता के साथ लड़ रहे थे। ऐसा भासित होता था कि उस युद्ध का भाग्य-निर्णय एक बाल से टँगा हुआ है।

प्रातःकाल का प्रकाश होनें तक देवीसिंह ने जमकर लड़ना ही ज्यादा अच्छा समझा। तितर-बितर होने में सारी योजना भ्रष्ट हो जाने का भय था। यही बात अलीमर्दान ने भी सोची।

निदान, पूर्व दिशा मे लाली दौड़ी। अन्धकार एक क्षरण के लिये सघन और एक क्षरण के लिये छिन्न-भिन्न सा होता दिखलाई दिया।

उत्सुकता के साथ देवीसिंह ने जनार्दन शर्मा और लोचनसिंह के दलों को आंख से टटोला। जनार्दन की टुकड़ी तितर-बितर हो गई थी। कालपी के दल का एक भाग रामनगर की तलहटी में पहुंच गया था, दूसरा देवीसिंह की बगल में ही जनार्दन के एक भाग से उलझा हुआ था और जनार्दन थोड़े से सैनिको के साथ एक कालपी की दूसरी टुकड़ी से घिरा हुआ था। इसमें छोटी रानी भी भाग ले रही थी, लोचनसिंह का एक दस्ता कालपी के एक टुकड़े को अलीमर्दान की छावनी के पीछे निकाल चुका था। लोचनसिंह कालपी वाले दस्ते पर एक ओर और अलीमर्दान के तैयार योद्धाओ पर दूसरी ओर प्रहार कर रहा था।

लोचनसिंह को अपने निकट देखकर देवीसिंह ने चिल्लाकर कहा—'शाबाश चामुण्डराय, बढ़े चले जाओ।' इस वाक्य को लोचनसिंह या उसके किसी सैनिक ने नही सुन पाया, परन्तु देवीसिंह के अनेक सैनिकों के मुँह से यह वाक्य एक साथ निकला।

लोचनसिंह की टुकड़ी ने भी उत्तर दिया—'आये, अभी आये।'

जनार्दन देवीसिंह के और भी पास था। देवीसिंह ने चिल्लाकर कहा—'जनार्दन, घबराना नही। लोचनसिंह और हमारे बीच में शत्रु अभी दबोचा जाता है।' देवीसिंह इतने ज़ोर से चिल्लाया था कि उसका गला भर्रा गया और उसे खाँसी आ गई। खांसी ने उसके सिर को ज़रा नीचा कर दिया और तिरछा भी, इसलिये एक स्थान से आई हुई एक अचूक गोली उसके कान को लेती हुई चली गई, परन्तु प्राण बच गया।

चिन्ता के साथ अलीमर्दान ने देखा। भयानक उत्तेजना के साथ उसकी सेना ने जनार्दन के खड पर वार करने शुरू किये। जनार्दन के

लिये पीछे हटने को न स्थान था, न अवसर। इसलिये वह देवीसिंह की ओर ढलने लगा। देवीसिंह के सैनिकों की मार के कारण कालपी के सैनिको ने जनार्दन को स्थान दे दिया और वह अपने सैनिकों सहित देवीसिंह की टुकड़ी के साथ आ मिला।

'महाराज देवीसिंह की जय!' इस ओर से अतुल ध्वनि हुई।

'महाराज देवीसिंह की जय?' लोचनसिंह के दल से प्रचड शब्द गूँज उठे।

रामनगर के गढ़ से बिराटा की गढी पर निशाना बांधकर धाँय-धांय गोले बरसने लगे और उसकी दीवारें एक-एक करके टूटने लगी। एक गोला मन्दिर पर गिरा। उसका एक भाग खडित हुआ। दूसरा गिरा, दूसरा भाग खंडित हुआ। तीसरा गिरा, वह धुस्स होकर रह गया। इतनी धूल उड़ी की चारों ओर छा गई। पत्थरो और ईंटो के इतने टुकड़े टूटकर बेतवा की धार में गिरे कि पानी छर्र-छर्र हो गया।

रामनगर की तोपों के मुँह बन्द करने का कोई उपाय देवीसिंह के हाथ में न था। पहले रामनगर फिर बिराटा की ओर चिन्तित दृष्टि से देवीसिंह ने देखा। आंखो में आंसू आ गये। वे कान की जड़ से बहने वाले खून में ढलकर जा मिले।

आह भरकर उसने कहा—'मेरे हाथ से मन्दिर टूटा। हे भगवान्, किसी तर इस युद्ध को बन्द करो—चाहे मेरा प्राण लेकर ही।'

परन्तु न तो रामनगर की तोपो ने गोले बरसाने बन्द किये और न देवीसिंह का प्राण ही किसी ने उस समय ले पाया।

बिराटा की टूटी हुई दीवारो से फटे चिथड़े पहने हुये सबदलसिंह के सैनिक दिखलाई पड़ने लगे। उनके चिथडे पीले रगे हुये थे। सिर के फटे हुये साफो के चिथडे लहरा रहे थे, मानो विजय-पताकायें हो। राम-नगर की तोपो से वे नही डर रहे थे। उनकी तोपें कभी अलीमर्दान और कभी जनार्दन की टुकड़ियो पर आग उगल रही थी। परन्तु एक गोले के बाद दूसरे के चलने में बराबर अन्तर बढ़ता चला जाता था।

सूर्योदय हुआ—उसी सज-धज के साथ, जैसा असंख्य युगों से होता चला आया है। सूर्य की किरणों ने भी बिराटा के दुर्बल, विवर्ण सैनिकों के पीले वस्त्र-खडो की ओर झाँका और उनकी दमकती तलवारों को चमका दिया, मानो रश्मियो ने उन्हे अर्घ्य दिया हो।

बिराटा के सैनिक उन टूटी-फूटी दीवारों के पीछे डटे हुये थे। बाहर निकलकर लड़ने को अब तक नही आये थे।

देवीसिंह ने इन पीत-पट-धारियो की चुप्पी का अर्थ समझ लिया। आह भरकर मन में कहा—'इसका पाप भी मेरे ही सिर आना है। किस कुघडी में दलीपनगर का राजमुकुट मेरे माथे पर रक्खा गया था!' एक ही क्षण पीछे देवीसिंह ने दाँत पीसकर निश्चय किया—इन्हे अवश्य बचाऊँगा, चाहे होड़ में दलीपनगर नही, सारी पृथ्वी और स्वर्ग को भी भले ही हार जाऊँ और चिल्लाकर बोला—'बढो, बढो। क्या खड़े होकर युद्ध कर रहे हो? आज ही मा का ऋण चुकाना है। बढ़ो और मरो। इससे अच्छी मृत्यु कभी न मिलेगी।'

सैसिक बढ़े और उन सबके आगे उछलता हुआ देवीसिंह।

सूर्य की किरणे कान की जड़ से बहने वाले रक्त को दमक देने लगी। अपने राजा को घायल और उछलकर सबसे आगे बढा हुआ देखकर दलीपनगर के योद्धा सब ओर से अलीमर्दान की सेना पर पिल पड़े।

[१०५]

परन्तु अलीमर्दान वाले दस्ते ने इस भीषण आक्रमण को उसी तरह रोक लिया, जैसे ढाल तलवार का वार रोक लेती है। जिस ओर से लोचनसिंह आक्रमण कर रहा था, उस ओर कालपी की एक टुकड़ी ने भयंकर संग्राम आरम्भ कर दिया। परन्तु वह दो तरफ से घिर गई।

अलीमर्दान देवीसिंह के सैनिको से लडता-भिडता, पंक्तियों को चीरता-फारता नदी के किनारे आगया, जहाँ रात के आरम्भ से ही बिराटा के कुछ सैनिक प्रहरी का काम कर रहे थे। उन्हे थोड़े-से क्षणो में समाप्त करके वह अपने कुछ सैनिको सहित नाव पर चढ गया। उसके एक दस्ते ने तीरवर्ती गाँव पर अधिकार कर लिया। बिराटा-गढी की फूटी दीवारो में से बन्दूकों की एक बाढ चली। अलीमर्दान के कुछ सैनिक हताहत हुये। उसके और सैनिक प्रचुर संख्या में पानी में कूद पडे। वहाँ धार छोटी थी। वे लोग जल्दी ध्वस्त मन्दिर के नीचे वाली पठारी पर आ गये। अलीमर्दान भी वहाँ नाव द्वारा आ गया।

देवीसिंह प्रबल पराक्रम से ही अलीमर्दान के शेष सैनिकों को पानी में कूद पड़ने से रोक सका। उसके दल ने उन लोगो को थोड़ा-सा पीछे हटाया। फिर देवीसिंह भी अपने कुछ सैनिको के साथ पानी में कूद पड़ा।

अलीमर्दान और उसके सैनिक दौड़ते हुये ऊपर चढे।

बिराटा के पीत-पट-धारी अपनी टूटी दीवारो के बाहर निकल पड़े। तलवारों से सिर और धड़ कटने लगे। अलीमर्दान के सैनिक कवच और झिलम पहने हुये थे, तो भी दांगियों की तलवारों ने उन्हे चीर डाला।

सबदलसिंह ने अलीमर्दान को ललकारा—'जब तक इस गढी में दाँगी का जाया जीवित है, तेरी साध पूरी न हो पायेगी। ले।'

अलीमर्दान चतुर लड़ाका था। सबदलसिंह के वार को बचा गया और फिर उसने अपनी तलवार का ऐसा प्रहार किया कि उसका दायाँ हाथ कंधे से कटकर अलग जा गिरा। सबदलसिंह भू शायी हो गया।

बेतवा की मंदगामिनी धारा पर रपट-रपटकर चमकने वाली किरणों की ओर उसकी दृष्टि थी।

फिर जो कुछ हुआ, वह थोड़े-से क्षणों का काम था। सबदलसिंह के योद्धा अलीमर्दान के बचे हुये दस्ते की तलवारों की नोकों पर झूम-झूमकर आ टूटने लगे। अलीमर्दान के थोड़े-से ही कवचधारी उन लोगों से बच पाये। परन्तु दाँगी कोई न बचा। जगह-जगह कटे-कुटे शरीरों के ढेर लग गये। 'केशरिया बानों' से ढँकी हुई पृथ्वी हल्दी से रंगी मालूम होती थी, मानों रण-चंडी के लिये पाँवड़ा बिछाया गया हो।

देवीसिंह अपने थोड़े-से सैनिकों-सहित गढ़ी के नीचे आया। विलम्ब हो गया था। अलीमर्दान गढ़ी में प्रवेश कर चुका था।

देवीसिंह ने अपने सैनिकों को, जो उस पार थे, नदी में कूद पड़ने के लिये हाथ झुकाया।

इतने में कुञ्जरसिंह ने एक गोला दलीपनगर की इसी टुकड़ी पर फेंका। इस कारण इन्हे ज़रा पीछे हटना पड़ा। परन्तु दलीपनगर की सेना का एक बहुत बड़ा भाग नदी-किनारे के ज़रा ऊपरी भाग से पानी में कूद पड़ा और वेग तथा व्यग्रता के साथ देवीसिंह की ओर आने लगा। देवीसिंह धीरे-धीरे गढी की टूटी दीवारों की ओर चढ़ने लगा। पीले कपड़ो से ढँकी हुई मृत और अर्द्ध-मृत देहों को देखकर उसका कलेजा धँसने लगा और पैर लड़खड़ाने लगे। वह गढ़ी के भीतर न जा सका। धार तैरकर आने वाले अपने सैनिको के आने तक वही ठिडक गया। पीले वस्त्रो से ढँके हुये लोहू-लुहान की ओर फिर आँख गई। होठ दबाकर मन में कहा—'कुञ्जरसिंह की हिंसा ने इन्हे मुझ से न मिलने दिया।'

[१०६]

कुञ्जरसिंह की तोप का वह अन्तिम गोला था। उसे दागकर कुञ्जर-सिंह अपनी तोपों को नमस्कार कर खोह की ओर तेज़ी के साथ आया। खोह के बाहर उसे वीणा-विनिंदित स्वर में सुनाई पड़ा—

"मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-बन के।

बीन-बीन फुलवा लगाई बड़ी रास,

उड़ गये फुलवा रह गई बास।

मलिनिया, फुलवा ल्याओ नँदन-बन के।"

'उठो, चलो।' कुञ्जरसिंह ने खोह में धसकर कुमुद से कहा—'मुसल-मान घुस आये हैं। हमारे सब सैनिको ने जौहर कर लिया है।'

कुमुद खड़ी हो गई। मुस्कराई। परन्तु आंखो में एक विलक्षण प्रचण्डता थी। बोली—'सब ने जौहर कर लिया है! सब ने? अच्छा किया। चलो, कहाँ चले?'

'नदी के उस पार, गढी के पूर्व ओर से। अभी वहाँ कोई नही पहुँचा है। हम दोनों चलेगे।'

'हाँ, दोनों चलेगे उस पार; परन्तु अकेले-अकेले।'

'मैं समझा नही।' कुञ्जरसिंह ने व्यग्रता के साथ कहा।

'मै उस ओर से जाऊँगी, जहाँ मार्ग में कोई न मिलेगा।' कुमुद दृढता के साथ बोली—'आप उस ओर से आये, जहाँ जौहर हुआ है। हम लोग अन्त में मिलेगे।'

और उसने अपने आँचल के छोर से जङ्गली फूलो की गूँथी हुई एक माला निकाली और कुञ्जर के गले में डाल दी। उस माला में फूल अधखिले और सूखे थे।

कुञ्जरसिंह ने कुमुद को छाती से लगा लिया। कुमुद तुरन्त उससे अलग होकर बोली—'यह मेरा अक्षय भांडार लेकर जाओ। अब मेरे पास और कुछ नही।' कुमुद के आंसू आ गये। उसने उन्हे निष्ठुरता के

साथ पोंछ डाला। थोड़ी दूर पर लोगों की आहट सुनकर कुमुद ने आदेश स्वर में कहा—'जाओ। खडे मत रहो। मुझे मार्ग मालूम है।' फिर जाते-जाते मुड़कर बोली—'मेरा मार्ग निःशंक है; तुम अपना असंदिग्ध करो।'

'मैं अभी आकर मिलता हूँ। तुम चलो।' कुञ्जरसिंह ने कहा। कुमुद तेज़ी के साथ एक ओर चली गई और दूसरी ओर तेजी के साथ कुञ्जरसिंह।

उन दोनों के चले जाने के थोड़ी देर बाद अलीमर्दान अपने लोहू-लुहान सैनिको के साथ आ धमका। जब वहा कोई न मिला, उसने अपने सैनिको से कहा—'यही कही है। इन चट्टानो में तलाश करो। मैं इधर देखता हूं। कुछ लोग इधर से आने वालो को रोकने के लिये मुस्तैद रहना।'

अलीमर्दान और उसके कुछ सैनिक इधर-उधर ढूँढने-खोजने लगे। जिस ओर कुञ्जरसिंह गया था, उसी ओर अलीमर्दान गया। एक ऊँची चट्टान पर खड़े होकर अलीमर्दान ने धीरे से अपने निकटवर्ती एक सैनिक से कहा—'वह देखो, धीरे-धीरे उस ढालू चट्टान की तरफ जा रही है। कमाल है, देखो।'

[१०७]

कुञ्जर को मार्ग में देवीसिंह मिल गया।

'तुम कहाँ जा रहे हो ?' देवीसिंह ने पूछा और जो बात वह कहना नही चाहता था, वह उसके मुँह से निकल गई—'तुमने जौहर नही किया ?'

कुञ्जरसिंह ने भी अपने कपडे पीले किये थे, परन्तु वह सार्वजनिक वलिदान में अपनी तोपो की धुन के कारण शामिल न हो पाया था। देवीसिंह की बात उसके कलेजे में काटे की तरह चुभ गई।

वोला—'जौहर ही के लिये आया हूँ। आज जीवन-भर की कसक मिटाऊँगा। तुमने मेरे स्वत्व का अपहरण किया। तुम्हे मारे बिना मुझे कभी चैन न मिलेगा। तुम्हारा सिर काटने से बढकर मेरे लिये कुछ भी नही।' और देवीसिंह पर वार करने लगा। वार सँभालते हुए देवीसिंह ने कहा—'स्वर्ग या नरक, जो तुम्हारे भाग्य में होगा वही अभी भेजता हूँ।'

लडाई के लिये स्थान उपयुक्त न था, इसलिये स्वभावत. दोनो लड़ते लड़ते नदी की एक ढालू पठारी की ओर क्रमश: चले गये।

दलीपनगर की सेना ने अपने राजा को इस विपत्ति में ग्रस्त देखा। अलीमर्दान भी वहुत अधिक सैनिक लेकर बिराटा की गढी में नही गया था, इसलिये उसकी सेना भी अपने नायक की रक्षा के लिये उत्साहित हो उठी। दोनो दल नदी की ओर झुके और परस्पर लडते-भिडते पानी में कूद पड़े। लोचनसिंह पीछे से दबाता हुआ आ पहुँचा। जनार्दन भी दौड़ पड़ा। इसी भीड़ में एक ही स्थान पर रामदयाल, लोचनसिंह और छोटी रानी आ भिड़े।

रानी ने लोचनसिंह पर तलवार उठाई और कहा—'ले बेईमान, मूर्ख ?' लोचनसिंह के पैरे को इस वार ने थोड़ा-सा घायल कर दिया। लोचनसिंह बोला—'दलीपनगर की दुर्दशा के कारण को अभी मिटाता हूं।' और आँधी की तरह तलवार घुमाकर लोचनसिंह ने छोटी रानी की भूलोक-यात्रा समाप्त कर दी।

रामदयाल खिसका। कहता गया—'दाऊजू, मै लड़ाई में नही हूँ। मै तो किसी को ढूँढ़ रहा हूँ।'

'जो जन्म-भर किया है, वही किया कर नीच!' लोचनसिंह ने लात मारकर कहा और वह तुरन्त अपनी सेना के आगे पानी में कूद पड़ा। रामदयाल एक चट्टान पर से भरभराकर पत्थरो से टकराता हुआ पानी में जा गिरा और फिर कभी नही देखा गया।

नदी की वह छोटी धार उतराते हुये सिपाहियो से भर गई। कोई कूदते जा रहे थे, कोई तैरते और कोई गढी के नीचे पहुँचते जा रहे थे।

उधर खुली और जरा विस्तृत जगह पाकर कुञ्जरसिंह देवीसिंह पर वार-पर-वार करने लगा। दलीपनगर और कालपी के भी कुछ सैनिक लड़ते—लड़ते इसी ओर आ रहे थे। ढालू चट्टान के धारवर्ती छोर की ओर कुमुद सरकती जा रही थी और पीछे पीछे अलीमर्दान। वह शीघ्र गति से और अलीमर्दान हथियारो के बोझ के मारे जरा धीरे-धीरे।

कुञ्जरसिंह ने देवीसिंह पर वार करते-करते उस ओर देखा। हाथ शिथिल हो गया। हाँपते-हाँपते बोला—'प्रलय हुआ चाहती है।'

'अभी, एक क्षण की भी कसर नही।' देवीसिंह ने कहा और तलवार का भरपूर हाथ दिया। कुञ्जरसिंह का सिर धड़ से कटकर अलग जा पड़ा। गले की माला छिन्न हो गई। सूखे हुये फूल पर रक्त का छीटा पड़ा। सूर्य की किरण में वह चमक उठा, मानो अनेक रश्मियों की ज्योति उसमें समा गई हो।

अलीमर्दान और कुमुद के बीच में अभी कई डगों का अन्तर था। देवीसिंह उसी ओर लपका।

कुमुद शान्त गति से ढालू चट्टान के छोर पर पहुँच गई। अपने विशाल नेत्रो की पलको को उसने ऊपर की ओर उठाया। उँगली में पहने हुई अँगूठी पर किरणें फिसल पड़ी। दोनो हाथ जोड़कर उसने धीमे स्वर में गाया—

'मलिनिया, फुलवा ल्याओ नन्दन-बन के।
बीन-बीन फुलवा लगाई बड़ी रास;
उड़ गये फुलवा, रह गई बास।'

उधर तान समाप्त हुई, इधर उस अथाह जल-राशि में पैंजनी का 'छम्म' से शब्द हुआ। धार ने अपने वक्ष को खोल दिया और तान-समेत उस कोमल कण्ठ को सावधानी से अपने कोश में रख लिया!

ठीक उसी समय वहां अलीमर्दान भी आ गया। घुटना नवाकर उसने कुमुद के वस्त्र को पकड़ना चाहा, परन्तु बेतवा की लहर ने मानो उसे फटकार दिया। मुट्ठी बाधे खड़ा रह गया।

इतने में रक्त से रँगी तलवार लिये हुये देवीसिंह आ पहुँचा। अली-मर्दान ने तलवार-समेत अपने दोनो हाथो को अपनी छाती पर कसकर कहा—'आप—राजा देवीसिंह हैं?'

'हाँ, सँभालो।' देवीसिंह ने उत्तर दिया।

'क्या झलक थी महाराज!' लड़ने का कोई भी लक्षण न दिखलाते हुये अलीमर्दान बोला—'बहुत हो चुकी। अब बन्द करिये। आप दलीप-नगर पर राज्य करिये। हम लोग लड़ना नही चाहते। भ्रम ने हमारे-आपके बीच मे वैर खड़ा कर दिया था।'

दोनों पक्षो के सैनिक मतवाले-से पौडते चले आ रहे थे। अलीमर्दान ने निवारण करने के लिये जोर से कहा—'दूर रहो। चट्टान की उस छोटी-सी खोल पर जो मिट्टी है, उसके पास मत आना। उसमें पद्मिनी के पैर का और सरकने का चिह्न बना हुआ है। उससे दूर रहना।'

तलवार नीची करके देवीसिंह ने कहा—'पद्मिनी का नाम आपके मुँह से अच्छा नही लगता नवाब साहब। आप ही ने उसके प्राण लिये हैं आप यहाँ से जाइये। यह स्थान हमारी पूजा की चीज़ है।'

'अवश्य।' अलीमर्दान क्षीण हँसी हँसकर बोला—'तभी आपकी तोपों ने उसकी एक-एक ईंट धूल में मिला दी है।'

सैनिको की भीड़ बढती चली जा रही थी, परन्तु वे लड़ नही रहे थे। रण का उत्साह एक अनिश्चित उत्सुकता में परिवर्तित हो गया था, एक ओर से घायल लोचनसिंह और दूसरी ओर से लहू-लुहान मुसलमान नायब वहां आए। नायक ने अपने नवाब से कहा—'क्या चली गई ? चिड़िया हाथ से उड़ गई ? लड़ाई क्यो बन्द कर दी गई ?'

लोचनसिंह ने लपककर सरदार पर तलवार का वार किया और कहा—'यह उड़ी चिड़िया।' वह हत होकर गिर पड़ा।

दोनों ओर के सैनिक ऊँचे-नीचे इधर-उधर भिड़ गए। अलीमर्दान ने तलवार नही उठाई। अपने सैनिकों को रोकते हुए बोला—'लड़ाई बन्द करो। महाराज देवीसिंह के साथ हमारी सन्धि हो गई है।' फिर पास खडे हुये देवीसिंह से कहा—'रोकिये अपने सिपाहियो को। नाहक खून खराबी को बचाइये। देखिये, अपने प्यारे सरदार को अपनी आँख के सामने मारे जाते हुये भी क्रोध नही आ रहा है।'

देवीसिंह ने कड़ककर लोचनसिंह से कहा—'तुम्हारे-जैसा मूर्ख पशु ढूँढ़ने पर भी नही मिलेगा। शान्त हो जाओ, नही तो तुम्हारे ऊपर मुझे हथियार उठाना पड़ेगा।'

'उसने हमें बहुत सताया था, इसलिये मार दिया।' लोचनसिंह बोला—'छोटी रानी को समाप्त कर ही आये हैं। अब यदि नवाब साहब के मन मे कोई साध हो, तो इनके लिये भी तैयार हूँ।'

'निकल जाओ यहां से पशु।' देवीसिंह ने क्रुद्ध होकर कहा—'नही तो किसी से निकलवाऊँ ? जनार्दन ? कहां है जनार्दन ?'

भीड के एक कोने से आहत जनार्दन सामने आ गया। परन्तु राजा और मन्त्री में कोई बात नही हो ने पाई, बीच में ही लोचनसिंह बोल उठा—'ऐसे कृतघ्न राज्य के राज्य में जो रहे, उसे धिक्कार है। यह पड़ी है पत्थरो पर तुम्हारी चामुण्डराई।' और उसने अपने फेटे को बड़ी अवहेलना से चट्टान पर फेक दिया। वह फरफराकर धार में बह गया। लोचनसिंह तीव्र गति से वहां से अदृश्य हो गया।

अलीमर्दान और देवीसिंह के बीच कुछ शर्तों के साथ सान्धि स्थापित हो गई। सब लोग लौटकर धीरे-धीरे चले। अभी ढालू चट्टान के सीरे पर पहुंच न पाये थे कि कुछ सिपाही अचेत, आहत गोमती को देवीसिंह के सामने ले आये।

'क्या महारानी?' देवीसिंह ने पूछा—'पुरस्कार के लिये ले आये हो? मिलेगा, पर यहां से सब को ले जाओ।'

'रानी नहीं हैं महाराज!' एक सैनिक ने उत्तर दिला—'उनका रुण्ड तो उस पार पड़ा है। यह कोई और है। कहती थी, राजा के पास ले चलो, बदला लेना है। इतना कहकर शचेत हो गई। इसके पास तमंचा था। वह हमने ले लिया है।'

देवीसिंह ने जरा बारीकी के साथ देखा। एक आह ली और कहा—'मरणासन्न है।'

सैनिको ने अचेत गोमती को नीचे रक्खा। देवीसिंह ने उसके सिर पर हाथ फेरा। एक क्षण बाद गोमती ने आखे खोली। धूली-भटकी हुई दृष्टि। फिर तुरन्त वन्द करली। एक बार मुँह से धीरे से निकला—'रामदयाल!' और वह अस्त हो गई।

अलीमर्दान अपनी सेना लेकर चला गया। देवीसिंह दाँगी वीरो के शवों के पास गया। सिर नवाकर उसने प्रणाम किया। उसके सब सैनिको ने नतमस्तक होकर नमस्कार किया।

देवीसिंह ने कहा—'अपनी बात पर अटल थे ये। अपनी वान पर निश्चलता के साथ ये मरे। इन्हे मरने में जैसा सुख मिला होगा हमें कदाचित् जीवन में भी न मिलेगा। बहुत समारोह के साथ इनकी दाह क्रिया की जानी चाहिये।' देवीसिंह का गला भर आया।

फिर संयत होकर थोड़ी देर मे बोला—'बिराटा का गांव किसी अन्य को जागीर में कभी नही दिया जायगा। जब तक दांगियो में कोई भी बचेगा, उसी के हाथ में यह गाव रहेगा।

फिर जनार्दन शर्मा और अपने सरदारों को वह उस स्थान पर ले गया जहाँ जाकर कुमुद ने आत्मबलिदान किया था। वह स्थान मन्दिर के सामने से जरा हटकर दक्षिण की ओर था। ढालू चट्टान पर बारीक मिट्टी का एक बहुत हलका थर जमा था। उस पर कुमुद के पद और सरकने के चिन्ह अङ्कित थे। दह की लहरें सजग और चपल थीं। देवीसिंह को रोमाँच हो आया। उस ओर उँगली से संकेत करते हुये जनार्दन से कहा—'देवी ये अन्तिम चिह्न छोड़ गईं हैं। लहरें कुछ कह सी रही हैं। उनके नीचे से पैंजनी की ध्वनि अब भी आती जान पड़ती है।

जनार्दन थके हुये स्वर में बोला—'महाराज, हम लोगों के आने में बहुत विलम्ब हो गया।'

'जनार्दन।' राजा ने कहा—'कुन्जरसिंह की नादानी ने मेरी सारी योजना पर पानी फेर दिया।' फिर दह की लहरों पर से आँख को हटाकर एक क्षण बाद बोला—'इन चिह्नो को इस चट्टान पर ज्यों का त्यों अंकित करवा देना चाहिये। लोग पर्वों पर आकर इस पुण्य-स्मृति से अपने को पवित्र किया करेंगे।'

'जो आज्ञा।' जनार्दन ने उत्तर दिया। देवीसिंह ने दह की ओर देखा।

अभी-अभी थोड़ी देर पहले किसी की उँगली की अँगूठी ने सूर्य की किरणो से होड़ लगाई थी। अभी-अभी थोड़ी ही देर पहले उस जल-राशि पर 'छम्म' से कुछ हुआ। किसी अलौकिक सौंदर्य का उस शब्द के साथ सम्वन्ध था और लहरों पर पवन में वह गीत गूँज रहा था—

'उड़ गये फुलवा, रह गई बास।'

श्री वृन्दावनलाल वर्मा-साहित्य

उपन्यास

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई	६)
माधव जी सिंधिया	६)
मृगनयनी	५)
अमरबेल	५)
कचनार	४॥)
टूटे काटे	४।)
भुवनविक्रम	३॥)
अचल मेरा कोई	३॥।)
सोना	३)
अहिल्याबाई	२।)
मुसाहिबजू	१॥)
प्रेम की भेंट	१।)
लगन	१।)
बिराटा की पद्मिनी	४)
कुण्डली चक्र	२।)
सगम	२)
प्रत्यागत	१॥)
बुन्देलखंड के लोकगीत	॥)

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा कृत

प्राण दण्ड	५)
She was not Ashamed	2/-
कहा-सुनी	१॥)
ऐसा-वैसा	२)

श्री प्रकाश सक्सेना कृत

धरतीविहंसी	१॥)

★

वर्मा जी को भेंट

—

डालमिया पुरस्कार
२१००)

साहित्यकार-संसद-पुरस्कार
१०००)

उ० प्र० राज्य पुरस्कार
१०००)—१०००)

म० भा० राज्य पुरस्कार
१०००)

नागरी प्रचारिणी पुरस्कार
२५०)

भारत सरकार का प्रथम पुरस्कार
२०००)

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
५००)

नाटक

हंस मयूर	२।)
पूर्व की ओर	२।)
झांसी की रानी	२)
ललितविक्रम	१॥।)
राखी की लाज	१।)
केवट	१।)
खिलौने की खोज	१।)
नीलकण्ठ	१।)
बीरबल	१।)
फूलो की बोली	१।)
कनेर	१)
बांस की फांस	१)
मंगल सूत्र	१)
काश्मीर का कांटा	१)
निस्तार	१)
लो भाई पंचो लो	॥।)
पीले हाथ	॥।)
जहांदारशाह	॥।)
सगुन	॥।)
देखा देखी	॥।=)

कहानी—संग्रह

दबे पाव	२)
मेढकी का ब्याह	१)
अम्बरपुर के अमरवीर	१)
ऐतिहासिक कहानियां	१)
अंगूठी का दान	१)
शरणागत	१।)
कलाकार का दण्ड	१।)
तोषी	१)

★

मयूर—प्रकाशन, झांसी ।